तेलुगु के
आधुनिक कवि

लेखक

श्री वेमूरि राधा कृष्ण मूर्ति

साहित्यरत्न, बि. ओ. एल.



प्रकाशक

एम्. शेषाचलम् अण्ड कंपनी

मछलीपट्टणम : सिकन्दराबाद : मद्रास

१९६३

[रु. ५.००

***Telugu Ke Aadhunika Kavi*: *Pen-pictures of Telugu Ace Poets of Modern Age by* Vemuri Radhakrishna Murty.**

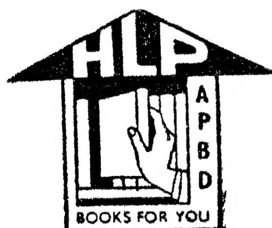
First Edition: 1963

Price: *Rs.* 5-00

Cover design: ***Sam***

Publishers:
M. SESHACHALAM & CO.
MADRAS : MASULIPATAM : SECUNDERABAD

Printers:
Kabeer Printing Works,
Triplicane, Madras.



No. 212864

Distributors:
ANDHRA PRADESH
BOOK DISTRIBUTORS,
Rashtrapathi Road,
SECUNDERABAD

*

प्राप्तिस्थान :
आन्ध्र प्रदेश् बुक् डिस्ट्रिब्यूट
राष्ट्रपति रोड : सिकन्दराबाद



अपनी बात

तेलुगु के आधुनिक कवियों के बारे में हिन्दी में लेख लिखाने का संकल्प हैदराबाद से प्रकाशित होनेवाली साहित्यिक हिन्दी मासिक पत्रिका "दक्षिण भारत" के संपादक श्री आंजनेयशर्माजीने किया। उनका आदेश पाकर मैंने हिन्दी में लेख लिखना शुरू किया। सितंबर १९६० से लेकर लगभग एक वर्ष तक मेरे हिन्दी लेख उस पत्रिका में लगातार प्रकाशित होते रहे। कई सहृदय मित्रोंने आवश्यक सलाहें देकर मुझे प्रोत्साहित किया। तेलुगु के सभी कविवरोंने इस प्रयास में मेरी बडी मदद की। एतदर्थ उन सब का मैं हृदय से आभारी हूँ।

जब मेरे हिन्दी लेख प्रकाशित हो रहे थे तब आन्ध्र प्रदेश के अनुभवी प्रकाशक, अपनी घरेलू पुस्तकालय संबंधी योजना के द्वारा आन्ध्र प्रदेश के पुस्तक बिक्री जगत् में क्रांतिकारी परिवर्तन लानेवाले एम्. शेषाचलम् अण्ड कंपनी के संचालकोंने तेलुगु में भी उन लेखों को लिखने का अनुरोध किया। उनका प्रोत्साहन पाकर मैंने तेलुगु में भी लिखना आरंभ किया। उन्होंने अपनी तेलुगु मासिक पत्रिका "पुस्तक प्रपचमु" (Book World) में डढ साल तक मेरे तेलुगु लेखों को लगातार प्रकाशित करके मेरे

प्रयास को सफल बनाया। साथ साथ हिन्दी और तेलुगु में प्रकाशित उन लेखों को पुस्तक का रूप देकर स्थायी महत्व भी प्रदान किया। इसके लिये मैं उनका बडा कृतज्ञ हूँ।

इस ग्रंथ में अवस्था के अनुसार तेलुगु के आधुनिक कवियों का क्रम निर्धारित किया गया है। और भी कुछ मूर्धन्य कवि बच गये हैं। शीघ्र ही उनका भी परिचय सहृदय पाठकों के कराने का प्रयत्न करूँगा।

मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर हिन्दी तथा तेलुगु दोनों पुस्तकों के लिये महान् विद्वान, राजनैतिक नेता श्रद्धेय बूर्गुल रामकृष्णारावजीने अमूल्य भूमिका लिखने की कृपा की। इसके लिये मैं उनका बडा आभारी हूँ।

भारत के राष्ट्रपति, रसज्ञ सहृदय विद्वान डा. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्‌जीने मुझ अकिंचन की इस भेंट को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ किया। उनके कर कमलों में अपने इस पूजा पुष्प को देखकर मेरा हृदय बडा प्रसन्न हो रहा है।

हिन्दी तथा तेलुगु लेखों के प्रकाशन में आवश्यक सहयोग देनेवाले श्री बालकृष्ण लाहोटीजी, श्री श्रीनिवास सोनीजी, श्री मल्लादि नरसिंह शास्त्रीजी, तथा श्री के. जि. कृष्ण मूर्तिजी का बडा कृतज्ञ हूँ। संस्कृत, तेलुगु, अंग्रेजी तथा हिन्दी के विद्वान श्री टि. वि. रंगाचार्युलुजी ने मेरी इन पुस्तकों के

संशोधन और प्रकाशन में जो श्रद्धा दिखाई है वह अनुपम है। उनका मैं बडा आभारी हूँ।

यह सुनकर मुझे बडा हर्ष हुआ है कि तेलुगु में प्रकाशित मेरा "आणिमुत्यालु" (सीपी के मोती) शीर्षक ग्रंथ एक महीने के अंदर ही २000 तेलुगु पाठकों के हाथों में पहुँच गया है। "तेलुगु के आधुनिक कवि" शीर्षक यह ग्रंथ उसी "आणिमुत्यालु" का हिन्दी रूप है। आशा है कि उदार हिन्दी संसार से हिन्दी भारती के मुझ जैसे उपासक को प्रोत्साहन मिलेगा। केवल व्यापार की दृष्टि से मेरे इन ग्रंथों का प्रकाशन न करके अपने अपार साहित्य प्रेम का प्रकाशकोंने जो परिचय दिया है उस केलिये और एक बार अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

वेमूरि राधा कृष्ण मूर्ति

अनुक्रमणिका

भूमिका

प्राचीन काल से भारत अनेक भाषाओं, विभिन्न धर्मों और तरह तरह के आचार विचारों का संगम रहा है। इस वैविध्य का पता अथर्वण वेद के भूमिसूक्त से लगता है। उसमें भारत माता की प्रार्थना करते हुए उसकी उपमा एक ऐसी गौ से दीगई है जो विभिन्न क्षेत्रों में घास फूस चर कर पवित्र श्वेत क्षीर देती है और अपने सभी बछड़ों को एक सा दूध पिलाती है। भारत भूमि का वर्णन करते हुए स्पष्टरूप से उल्लेख किया गया है कि यहाँ पर नाना भाषाओं के बोलनेवाले, नाना धर्मों के अनुयायी और नाना आचार विचार रखनेवाले लोग मौजूद हैं। माता की तरह यह भूमि हम सब के साथ समान रूप से प्रेम का बर्ताव करती है। इस तरह हमारे देश का यह वैविध्य अति प्राचीन होते हुए भी देश की सांस्कृतिक एकता पर कभी बुरा प्रभाव नहीं डाल सका। भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से यद्यपि हमारा देश विभिन्न राज्यों में बँटा रहा तथापि सांस्कृतिक दृष्टि से हिमाचल से लेकर कन्याकुमारी तक और कश्मीर से लेकर कामरूप तक सारा भारत समैक्यता का एक आश्चर्यजनक दृष्टांत बना रहा। इसीलिये विभिन्नता में एकता के दर्शन भारत के सांस्कृतिक इतिहास से हमें होते हैं। यह दृश्य संसार के लिये अद्भुत और मूल्यवान है। भारत में आज

इस एकता की भावना को नये सिरे से उजागर करना अत्यंत आवश्यक है। इस कार्य की ओर जो भी कदम उठाया जाय वह स्वागत करने योग्य है।

राष्ट्रीय एकता के साधनों में साहित्यिक आदान प्रदान अपना एक विशेष स्थान रखता है। हमारे सविधान के द्वारा स्वीकृत चौदह भाषाएँ अपनी अपनी जगह पर अपने अपने प्रांतों में बडा महत्व रखती हैं। इन सब भाषाओं के साहित्य में ऐसा भंडार मौजूद है जो आदान प्रदान के द्वारा विविध भाषा भाषी जनता के बीच वितरित किया जा सकता है और जिससे ज्ञान की वृद्धि भी हो सकती है। साहित्यिक रस के आस्वादन का अच्छा मौका भी मिल सकता है। अगर विविध प्रांतों के साहित्यकार साहित्य के प्रति रुचि रखनेवाले लोग एक दूसरे के साहित्य को समझने और उसका रस पान करने की चेष्टा करें और इस के लिये अधिक प्रयत्न करें तो मेरा विश्वास है कि भाषा संबंधी संकीर्णता जो आज दिखाई देती है, बहुत कम हो जाएगी और उदारता के साथ इस समस्या को हल करने की ओर कदम उठाया जा सकेगा। अभी इस तरफ भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों का ध्यान जिस मात्रा में आकर्षित होना चाहिए, नहीं हुआ है। साहित्यकार अगर देश की सेवा करना चाहते हैं तो उनके लिये बहुत बडा क्षेत्र खुला हुआ है। आशा है कि वे इससे पूरा पूरा लाभ उठाएँगे।

मुझे बडी प्रसन्नता है कि श्री वेमूरि राधा कृष्ण मूर्तिजी ने जो तेलुगु और हिन्दी दोनों भाषाओं के पंडित हैं, इस क्षेत्र में बडा अच्छा कदम उठाया है। तेलुगु भाषा अत्यंत मधुर और कविता के लिये अत्यंत योग्य मानी गई है। तेलुगु भाषा के साहित्य का भंडार बडा ही समृद्ध और मूल्यवान है। श्री राधा कृष्णमूर्तिजी ने हिन्दी भाषा भाषियों और साहित्यकारों के लिये तेलुगु के मुख्य आधुनिक कवियों के जीवन और उनकी रचनाओं पर इस ग्रंथ में प्रकाश डाला है। शायद इस तरह का यह सब से प्रथम प्रयास है। तेलुगु का आधुनिक साहित्य कई तरह से समृद्ध और वर्धमान है। जिस तरह भारत की और भाषाओं के साहित्य की वृद्धि आधुनिक काल में हो रही है, उसी तरह तेलुगु भाषा का साहित्य भी नित्य नये अलंकारों से भूषित हो रहा है। तेलुगु साहित्य सरस्वती के चरणों पर सुरभित रंग बिरंगे काव्य कुसुमों को आधुनिक कवि चढाते जारहे हैं। जिन कवियों के जीवन और रचनाओं पर श्री राधा कृष्ण मूर्तिजी ने रोशनी डाली है वे सब उच्च कोटि के कवि हैं। उनका परिचय हिन्दी जगत् के कराने की श्री मूर्तिजीने जो कोशिश की है वह अत्यंत सराहनीय है। मैं इनके इस ग्रंथका हार्दिक स्वागत करता हूँ। मुझे आशा है कि हिन्दी साहित्य संसार भी इसका स्वागत करेगा।

इस प्रयत्न से कई फायदे होते हैं। एक तो यह कि इससे हिन्दी का साहित्य संपन्न होता है। दूसरा साहित्यिक आदान प्रदान के परिणाम के रूप में हिन्दी भाषा भाषियों को तेलुगु के काव्यों के रस का स्वाद लेने का मौका मिलता है। तीसरा भारत की भावात्मक एकता को इससे पुष्टि मिलती है। इस क्षेत्र में और भी काम होना आवश्यक है। तेलुगु के साहित्यकारोंने हिन्दी के सुप्रसिद्ध काव्य रत्नों का अनुवाद तेलुगु में करना शुरू किया है। कई मुख्य ग्रंथों का अनुवाद अब तक हो चुका है। अभी और होना है। किन्तु इतर भाषओं के साहित्य का अब तक अनुवाद हिन्दी में बहुत कम हुआ है। मुझे आशा है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन के बाद यह सिलसिला और भी आगे बढेगा। इसलिये मुझे इस ग्रंथ का परिचय कराते हुए बडा हर्ष होता है।

श्री राधा कृष्ण मूर्तिजीने एक और विशिष्ट प्रथा डाली है। इन्होंने न केवल तेलुगु के आधुनिक कवियों के जीवन और रचनाओं पर हिन्दी में लिखा है, साथ साथ तेलुगु में भी लिख कर के उसका प्रकाशन किया है। और लोगोंने भी तेलुगु ग्रंथों का अनुवाद हिन्दी मे किया है, या तेलुगु साहित्य के बारे में लिखा है, किन्तु उन्होंने हिन्दी में रचना की है। तेलुगु के साहित्यकारों ओर जनता को अपनी रचनाओं का लाभ उठाने से वंचित किया है। पर मूर्तिजीने दोनों भाषाओं में इस ग्रंथ का प्रकाशन

करके तेलुगु और हिन्दी दोनों भाषाओं की सेवा की है और इसके लिये भी मौका प्रदान किया है कि तेलुगु साहित्यकार भी इनकी रचनाओं की जाँच कर सके। यह एक ऐसी विशेष बात है जो श्लाघनीय है। मुझे आशा है कि और लोग भी इस परंपरा का अनुकरण करेंगे।

बर्कतपूर,
हैदराबाद
26-7-1963

बूर्गुल रामकृष्ण राव

समर्पण

जिस महापुरुष की यशश्चंद्रिका से
दिग्दिगंत भी उज्वल बन रहे हैं,
जिस महान् मनस्वी की विद्वत्ता से
विद्वज्जन भी प्रसन्न हो रहे हैं,
जिस महान् लेखक की लेखिनी से
जिज्ञासु तत्वज्ञानी भी तृप्त हो रहे हैं,
जिस महान् वक्ता की मधुर वाणी से
देश देश के वासी मुग्ध हो रहे हैं,
उस महान् रसज्ञ सहृदय श्रेष्ठ
भारत के राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन्‌जी के
सुंदर कर कमलों में
आन्ध्र भारती के अनन्य
विनम्र पुजारियों का
यह सुरम्य सुमनों का हार
समर्पित है।



कृतिपति

राष्ट्रपति डा. एस. राधाकृष्णन्



गुरजाडा
वेंकट अप्पाराव

आधुनिक आन्ध्र साहित्य को नया स्वरूप प्रदान करनेवाले आप क्रांतदर्शी कवि हैं। प्राच्य और पाश्चात्य साहित्यों का अध्ययन कर, तेलुगु भाषा में स्वयं अनेक रचनाएँ करके परवर्ती आधुनिक तेलुगु कवियों के लिये मार्ग प्रशस्त करनेवाले आप युग प्रवर्तक कवि हैं।

4920—1

साहित्य समाज का दर्पण है। सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य पर पडता है। पडे बिना नहीं रहता। रससिद्ध कवीश्वरों के काव्यों पर देश और काल की परिस्थितियाँ अवश्य अपने चरण चिह्न अंकित करती हैं। उदाहरण के लिये रामायण और महाभारत लिये जा सकते हैं। वे उस समय के हिन्दू समाज के प्रतिबिंब माने जा सकते हैं। मानव की प्रवृत्तियों का संस्कार कर के उसे उन्नत पथ पर ले जाने की अपार शक्ति साहित्य में निहित रहती है। इसीलिये साहित्य समाज की बुराइयों को दूर कर उसे आदर्शवान बनाने का प्रयत्न करता है। सत्साहित्य सदा शाश्वत और चिरस्थाई रहता है। ऐसे साहित्य के स्रष्टा देश, काल तथा भाषा संबंधी सीमाओं को पार कर के समस्त मानव समाज के लिये पथ प्रदर्शक बन जाते हैं। आधुनिक आन्ध्र साहित्य जगत् के वैतालिक स्व० गुरजाडा वेंकट अप्पाराव भी ऐसे ही इने गिने अमर कवियों में से एक हैं। उन्होंने तेलुगु समाज और साहित्य को क्रांति का पथ दर्शाकर नवीन युग का प्रवर्तन किया।

उस समय का वातावरण

श्री गुरजाडा का जन्म स० २१ सितंबर १८६२ ई० को और निधन 30 नवंबर १९१५ ई० को हुआ। उनके बचपन में भारत की राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ संतोषजनक नहीं थीं।

भारत की स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम में भारतीयों की हार हो गई। तब से ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से भारत के शासन की बागडोर ब्रिटिश सरकार ने सीधे अपने हाथ में ले ली। एक तरफ भारत के रिया-सतदार, जमींदार, जागीदार और अधिकार के भूखे स्वार्थलोलुप भारतीय ब्रिटिश शासकों के पिठ्ठू बनकर अपने अपने केन्द्रों में आसन जमाकर बैठ गये तो दूसरी तरफ स्वतंत्रता प्रेमी कुछ देशभक्त कई कष्टों का सामना करते हुए स्वतंत्रता का आन्दोलन चलाने लगे थे। आन्ध्रप्रदेश भी भारत के उक्त राजनैतिक प्रभाव से दूर नहीं रह सका।

उन दिनों आन्ध्रप्रदेश में जाति-पांति और छुआ-छूत का भेद भाव अपनी जडें जमा चुका था। उच्च कुल के लोगों का समाज में जैसा आदर होता था वैसा निम्न कुल के लोगों का नहीं होता था। हरिजनों की हालत करुणाजनक थी। देहातों से दूर उनकी अलग बस्ती होती। वहाँ वे छोटी छोटी झोंपडियों में निवास करते। उच्चवर्णवालों की गलियों में से वे चल भी नहीं सकते थे। अन्धविश्वासों के वे शिकार बने हुए थे। समाज में अधिकतर जनता अशिक्षित थी। विलायत जानेवालों का बहिष्कार होता था। निम्न वर्णवालों के साथ सहपंक्ति भोजन वर्जित था। महिलाओं की हालत और भी दय-नीय थी।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने
पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति ॥

उक्त सिद्धांत का पालन समाज में बडी निर्दयता के साथ किया जाता था। बाल विवाह, अनमेलविवाह और वेश्यागमन आदि कुरीतियों का समाज में बोल-बाला था। धर्म के नाम पर जहाँ तहाँ पाखंडता के दर्शन होते थे।

तेलुगु साहित्य के क्षेत्र में नवीनता का नामो निशान तक नहीं था। तेलुगु और संस्कृत के प्राचीन कवियों के काव्यों का अंधानुकरण, लंबे लंबे समासों का प्रयोग और नायिकाओं का नख शिख वर्णन आदि से तेलुगु साहित्य बोझिल हो गया था। सामान्य जनता से उसका संबंध नहीं रहा। संस्कृत शब्दों से लदी पंडिताऊ शैली तेलुगु के साहित्यिक क्षेत्र में राज करती थी।

नवीन युग का आरंभ

थोडे बहुत परिवर्तनों के साथ भारत के सब प्रदेशों की भी यही हालत उस समय थी। अंग्रेजों के शासन की व्यवस्था के कारण अंग्रेजी भाषा तथा उसके साहित्य का अध्ययन भारत में खूब होने लगा।

यद्यपि अंग्रेजों ने भारत में लगभग एक शताब्दी तक शासन किया तथापि सजग भारतीयों पर अधिक काल तक वे शासन नहीं कर सके। परन्तु अपनी भाषा और साहित्यिक प्रवृत्तियों व विशेषताओं

को यहाँ छोड़ गये। फलस्वरूप भारत की सब भाषाओं में उपन्यास, कहानी, जीवनी, आलोचना, एकांकी और डायरियाँ वगैरह नई प्रक्रियाओं का प्रकाशन होने लगा। तेलुगु भाषा भी इस प्रभाव से वंचित नहीं रह सकी। उत्तरोत्तर तेलुगु भाषा के स्वरूप, अभिव्यंजना प्रणाली और कथा वस्तु में काफी परिवर्तन होता गया। आधुनिक तेलुगु साहित्य के परिवर्तन और अभिवृद्धिमें स्व. वीरेशलिंगम, स्व. गिडुगु राममूर्ति और स्व. गुरजाडा अप्पारावजी का बड़ा हाथ रहा।

स्व. वीरेशलिंगम समाज सुधारक, कवि, विद्वान्, उपन्यासकार तथा समालोचक थे। पाठ्य पुस्तकों से लेकर उपन्यास, नाटक, आत्मकथा और समालोचनाओं तक की उन्होंने रचना की। वर्षों से जमे हुए सामाजिक अँधविश्वासों का खंडन करके नवीन, क्रांतिकारीभावों का प्रचार करने में वीरेशलिंगम की लेखनी ने वज्र की तरह काम किया।

स्व. गिडुगु राममूर्ति ने भाषा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया। तेलुगु भाषा के दो रूप हो गये-ग्रान्थिक और व्यावहारिक। ग्रान्थिक भाषा बिलकुल पंडिताऊ होगयी। आम जनता के लिये वह दुरुह हो गई। व्यावहारिक भाषा को उद्दंड पंडितों के कारण साहित्य जगत् में मान्यता नहीं मिल सकी। पंडितों ने गँवारू कह कर उसे ठुकरा दिया। ऐसे अवसर पर गिडुगु राममूर्ति पंतुलु ने व्यावहारिक

तेलुगु भाषा का पक्ष लेकर जबर्दस्त आन्दोलन चलाया। इस सिलसिले में उन्हें प्रकांड पंडितों के विरोध का सामना करना पड़ा।

तेलुगु कविता का विकास

इस प्रकार जब वीरेशलिंगम का सामाजिक सुधार सम्बन्धी आन्दोलन एक ओर और गिडुगु राममूर्ति का भाषा सुधार सम्बन्धी आन्दोलन दूसरी ओर चल रहे थे तब आधुनिक तेलुगु साहित्य के वैतालिक स्व. गुरजाडा अप्पाराव ने वीरेशलिंगम की देश भक्ति और समाज सुधार को अपनी रचनाओं की कथावस्तु बना कर, गिडुगु राममूर्ति की व्यावहारिक भाषा का आश्रय लेकर तेलुगु साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। प्राच्य और पाश्चात्य वाङ्मय का खूब अध्ययन करके गुरजाडा ने उसका सार ग्रहण किया। खण्ड काव्य, निबन्ध, नाटक और कहानी के रूप में प्रभावशाली ढंग से अपने मौलिक विचार व्यावहारिक भाषा में प्रस्तुत कर तेलुगु समाज और साहित्य का उन्होंने बड़ा उपकार किया। उन्होंने "मुत्याल सरमु" शीर्षक नये छन्द का सृजन कर अपनी कविता की कमनीयता को बढाया ही नहीं साथ ही साथ नये भाव, और नयी अभिव्यंजना प्रणाली को अपना कर परवर्ती कवियों के लिये पथ प्रदर्शन का कार्य सुचारु रूप से प्रचलित किया। वे कहते हैं—

तूर्पु बल बल तेल्लवारेनु
वेलुगु नीटनु ग्रुंके चुक्कलु
चदल चीकटि कदल बारेनु
एक्कडनो ओक चेट्टु माटुन
नोक्क कोकिल पलुक सागेनु ।

(प्राची में पौ फटी एकाएक
ज्योतिर्जल में तारे सब डूब गये
महा निबिड तम विच्छिन्न हुआ
कहीं दूर छिपे तरु के पीछे से
कलकंठी कोकिल कुहुक उठा ।)

* * *

गुत्तुना मुत्याल सरमुलु
कूर्चूकोनि तेटैन माटल
क्रोत्त पातल मेलु कलयिक
क्रोम्मेरुंगुलु जिम्मगा ।

(मोतियों के हार गूँथूं
रुचिर शब्दों को पिरोऊँ ।
नव पुराने भाव भर दूं
नयी ज्योति व्याप्त कर दूँ ।)

ग्रान्थिक भाषा के समर्थकों ने गुरजाडा की नवीन शैली की कविताओं तथा भाषा का विरोध किया। तब निर्भीक होकर गुरजाडा कह उठे—

मेच्चनंटावीवु, नीविक
मेच्चकुंटे मिच्चिपोयेनु

कोय्य बोम्मले मेच्चुकल्लकु
कोमलुल सौरेक्कुना ?"

(मेरी कविता अगर तुम्हें पसंद नहीं,
तो जाने दो, मुझको कुछ परवाह नहीं।
गुड्डे गुडियों को ही
जो आँखे पसन्द करती हैं
वे सुन्दरियों की सुन्दरता को कैसे पसन्द कर सकती हैं?)

शिक्षा-दीक्षा

गुरजाड़ा अप्पाराव जी का जन्म आन्ध्र प्रदेश के विशाखपट्टणम जिले के रायवरम गाँव में हुआ। उनके पिता का नाम रामय्या व माता का नाम कौसल्यांबा था। बाल्यकाल से ही अप्पारावजी बड़े प्रतिभावान रहे। विजयनगर में उन्होंने शिक्षा पाई। वहाँ के सेकंडरी स्कूल में पढ़ते समय ही वे अंग्रेजी में कविता करने लगे थे। उनकी सारंगधर शीर्षक अंग्रेज़ी कविताएँ शंभुचन्द्र मुखर्जी द्वारा संपादित (reis and rayyat) पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। विजयनगर कालेज में भर्ती हो कर १८८६ ई० में बी. ए. परीक्षा पास की। कलेक्टर के कार्यालय में क्लर्क नियुक्त हुए। वेतन कम होने के कारण उन्होंने थोड़े ही दिनों में वह नौकरी छोड़ दी। विजयनगर महाराजा के कालेज में ४ अक्तूबर १८८९ ई० को नियुक्त किये गये। इस

नौकरी से वे बहुत खुश हुए, जिसका उन्होंने अपनी डायरी में विशेष रूप से उल्लेख भी किया। इसी समय विजयनगर के प्रसिद्ध महाराजा विद्याप्रेमी श्री आनन्द गजपति जी का सांगत्य उन्हें प्राप्त हुआ। महाराजा के प्रोत्साहन से अप्पारावजी के हौसले बढ़ गये। धैर्य के साथ साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने कदम बढ़ाया। महाराजा की आर्थिक सहायता से उन दिनों "हार्प" नामक एक पत्रिका प्रकाशित होती थी। व्यावहारिक भाषा सम्बन्धी लेख व कविताओं को प्रकाशित करने वाली आन्ध्र प्रांत की वही प्रथम पत्रिका थी। वास्तव में गुरजाडा को तेलुगु साहित्य के प्रेमी बनाने और आजीवन उन्हें तेलुगु भाषा और साहित्य की सेवा में लगाये रखने में विजयनगर के महाराजा का बड़ा हाथ रहा। १८९६ ई. में अप्पारावजी विजयनगर रियासत के शासन संशोधक (epigraphist) नियुक्त हुए। महाराजा साहब की मृत्यु के बाद अप्पारावजी कई वर्षों तक अदालत के मामलों में लगे रहे। बाद रीवाँ रियासत की महारानी श्री श्री अप्पल कोंडमांबा के सेक्रेटरी बन गये। अप्पाराव जी तब तक राजनैतिक क्षेत्र में भी प्रवेश कर चुके थे। विजयनगर की नगरपालिका के सदस्य रह चुके। १९१३ ई. में मद्रास सरकार की तरफ़ से मद्रास विश्वविद्यालय के सेनेट-मेम्बर भी नियुक्त किये गये। १९10 से उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। आख़िर 30 नवम्बर १९१५ ई. को ५४ वर्ष की अवस्था में उनका

देहांत हो गया। तेलुगु के साहित्याकाश से एक उज्वल नक्षत्र सदा के लिए तिरोहित हो गया।

दुबली पतली कमजोर देह, विस्तृत भाल, विशाल नेत्र, लंबी नाक, लंबी मूंछे, सुन्दर चिबुक, मित भाषण, स्थिर, गम्भीर साथ-साथ विनोदी प्रकृति, सहृदय व प्रशांत चित्त, संक्षेप में अप्पाराव जी का यही स्वरूप था। गर्मी के दिनों में भी वे कोट पहनते थे। सिर में पगडी बाँधते थे। पैरों में मोजे पहनते थे। शत्रुओं के आक्षेपों से ज़रा भी विचलित नहीं होते थे। बड़ी शान्ति के साथ अपना काम करते जाते थे। वे अपने सिद्धांतों पर अटल विश्वास रखते थे। इसीलिये वे मन की बात प्रकट करने, सामाजिक बुराइयों का खण्डन करने और देश भक्ति की भावना को जागृत करने में किसी से नहीं घबराये। "वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि" यह उक्ति उनके लिए ठीक बैठती थी।

गुरजाडा अप्पारावजी की कविताओं का आदर्श उन्हीं के एक पद्य में स्पष्ट हुआ है। वे कहते हैं—

आकुलंदुन अणगि मणगी
कवित कोकिल पलक वलेनोय
पलुकुलनु विनि देशमंदभि
मानमुलु मोलकेत्तवलेनोय॥

(पत्तों के झुरमुट में छिप कर
कविता कोयल कुहुक उठे!

जन मानस में उसको सुन कर
अभिमान देश का उमड़ उठे !!)

विभिन्न कविताएँ

अप्पाराव जी की कविताओं का संग्रह "मुत्याल सरमुलु" (मोतियों के हार) शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। उनकी कविताओं में (1) मुत्याल सरमुलु (मोतियों के हार) (२) कासुलु (अशर्फियाँ) (३) लवणराजु का स्वप्न (४) कन्यका (५) डॉमन पिथियस (६) पूर्णम्मा (७) देश-भक्ति (८) मनिषि (मनुज) (९) दिंचुलंगरु (लंगर उतारो) (१०) लंगरु एत्तुमु (लंगर उठाओ) उल्लेखनीय हैं।

'मुत्याल सरमुलु' (मोतियों के हार) शीर्षक कविता की रचना सामाजिक सुधार की इच्छा रखने वाले पति और सामाजिक नियमों के अनुसार चलने की इच्छा रखने वाली पत्नी दोनों के कथोपकथन के रूप में की गयी है। कवि एक बार समाज-सुधारकों से मिलते हैं और उनके साथ बैठ कर खाना भी खाते हैं। घर आ कर पत्नी के सामने वहाँ के वातावरण का वर्णन करते हैं। पुराणों और धर्म सम्बन्धी अँधविश्वासों का खण्डन करते हैं। लेकिन पत्नी नहीं मानती। भोली-भाली उस पत्नी के रूढिग्रस्त विचारों पर पति के उपदेशों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। पति अपनी पत्नी से कहता है—

कन्नु काननि वस्तु तत्वमु
कांच नेर्वरु लिंगिरीजुलु
कल्ल नोल्लरु, वारि विद्यल
करचि सत्यमुनरसितिन् ।

(अंग्रेज लोग ऐसी वस्तुओं पर विश्वास नहीं करते, जो आँखों को दिखाई न पड़े। उनकी विद्याओं का अध्ययन करने पर इस सत्य का पता मुझे लगा है।) फिर कहते हैं—

देश सब मिल एक होंगे
वर्ण-भेद नहीं रहेंगे
प्रेम सूत में बिंध जाएँगे
लोग सभी खुश हो जाएँगे ॥

धर्म-भेद जब मिट जाएगा
ज्ञान ही जग में रह जाएगा
स्वर्गिक सुख तब छा जाएगा
लोक उजागर हो जाएगा ॥

तब पत्नी आँसू बहाती हुई कहती है—

बस करो अब सुन चुकी सब
शिक्षा का फल ठीक नहीं निकला अब।
मिल-जुल कर रहने से ही
मिल्लत कभी न हो सकती है।
इससे बेहतर मार्ग यही है कि
नाता जोड़ो किसी चमारिन से ॥

इस कविता के द्वारा कवि जातिपांति, कुल-गोत्र, काले-गोरे वग़ैरह भेदों का खण्डन करते हैं। मानवीय एकता का संदेश देते हैं। लोगों के अँधविश्वासों का खण्डन करते हुए पुच्छल तारे के बारे में कहते हैं कि (१९१० में वह दिखाई पड़ा था) कुछ मूर्ख लोग उसे अनिष्ट का सूचक मानते हैं। यह ठीक नहीं। वास्तव में पुच्छलतारा पृथ्वी का रिश्तेदार है। वह सत्तर व अस्सी बरस में एक बार पृथ्वी को देखने के लिये आया करता है।

कासुलु (अशर्फियाँ) शीर्षक कविता में आभूषणों के प्रति स्त्रियों के मोह का कवि ने खण्डन किया और कहा है कि "स्त्री का सच्चा आभूषण निर्मल प्रेम है। प्रेम कोई खाद्य वस्तु नहीं है। वह हृदय की अमूल्य संपत्ति है। उसके बिना जीवन निस्सार बनता है। पति-पत्नी के जीवन पथ का प्रेम आकाश दीप है। पति वास्तव में पत्नी के लिए देवता नहीं है। वह उसका आप्त मित्र है।" इस तरह गुरजाडा ने इस कविता के द्वारा प्रेम का उज्वल और वास्तविक रूप प्रस्तुत किया जो आगे चल कर तेलुगु के भावकवियों (छायावादी) के लिये आधार बन गया।

छुआ-छूत का खंडन

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में जब गांन्धीजी का पदार्पण नहीं हुआ था तभी तेलुगु प्रान्त में गुरजाडाने

लवणराजु का स्वप्न शीर्षक अपनी कविता के द्वारा छुआ-छूत के भेद-भाव का खण्डन किया। हरिजनों को अपनाने का संदेश दिया। राजा लवण एक बार स्वप्न देखता है, जिसमें उसका ब्याह एक श्याम वर्ण की अछूत सुन्दरी से होता है। समाज उसका विरोध करता है। आखिर चिता में कूद कर दोनों प्राण दे देते हैं। इसके बाद लवण राजा की आँखें खुल जाती हैं। उसके समक्ष सचमुच अछूत सुन्दरी आ जाती है। राजा उस पर मोहित हो जाता है। उससे ब्याह कर लेता है। इस कविता का यही सारांश है। इस कविता के द्वारा कवि कहते हैं कि मानव सब एक हैं। शारीरिक मलिनता ही अछूतों के लिए प्रतीक नहीं है। कहते हैं—

मलिन देहुल माल लनुचुनु
मलिन चित्तुलु अधिक कुलमुल
नेलवोसंगिन वर्ण धर्म
मधर्मंबु धर्मंबे ?

(वह वर्ण-धर्म अधर्म है,
जो मलिन देहियों को अछूत माने
मलिन चित्तवालों को कुलीन माने।)

इसलिए गुरजाडा कहते हैं—

(जग में जो जन मिलते हैं
वे भले-बुरे दो ही कुल के हैं।
भला जन अगर चमार है
तो मैं वही बनूँगा।)

'कन्यका' शीर्षक कविता में राजाओं के अत्याचारों का वर्णन करके गुरजाडा ने राजतन्त्र की समाप्ति का सन्देश दिया है। 'कन्यका' एक वैश्य प्रमुख की पुत्री है। वह बहुत सुन्दरी है। एक दिन पूजा के लिए वह मन्दिर जाती है। रास्ते में राजा उसे देख कर मोहित हो जाता है। खुले बाजार में दुष्ट मन्त्रियों की मदद से कन्यका को हथियाना चाहता है। कन्यका प्रार्थना करती है। उसका पिता भी राजा के सामने हाथ जोड़ता है। कहता है कि— पूजा के बाद कन्यका के साथ विवाह कर लो। राजा मान जाता है। सब देवल पहुँचते हैं। वहाँ पूजा के बाद पतिव्रता कन्यका राजा के अत्याचारों का खण्डन करके अग्निकुण्ड में कूद पड़ती है। अपने प्राण त्याग देती है। वह राज्य भूकम्प से नष्ट हो जाता है। वह राजा भी मर जाता है। लेकिन मानिनी कन्यका का नाम अमर हो जाता है। वह सबके लिए आराध्य बन जाती है।

'डॉमन पिथियस' शीर्षक कविता में सच्ची मित्रता का वर्णन किया गया है। 'लंगर लगाओ' शीर्षक कविता में युद्ध के विरुद्ध 'गुरजाडा' ने आवाज उठायी है। १९१४ ई० के विश्व युद्ध की विभीषिका देखकर कवि 'गुरजाडा' ने इस कविता के द्वारा प्रकट किया कि धर्म की जीत हो, शान्ति की स्थापना हो। 'लंगर उठाओ' शीर्षक कविता में भारत को आजाद बनाने के लिए नौजवानों को सन्नद्ध होने का निमन्त्रण देते

हैं। 'आदमी' शीर्षक कविता में पत्थरों की पूजा का खण्डन करते हैं। कहते हैं कि—"जो आदमी मनुष्य के हाथों बनी मूर्ति के आगे सर झुकाता है, वह पत्थर से भी गया गुजरा है। वास्तव में भगवान कहीं दूर नहीं है। हर आदमी में भगवान है। इसलिए जनता की सेवा ही जनार्दन की सेवा है। ऐसी सच्ची सेवा से ही मुक्ति मिलती है।"

"पूर्णम्मा"

गुरजाडा अप्पारावजी की कविताओं में 'पूर्णम्मा' शीर्षक कविता बहुत ही करुणाजनक है। कन्याओं की बिक्री के कारण होनेवाले दुराचारों का कविने हृदय विदारक वर्णन उसमें किया है। कन्याओं की बिक्री, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, वगैरह कुरीतियों के विरुद्ध गुरजाडाने इस कविता में आवाज उठाई है। पूर्णम्मा अपने माता-पिता की इकलौती बेटी है। उसका विवाह एक बूढे से, धन के मोह में उसके माता-पिता कर देते हैं। इससे पूर्णम्मा का मासूम हृदय विचलित हो उठता है। वह एक तालाब में कूद कर जान दे देती है। पूर्णम्मा की मृत्यु पर पाठक आँसू बहाये बिना नहीं रह सकते।

'गुरजाडा' का जन्म भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई के समय हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव उनके हृदय पर पड़ा। फलस्वरूप तेलुगु प्रान्त की

जनता को जाग्रत करने का अथक प्रयत्न उन्होंने किया। गुरजाडा के देश भक्ति सम्बन्धी सभी पद्य एक-से-एक बढ कर हैं। तेलुगु भाषा-भाषियों में ये पद्य इतने प्रचलित हैं कि आम जनता की जबान से भी वे सुनने को मिलते हैं। कवि देशवासियों को सम्बोधन कर कहते हैं—

देश को तू प्यार कर
भलाई के काम कर
बेकार की बक बक बन्द कर
लोक हित का ध्यान कर।

* * *

गर सभी निर्जीव रह जायँ
तो देश - हित फिर कैसे होगा?
कला-करिश्मे सब सीख लें तो
यह देश माला-माल होगा।

* * *

पीछे मत मुड़, आगे बढ़
अतीत का तू ध्यान न कर
तज आलस्य आगे बढ़
पीछे मत पड़, कदम बढ़ा।

* * *

देश प्रेम का ढोंग न कर
गप्पों से दिन व्यर्थ न कर
जनता के हित कुछ काम कर
लोक - हित का उद्योग कर

* * *

निजी स्वार्थ सब तज कर
साथियों की तू मदद कर
मुल्क का मतलब मिट्टी नहीं है
मतलब उसका मानव से है।

गुरजाडा अप्पाराव स्वतन्त्रता के प्रेमी थे। वे केवल देशभक्ति के गीत गा कर ही चुप नहीं रहे। उन्होंने बताया कि स्वतन्त्रता केवल मिट्टी के लिए नहीं है। उस मिट्टी पर निवास करने वाले, मेहनत करके पेट भरने वाले गरीब, त्रस्त, मूक, और पद दलित लोगों के लिए है। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रख कर १९१० में देशभक्ति के पदों की रचना कर गुरजाडा ने तेलुगु भाषा-भाषियों में नई चेतनता भर दी। तेलुगु साहित्य और समाज का उन्होंने बड़ा उपकार किया।

गद्य के सफल लेखक गुरजाडा

गुरजाडा छोटी कहानियों की रचना कर परवर्ती कहानीकारों के लिये पथ प्रदर्शक बन गये। तेलुगु भाषा की मौलिक सुन्दरता और हृदय स्पर्शी हास्य रस से उनकी कहानियाँ ओत-प्रोत हैं। दिद्दुबाटु (भूल-सुधार), मी पेरेमिटि ? (आपका नाम क्या है ?) मेटिल्डा, संस्कर्त हृदयं (सुधारक का हृदय) शीर्षक उनकी कहानियों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" ऐसे लोगों की प्रवृत्तियों का खण्डन भूल सुधार शीर्षक कहानी में गुरजाडा ने

किया है। लकीर के फकीर बन कर चलने वाले, लोगों की आँखों में धर्म के नाम पर धूल झोंकने वाले गुरुओं के अत्याचारों का वर्णन "आपका नाम क्या है?" शीर्षक कहानी में किया गया है। गुरजाडा की कहानियों का लक्ष्य प्रायः समाज का सुधार ही रहा है।

विविध विषयों पर गुरजाडा ने कई आलोचनात्मक लेख लिखे हैं। "कवि रवीन्द्र, विश्व विद्यालय, आधुनिक आन्ध्र गद्य, मद्रास की राष्ट्रीय महासभा, संस्कृत और मातृ भाषाएँ" शीर्षक लेखों की रचना उन्होंने अंग्रेज़ी में की थी। तेलुगु साहित्य के आदि कवि नन्नया के पहले के आन्ध्र साहित्य पर भी गुरजाडा ने बहुमूल्य विचार व्यक्त किये। उनके निबन्ध व समालोचना संबंधी लेखों में "काव्य में शृंगार रस," "कविता और वर्डसवर्त," बंगीय साहित्य परिषद्, बंकिम की उपन्यास कला, ग्राम्य भाषा और बोलियाँ, कन्नड़ व्याकरण, आन्ध्र कविता पितामह, वगैरह उल्लेखनीय हैं।

गुरजाडा की डायरियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी डायरियों के कारण गुरजाडा के जीवन तथा साहित्य की बहुत-सी विशेषताएँ प्रकाश में आ गई हैं। उनकी डायरियों के आधार पर तेलुगु के प्रसिद्ध आलोचक श्री अवसराल सूर्यारावने उनके जीवन को दो विभागों में विभाजित किया। प्रथम भाग ५ जून १८९६ तक का है। उस समय गुरजाडा, नाटकों के प्रदर्शनों,

सभासम्मेलनों, और शास्त्रार्थों में भाग लेते रहे। सामाजिक, साहित्यिक, और राजनैतिक विषयों का वे सूक्ष्म निरीक्षण ही नहीं बल्कि मार्मिक अध्ययन भी करते रहे। इसी समय उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य और संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया। फिर १९१५ तक का समय उनके जीवन का द्वितीय भाग है। इस समय अपने विचारों और सिद्धान्तों को उन्होंने मूर्तरूप दिया। कवि, समालोचक, नाटककार तथा कहानीकार के रूप में वे प्रकट हुए और युग पुरुष बन गये।"

क्रांतिकारी नाटक 'कन्याशुल्क'

गुरजाडा ने नाटककार के रूप में क्रांतिकारिता का काम किया। उन दिनों आन्ध्र के पढ़-लिखे लोगों में ब्रह्म समाज के विचारों का प्रचार था। समाज के संस्कार का वीरेशलिंगम ने बीडा उठाया। गुरजाडाने उनका साथ दिया। साहित्य के द्वारा समाज सुधार की कोशिश वे करते रहे। उपदेश प्रधान होने पर भी उनके नाटकों की रमणीयता कम नहीं हुई। गुरजाडा के नाटकों में 'कन्याशुल्क' नाटक का स्थान सर्वोपरि है। नाटक के आरम्भ में उन्होंने लिखा है—

"समाज सुधार का समर्थन करने, यह सिद्ध करने कि तेलुगु भाषा नाटकों के लिए अनुकूल है, मैंने कन्याशुल्क नाटक की रचना की है।" जब वे

अध्यापन का कार्य करते थे तभी १८९७ में कन्याशुल्क प्रकाशित हुआ और सफलता पूर्वक प्रदर्शित हुआ।

"कन्याशुल्क" नाटक की रचना करके गुरजाडा ने नाटक रचना संबंधी कई प्राचीन नियमों का उल्लंघन किया। नाटक भर में व्यावहारिक तेलुगु का ही उन्होंने प्रयोग किया। उसमें अद्भुत सफलता भी उन्हें मिल गई। अंग्रेजी के कई शब्दों का भी प्रयोग कर उस समय के अंग्रेजी प्रेमियों पर व्यंग कसा। पौराणिक या ऐतिहासिक कथावस्तु स्वीकार न कर समाज सम्बन्धी समस्याओं को ही स्वीकार किया। कन्याओं की बिक्री और वृद्ध विवाह जैसी कुरीतियों का खण्डन किया। स्त्रियों के पुनर्विवाह का समर्थन किया। सामयिक जीवन का वास्तविक स्वरूप "कन्याशुल्क" नामक नाटक में प्रस्तुत किया। स्त्रियों का चित्रण केवल भोग्य वस्तु के रूप में न कर उनके स्वाभाविक गुण-दोषों को उपस्थित करके गुरजाडा ने जनता के संकीर्ण दृष्टिकोण में भी परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया। उसमें वे सफल हुए। उन्होंने हास्य रस को जबर्दस्त साधन बना लिया। वास्तव में "कन्याशुल्क" हास्य रस का उत्तम नाटक है। गुरजाडा के "कन्याशुल्क" नाटक का पंडितों के द्वारा बड़ा विरोध हुआ। परन्तु जनता ने उसका स्वागत किया। विरोध के कारण उसकी लोक प्रियता और बढ़ती ही गई। "कन्याशुल्क" नाटक प्राच्य और पाश्चात्य विचारों के

संधि युग पर आधारित है। अतः उस समय की सामाजिक परिस्थितियों का वह एक प्रतीक बन गया है।

महिलाओं के वैधव्य के दुष्परिणाम, व्यभिचार, वेश्या जीवन, कचहरी के दांव-पेंच, बगुला भगत बन कर व्यवहार करने वाले समाज के ढोंगी ठेकेदार वगैरह का सजीव चित्रण इस नाटक में किया गया। इसलिए दर्शकों पर उसका बड़ा असर पड़ा। इस नाटक के गिरीशम, रामप्पा पंतुलु, अग्निहोत्रावधानी, सौजन्यराव, लुब्धावधानी, वेश्या मधुरवाणी, और बाल विधवा बुच्चम्मा वगैरह पात्र आन्ध्र के लोक जीवन से अच्छी तरह हिल मिल गये हैं। आज भी इस नाटक का आन्ध्र के गांवों में अभिनय होता है। १९५५ में इस नाटक का सिनेमा भी तेलुगु में निकला। इसके बाद गुरजाडाने "कोंडु भट्टीयम और बिल्हणीयम" नामक नाटक की भी रचना की। उन्हें वे पूरा नहीं कर सके। इस प्रकार गुरजाडा ने तेलुगु साहित्य सदन को अपनी कई अमूल्य रचनाओं से अलंकृत किया। आन्ध्र कवियों का इतिहास, कलिंगदेश का इतिहास, कुछ सामाजिक नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, साहित्यिक आलोचनाएँ वगैरह लिखने का गुरजाडाने आरम्भ किया। परन्तु उन्हें वे पूरा नहीं कर सके और बीच में ही वे चल बसे।

अनुपम सेवाएँ

स्व. गुरजाडा अप्पाराव ने जनता की रुचि पर ध्यान देकर साहित्य के भाव पक्ष तथा कला पक्ष में परिवर्तन किया। प्राचीन सम्प्रदाय के समर्थक कवि जनता की परिवर्तित रुचि को समझ नहीं सके। वे ग्रांथिक भाषा का ही नहीं बल्कि पुरानी साहित्यिक परिपाटियों का समर्थन करते रहे। मगर कालचक्र आगे बढ़ता ही गया। आखिर जनभाषा की ही विजय हुई। आज व्यावहारिक तेलुगु भाषाने साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। गुरजाडाने इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। कन्याशुल्क, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, छुआछूत, अन्ध विश्वास, और राज शासन आदि के विरुद्ध कविताओं के द्वारा गुरजाडा ने विद्रोह किया। स्वदेश और स्वभाषा को साहित्य में स्थान देकर आधुनिक तेलुगु साहित्य के भावपक्ष में क्रान्तिकारी परिवर्तन ले आये। सरल भाषा में 'मुत्यालसरमु' जैसे छोटे से छन्द में कविता करके कला-पक्ष में भी परिवर्तन ले आये। कृत्रिम अलंकार योजना, पांडित्य की प्रगल्भता से वे दूर रहे। कला कला के लिये नहीं, कला उपयोगिता के लिये है, कला समाज के लिये है, कला जनता की भलाई के लिये है, इस सिद्धांत का उन्होंने समर्थन किया। जब पण्डितोंने कहा कि ग्रान्थिक भाषा में गुरजाडा नहीं लिख सकते, इसीलिये व्यावहारिक भाषा का समर्थन कर रहे हैं तब उन्होंने 'सुभद्रा' शीर्षक

कविता ग्रान्थिक भाषा में, प्राचीन नियमों के अनुसार कर के सब को चकित कर दिया।

इस प्रकार गुरजाडा अप्पाराव जब तक जीवित रहे तब तक समाज और साहित्य की उन्नति के लिए प्रयत्न करते रहे। उसके लिए वे निरन्तर संघर्ष करते रहे। अन्धविश्वासों का खण्डन करके समाज को प्रगति पथ पर आगे बढ़ाने का भरसक प्रयत्न उन्होंने किया। प्रगतिशील शक्तियों, और प्रवृत्तियों के लिए उन्होंने मार्ग प्रशस्त किया। अपनी अनन्य प्रतिभा, अद्भुत रचना शक्ति, निर्भीक विचार और अथक साधना के बल पर स्व. गुरजाडा अप्पाराव तेलुगु समाज और साहित्य के वैतालिक बन गये।



रायप्रोलु सुब्बाराव

आप प्राचीन पंडिताऊ तेलुगु भाषा और शैली को अपनाते हुए, छायावाद, रहस्यवाद, और हालावाद, वगैरह अर्वाचीन नई प्रवृत्तियों को तेलुगु के काव्य जगत् में पहले पहल प्रस्तुत करनेवाले यशस्वी कवि हैं।

"ए देश मेगिना, एंदु कालिडिना
ए पीठ मेक्किना, एव्व रेमनिना
पोगडरा नीतल्लि भूमि भारतिनी
निलपरा नी जाति निंडु गौरवमु ॥"

(जिस किसी भी देश में तू क्यों न चल,
जहाँ भी निज चरण तू क्यों न धर,
लोग चाहे कुछ भी कह लें,
तू किसी की परवाह न कर,
माँ भारत की तारीफ़ कर,
कौम की इज्ज़त बनाये रख।)

"ए पूर्व पुण्यमो, ए योग बलमो
जनियिंचिनाड वी स्वर्ग खंडमुना,
ए मंचि पूवुलनु प्रेमिंचिनावो
निनुमोचे ईतल्लि कनक गर्भमुना ॥"

(न मालूम किस पुण्य व योग के बल से,
इस स्वर्ग खण्ड में तूने जन्म लिया है
न मालूम तूने ऐसे किन सुमनों को प्यार किया है,
जिनसे माताने निज कनक गर्भ से,
तुझे जन्म दिया है।)

पोलमुल रत्नालु मोलिचेरा यिचटा,
वार्धिलो मुत्यालु पंडेरा यिचटा,
पृथिवि दिव्यौषधुल पिदिकेरा मनकु

अवमान मेलरा, अनुमान मेला!
भारतीयुड नंचु भक्ति तो पाडा॥

(यहाँ के खेतों में रत्न उगे,
सागर में मोती जगे
यहाँ की पृथ्वीने कितनी ही ओषधियाँ दुह के दी
यहाँ के काननने हमें कस्तूरी दी
रे भारतीय! अपमान भूल!
संकोच छोड! भारत का गुण-गान कर।)

देशभक्ति के उपर्युक्त पद्य आन्ध्र प्रदेश के हर बच्चे की जबान से सुनने को मिलते हैं। ऐसी कविताओं के द्वारा तेलुगु भाषा-भाषियों में राष्ट्रीयता की भावना भरनेवाले कविवर श्री रायप्रोलु सुब्बाराव का तेलुगु के आधुनिक कवियों में विशिष्ट स्थान है।

विभिन्न धाराओं के प्रवर्तक

भावपक्ष तथा कलापक्ष के प्राचीन रूढिगत संप्रदायों को त्याग कर सभी में नवीनता लाने का प्रयत्न भारत की अन्य भाषाओं की तरह तेलुगु भाषा में भी उन्नीसवीं सदी के आरंभ से शुरू हुआ। स्व. गुरजाडा अप्पाराव तथा श्री रायप्रोलु सुब्बाराव दोनोंने आधुनिक तेलुगु काव्य जगत् में नई प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत कीं। पंडितों के द्वारा तिरस्कृत व्यावहारिक तेलुगु भाषा में कविता करके जनता के हृदय को स्पर्श करने का गुरजाडा अप्पारावने स्तुत्य प्रयत्न किया। पर रायप्रोलु सुब्बाराव ने साहित्यिक तेलुगु भाषा को

अपनाते हुए उसे जनता के समीप लाने का प्रयत्न किया। साथ साथ छायावाद, रहस्यवाद तथा हालावाद वगैरह नई प्रवृत्तियों को पहले पहल तेलुगु काव्य साहित्य में श्री रायप्रोलुने प्रस्तुत किया। भारतीय साहित्य और संस्कृति को हृदयंगम करके पाश्चात्य साहित्य व संस्कृति से प्रभावित होकर दोनों का मंगलमय समन्वित रूप आपने अपने काव्यों के द्वारा प्रस्तुत किया। इससे रायप्रोलु आधुनिक तेलुगु काव्य साहित्य में नवीन धारा के प्रवर्तक बन गये। अपनी कविता के बारे में वे स्वयं लिखते हैं—

"परिणत वाक्कुलस्मदनवद्य कला
कविता पितामहुलस्थिरमुग
निच्चिरी तेनुगु दीयनि मान्यमु,
निंदु नूत्न वल्लरुलनु क्रोत्तयंटूलनु
फल जातुल नाटि पेंतु सं
बरमुन ने वनप्रियलु मंचेल पै
नेलुगेत्ति पाडगान्।"

(परिणत वाणी के अनन्य कविता कलाविशारद मेरे पितामह मुझे मधुर तेलुगु भाषा रूपी उपजाऊ भूमि प्रदान कर गये। उसमें नव वल्लरियों, नये पौधों तथा विविध फलों से युक्त द्रुमों को खुशी से इस प्रकार लगाऊँगा, जिससे प्रफुल्लित हो कर वन प्रियाएँ मंचों पर चढ़ कर मुक्त कंठ से गा उठें।)

फिर लिखते हैं—

"अंददु निर्विकारमु निरंजनमौ
परतत्व रेख, आनंद मे निर्गुणान
सगुणाननु प्राप्यमयौट,

मातृभूमि दर्शिंतु नी प्रकृति दिव्य
शुभावरणान, तत्पयो बिंदुवु लानु
बिंदुवले विंत स्वतंत्रमुतो नहर्निशल।"

(निर्विकार निरजन परतत्वकी रेखा अप्राप्य है। पर निर्गुण और सगुण में भी आनंद ही प्राप्त होता है। अतः इस प्रकृति के शुभ आवरण में मैं मातृमूर्ति के दर्शन करता हूँ। विचित्र स्वतंत्रता के साथ शिशु सा उसके पय की बूंदों का पान करता हूँ।)

शिक्षा दीक्षाएँ

श्री रायप्रोलु का जन्म मार्च १८९२ ई० में आन्ध्र प्रांत के गुंटूर जिले के गार्लपाडु नामक गाँव में पंडित ब्राह्मण कुटुंब में हुआ। उनके पिताजी अप्पावधानी संस्कृत के विद्वान थे। रायप्रोलु लिखते हैं कि "हे अंबे! मेरे पिता और दादा, धर्म-कर्म के अनुष्ठान में लीन रह कर यशस्वी बने। अपने मामाजी की साहित्य साधना का प्रभाव मुझ पर पडा। फलस्वरूप 'अस्मन्नव्य वाचा सरः प्रातः पद्म मरंद भांड' तुम्हारी चरण सेवा में अर्पित करता हूँ। स्वीकार करो।"

बचपन से ही संस्कृत तथा तेलुगु के महान् पंडितों का सांगत्य रायप्रोलु को मिला। स० १९१० ई० में हाइस्कूल की पढाई समाप्त कर के गुंटूर शहरके क्रिश्चियन कालेज में भर्ती हो गये। १९०८ से ही वे तेलुगु में कविता करने लगे थे। आरंभ से उनका ध्यान स्कूलीशिक्षा की तरफ नहीं गया। इसीलिये वे

राजमहेन्द्री, मछलीपट्टणम, विजयवाडा तथा मद्रास आदि शहरों में तीन चार बरस तक रहे। फिर हैदराबाद के निजाम कालेज में भर्ती हो गये। वहाँ उन्हें छात्रवृत्ति मिल गयी। वहाँ भी वे ज्यादा दिन नहीं रह सके। विजयवाडा चले गये। वहीं पर वे रहने लगे।

उस समय भारत में राष्ट्रीयता की आवाज़ चारों तरफ गूंजरही थी। रायप्रोलु उस आन्दोलन से प्रभावित हो गये। १९१३ में उनकी "बुद्ध की ध्यान मुद्रा" शीर्षक कविता प्रकाशित हुई। आन्ध्र की जनताने उस कविता का स्वागत किया। १९१३ से आपके "तृणकंकण, कष्ट कमला, स्नेहलता, तेलुगु तोटा (तेलुगु का बगीचा), स्वप्न कुमारम" वगैरह काव्य प्रकाशित हुए। मद्रास में रायप्रोलुने गीतांजलि के अंग्रेजी अनुवाद की प्रति एक अंग्रेज फादरी से प्राप्त की। उसके अध्ययन से इतने प्रभावित हुए कि विश्वकवि के शिष्य बनने का निश्चय कर लिया। विश्वकवि रवींद्रबाबू से उन्हें अनुमति भी मिलगयी।

दिसंबर १९१९ को शांतिनिकेतन में वे भर्ती हो गये। वहाँ करीब ३२ मास तक रहे। वहाँ गुरुदेव, विधुशेखर भट्टाचार्य, अंड्रूस तथा पियर्सन जैसे विद्धज्जनों की शुश्रूषा करने का सौभाग्य रायप्रोलु को प्राप्त हुआ। गुरुदेव के व्यक्तित्व, सिद्धांत और काव्य प्रतिभा का रायप्रोलु पर इतना प्रभाव पडा कि वहीं पर ऊर्वशी, फूल, पुष्पलाविका वगैरह तेलुगु

कविताओंका आपने सृजन किया। बाद शांतिनिकेतन से काशी चले गये। वहाँ बरोडा महाराजा की धर्मशाला में रहते हुए काशी के संस्कृत पंडितों के दर्शन करते और शास्त्रार्थ में भाग लेते रहे। उसके बाद वहाँ से घर लौट आये।

प्रबोधात्मक काव्य

उस समय भाषावार राज्यों की स्थापना का आन्दोलन चलने लगा। आन्ध्र राज्य की स्थापना का आन्दोलन ज़ोर पकडने लगा। रायप्रोलुने सुप्त आन्ध्र जनता को जगाने का बीडा उठाया। अपनी ओज भरी कविताओं के द्वारा कायरों में भी नई जान फूंकने में वे सफल हो गये। "आन्ध्रावली" काव्य का प्रकाशन आपने इसी समय किया, जिसकी हज़ारों प्रतियाँ थोडे ही समय में बिक गयीं। अलग आन्ध्र राज्य की स्थापना के आन्दोलनने तेलुगु भाषाभाषियों में नई जागृति उत्पन्न कर दी। यह आन्दोलन राष्ट्रीयता के लिये कभी भी घातक सिद्ध नहीं हुआ। खास कर आन्ध्र भाषाभाषियों में राष्ट्रीय चेतनता लाने में भाषावार राज्य आन्दोलन बडा सहायक सिद्ध हुआ।

प्रसिद्ध व्यक्तियों का सांगत्य

१९२१ ई० में रायप्रोलु हैदराबाद पहुँच गये। तब तक पारिवारिक जिम्मेदारी बढ गई थी। उस्मानिया

यूनिवर्सिटी में सहायक आचार्य नियुक्त हुए। तब से विश्वविद्यालय उनका कार्यक्षेत्र बन गया। १९३५ में वे रीडर बने। फिर तेलुगु प्रोफेसर बने। बाद वरंगल कालेज के प्रिन्सिपाल बने। जून १९५० में नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। अकटूबर १९५६ में वेंकटेश्वर यूनिवर्सिटी, तिरुपति के तेलुगु विभाग के संचालक नियुक्त हुए। १९५९ में उस कार्य से निवृत्त हो कर हैदराबाद वापस आ गये। सिकंदराबाद में निजी मकान बनाकर आजकल आराम लेते हुए जीवन बिता रहे हैं। कुल ३८ वर्ष तक रायप्रोलुने शिक्षा क्षेत्र में कार्य किया। आन्ध्रप्रांत के स्व. चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम पंतुलु, स्व. मुटुनूरि कृष्णाराव, स्व. कोमर्राजु लक्ष्मणराव, स्व. वेदं वेंकट्रायशास्त्री, स्व. आन्ध्ररत्न दुग्गिराला गोपालकृष्णय्या, स्व. चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री, स्व. सि. रामलिंगारेड्डी जैसे प्रसिद्ध महापुरुषों के संपर्क में रहने का सौभाग्य रायप्रोलु को प्राप्त हुआ। इससे उन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला और उर्दू के साहित्यों का आपने विशेष अध्ययन किया। उनके प्रभाव से प्रभावित होकर आधुनिक तेलुगु काव्य साहित्य की श्रीवृद्धि में बडा योग दिया। उनके जीवन की कई अभिलाषाएं अब पूर्ण हो गईं। भारत स्वतंत्र हुआ। आन्ध्र प्रदेश की स्थापना हुई। विशालान्ध्र की स्थापना भी हो गई। आर्थिक और पारिवारिक दृष्टि से भी उनका जीवन सुखमय बन गया।

हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ शरीर, साँवला रंग, चौडा माथा, उभरा हुआ चेहरा, घनी घनी सफेद भौंहें, फाल में कुंकुम की बिंदी, छोटे छोटे श्वेतकेशों से सज्जित सिर, स्वच्छ श्वेत पोशाक, घुटनों तक लहराता हुआ उत्तरीय, गंभीरस्वर, विशेषता व्यक्त करनेवाला व्यक्तित्व, इन सबका मूर्तिमान स्वरूप ही श्री रायप्रोलु सुब्बाराव हैं।

आशु कविता का विसर्जन

श्री रायप्रोलु के साहित्यिक जीवन पर आरंभ में स्व. तिरुपति वेंकटेश्वर कवियों का प्रभाव पडा। उस समय आन्ध्र प्रांत में शतावधानम्, अष्टावधानम् की धूम मची हुई थी। रायप्रोलु भी 1910 से अष्टावधानम करने लगे। लेकिन उससे जल्दी ही उन्होंने हाथ खींच लिया। नेल्लूर जिले के बुच्चिरेड्डिपालेम नामक गांव की एक विद्वत्सभा में उन्होंने प्रण किया कि आगे चल कर मैं अष्टावधानम नहीं करूंगा। उस समय उन्होंने कहा—हे जननी! मुझे आशु कविता से सन्यास दिला दो। तेलुगु बड़ी मधुर भाषा है। उसके पद्य व गीत अत्यंत मनमोहक हैं। उसी तेलुगु में रसात्मक कविता करूंगा। मुझे शक्ति दो।" उन्होंने तब से आशु कविता करना छोड़ दिया।

विविध काव्य

श्री रायप्रोलु की कविताएँ आठ श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं। (1) प्रेम प्रधान

(२) कथा प्रधान (३) गेय काव्य, (४) प्रबोधात्मक (५) व्यक्ति प्रधान (६) प्रकृति सम्बन्धी, (७) रहस्य-वादी (८) फुटकर। आज तक प्रकाशित उनके कविता संग्रह व काव्यों में "माधुरी दर्शनम, रम्यालोकम, तृण कंकणम, स्वप्नकुमारम, आन्ध्रावली, तेनुगु तोटा (तेलुगु का बगीचा) स्नेहलता देवी, कष्ट कमला, जडकुच्चुलु (वेणी के गुच्छे), वनमाला, मधुकलशम, तथा ललिता" वगैरह उल्लेखनीय हैं।

श्री रायप्रोलु सुब्बाराव कृत—"रम्यालोकम" तथा "माधुरी दर्शनम" कवि, कविता और काव्य कला के तत्व प्रस्तुत करनेवाले काव्य हैं। कवि पहले ही स्पष्ट कर देते हैं कि प्राचीन लक्षण बदलने का मेरा विचार नहीं है। अतिनवीन लक्षणों को जोड़ने का अहंकार भी नहीं है। लेकिन हाँ, नवीन काव्य तत्वों का दृष्टिकोण मात्र प्रस्तुत करने का मैंने प्रयत्न किया है।" रायप्रोलु के पद पद में प्राचीनता के प्रति श्रद्धा, नवीनता के प्रति आकर्षण दृग्गोचर होते हैं। उनकी दृष्टि में कवि विरागी नहीं है। पंच भूतात्मक प्रकृति उसकी उपास्य देवता है। वे कहते हैं—

कानबड कनुमान प्रमाणमुन के
अंदियंदनि परतत्व मवलनुनिचि
पंचभूत भासित मैन प्रकृति कलने
सन्निहित लक्ष्य मनिये वचस्वि नेडु।
अंदु नी विलक्षण जीवयात्र कोदवु
पृथिव ने नव्युलु समाश्रयिंतु भक्ति

तल्लिगा, धात्रिगा, देवताम
तल्लिगा समस्त परापर काम्यमुलकु ॥

(जो आँखों को दिखाई नही देता, जो अनुमान के लिये भी दुर्लभ है, उस परतत्व की अपेक्षा पंचभूतों से भासित प्रकृति माता की आराधना करना ही आज का वचस्वी अपना लक्ष्य मानता है। सृष्टि के विलक्षण पथ की यात्रा में प्राणी की प्रबल सहायिका पृथ्वी ही है। समस्त कामनाओं की तृप्ति केलिये भक्ति के साथ सब लोग माँ और देवी मान कर उसी का आश्रय लेते हैं।)

जीवन की दैनिक घटनाओं के चित्रण के द्वारा असुन्दरता में सुन्दरता के दर्शन करना और कराना कवि का लक्ष्य है। इसीलिये कवि रायप्रोलु "झूठे पत्ते" की महानता पर भी ध्यान देते हैं। उस में सत्यं, शिवं, सुन्दरम के दर्शन करते हैं। काव्य कला का लक्ष्य निम्न लिखित पद्य में प्रकट करते हैं—

कलदेंदो नित्य सुन्दर
ललितालंबन मनंत लावण्य समु
ज्वल हस्त मोकटि, तन्मं
गलाभिनय रूपणंबे काव्यकल बुधा।"

(हे बुध! समस्त जगत के पीछे नित्यनूतन, अनंत लावण्यमय एक समुज्वल हस्त है। उसी के मंगलमय अभिनय का निरूपण ही काव्यकला का लक्ष्य है।)

कवि और काव्य सम्बन्धी गंभीर सिद्धांतों का स्पष्टीकरण, सरल और सरसशैली में रायप्रोलुजी ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से किया है।

"स्वप्न कुमार" शुद्ध प्रेम तत्व को व्यक्त

करनेवाला काव्य है। कवि को एक सुन्दरी दर्शन देती है। प्रेम तथा जीवन के रहस्यों को स्पष्ट करती है। प्रेम के आदर्श रूप का वर्णन इस काव्य में किया गया है। कवि बताते हैं कि आदर्श प्रेम ही आदमी के जीवन का परम लक्ष्य है। वह तभी संभव है, जबकि वह कामुकता से मुक्ति पा जावे। ऐसा शुद्ध प्रेम जब दंपतियों के बीच रहता है तब वह संतान सृजन का साधन बन कर धर्म की रक्षा तथा लोक मंगल का आधार बन जाता है। फिर ऐसे विशुद्ध आदर्श प्रेम का स्पष्टीकरण कई उदाहरण देकर कवि करते हैं। कहते हैं—"प्यासे मिलिंद जब आ जाते हैं तब उन्हें अपनी गोद में छिपाकर पंकज मकरंद पिला पिला कर ममता व्यक्त करता है। कुल्हाडी से घायल होने पर भी वृक्ष शतृ को शीतल छाया ही प्रदान करता है। थन में बार-बार मुँह से धक्के लगानेवाले बछडे के शरीर को गाय प्रेम से चाटती है। इकलौती बेटी, शादी के बाद जब पति के घर जाने लगती है तब उसकी माँ का हृदय बरबस रो पडता है। इस लिये प्रेम त्यागमय है। सुख और दुख, संयोग और वियोग एकही वस्तु के दो पहलू हैं। जितना प्रेम होता है उतना ही दुख मिलता है। दीप के परिमाण के अनुसार उसकी छाया भी होती है। अतः प्रणय के सौभाग्य और विरह के भार से अपने हृदय को प्रसन्न और उदास बनाना ठीक नहीं है।"

"तृणकंकण" प्रेम प्रधान काव्य है। १९१३ में यह काव्य प्रकाशित हुआ। उसका नायक अपने पुनीत प्रेम के प्रतीक के रूप में तृणकंकण अपनी प्रेयसी को समर्पित करता है। यही इस लघु काव्य की कथा वस्तु है। इस काव्य के द्वारा आधुनिक तेलुगु काव्य जगत् में छायावादी और रहस्यवादी शैली की प्रतीक पद्धति का श्रीगणेश हुआ। उस समय इस नई परिपाटी का काफी विरोध हुआ। मगर आगे चलकर तेलुगु काव्य जगत् में "भाव कविता" के नाम से ऐसी प्रणाली का खूब प्रचलन हुआ।

"जड़कुच्चुलु" (वेणी के गुच्छे) लिरिक कविताओं का संग्रह है। काव्य के आरम्भ में स्वयं कवि कहते हैं—

"पायलु पायलुगा विडि
पोयिन ना तेनुगु कन्ने मुंगुरुलकु
वेणी योग्याभरणमुगा
नी येड जडकुच्चु लल्लि
यिच्चिचति ब्रीतिन्"

(अपनी तेलुगु सुन्दरी की इधर-उधर बिखरी लटों को गूथ कर वेणी बनाने के लिए उपयोगी गुच्छे बना कर प्रेम से सौंप रहा हूँ।)

इस संग्रह में वर्षा ऋतु, प्रवास राधिका, मेघ, कोयल, वगैरह कविताएँ संग्रहीत हैं।

"वनमाला" भिन्न-भिन्न कविताओं का संग्रह है। इसमें काव्य की विशेषताओं का कवि यों वर्णन करते हैं—

"मिट्टी पर बिखरी सूखी हड्डियाँ जहाँ मिलती हैं काव्य वैसा स्मशान नहीं है। काव्य के सुवर्णमय प्रांगण में ऐसी हड्डियों के लिए जगह नहीं है। यहाँ सब अच्छे पदार्थ ही मिलेंगे। काव्य नव प्रसूता दुधारू गाय जैसा है। बछड़ा थन में मुंह लगावे तो अमृत जैसा दूध उमड़ता है। मगर ऐसा न करके थन में चोट लगावे तो लात का सामना करना पडता है।" रायप्रोलु के कथा प्रधान काव्यों में "स्नेहलता देवी", "कष्ट कमला" तथा "ललिता" मुख्य हैं। ये करुणाजनक काव्य हैं। दहेज न दे सकने के कारण अपने पिता की दयनीय स्थिति देख कर पुत्री स्नेहलता अग्नि में प्रवेश कर प्राण दे देती है। बंगाल प्रान्त की यह वास्तविक घटना है। रायप्रोलुने उसी घटना को लेकर मौलिकरूप से छोटे से कथा-काव्य का तेलुगु में सृजन किया। "कष्टकमला" भी इसी प्रकार का कथा प्रधान काव्य है। आमतौर पर राय-प्रोलु के काव्यों में कथावस्तु के क्रमिक विकास की अपेक्षा वर्णन शैली ही की अधिक प्रधानता दीखती है।

"आन्ध्रावली तथा तेनुगु तोटा (तेनुगु का बगीचा)" में रायप्रोलु जी की प्रबोधात्मक कविताएँ संग्रहीत हैं। एक तरफ राष्ट्रीय आन्दोलन, दूसरी तरफ आन्ध्र राज्य की स्थापना का आन्दोलन जब चल रहे थे तब रायप्रोलु की ये कविताएँ प्रकाशित हुईं। तेलुगु भाषा-भाषियों की राष्ट्रीय अभिलाषाएँ रायप्रोलु की कविताओं के रूप में साकार हो उठीं। समसामयिक

समस्याओं को लेकर निकलने वाले काव्य प्रायः अस्थायी होते हैं। परन्तु रायप्रोलु की राष्ट्रीय कविताएँ आधुनिक तेलुगु साहित्य की अमूल्य स्थाई संपत्ति बन गई हैं। आन्ध्रों की खूबियों और खामियों का वर्णन करके श्री रायप्रोलुने तेलुगु भाषा-भाषियों में राष्ट्रीय भावनाएँ भरने का प्रयत्न किया और उस में सफल भी हो गये।

तेलुगु में छायावादी और रहस्यवादी कविताओं का भी आरम्भ श्री रायप्रोलु ने ही किया था। (१) हे पिक! क्यों बार-बार तू गाता है? (२) हे प्रभो! भुला दिया तो क्या हुआ? (३) कीर (४) यात्रा वगैरह कविताएँ इसके उदाहरण हैं।

उपर्युक्त मौलिक काव्यों के अलावा रायप्रोलुजी ने कालिदास कृत मेघदूत, शंकराचार्य कृत सौन्दर्यलहरी तथा उमर खैयाम कृत रुबाइयों का तेलुगु में अनुवाद किया है। उमर खैयाम के हालावाद का प्रचार रायप्रोलु कृत "मधुकलशम" के द्वारा तेलुगु प्रान्त में हुआ। रवीन्द्रनाथठाकुर की ऊर्वशी वगैरह कविताओं का भी आपने मौलिक अनुवाद तेलुगु में किया। इनके अलावा महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित्र का प्रामाणिक अनुवाद आपने तेलुगु में किया। "रूपनव-नीतम" आपका मौलिक तेलुगु रूपक है।

प्राचीन और अर्वाचीन शैलियों का समन्वय

कलापक्ष की दृष्टि से श्री रायप्रोलुने प्राचीन और अर्वाचीन शैलियों का समन्वय किया। विषय

के अनुसार भाषा का प्रयोग करने में उन्होंने प्रतिभा दिखाई है। रायप्रोलु की सभी कविताएँ मुक्तक ही रही हैं। तेलुगु के प्रचलित छन्दों के साथ-साथ गीतों की भी रचना उन्होंने की है। कालिदास कृत कुमार संभवम के रति विलाप के प्रसंग पर प्रयुक्त वियोगिनी छन्द का तेलुगु में रायप्रोलुने बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया। इस तरह भाषा, भाव तथा छन्द वगैरह की दृष्टि से भी रायप्रोलु का पथ बड़ा प्रशस्त रहा।

स्वागत और सम्मान

तेलुगु भाषा भाषियोंने श्री रायप्रोलु सुब्बाराव का कई बार सम्मान किया। नव्य साहित्य परिषद् तथा आन्ध्र पंडित परिषद् के वे १९३४ में सभापति मनोनीत हुए। विशाखपट्टणम शहर में आन्ध्र विश्व विद्यालय के रजतोत्सव के अवसर पर रायप्रोलु का षष्टि पूर्ति उत्सव मनाया गया। आन्ध्र प्रदेश के दर्जनों केन्द्रों में आप सम्मानित हुए। १९५६ में रेडियो सलाहकार समिति के भी सदस्य रहे। दिल्ली में सम्पन्न कवि सम्मेलनों में आन्ध्र प्रदेश की तरफ से वे कई बार भाग ले चुके। "साहित्य अकादमी, दिल्ली" की सलाहकार समिति के आप सदस्य हैं। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के भी वे सदस्य हैं। इस तरह अपनी अनुपम साधना के बल पर तेलुगु के लोकप्रिय आधुनिक कवियों में श्री रायप्रोलुने विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है।



स्वामी शिवशंकर

आप शुद्ध और त्यागमय आदर्श प्रेम का वर्णन अपनी कविताओं में करके, बडी सहिष्णुता के साथ तेलुगु के कितने ही आधुनिक कवियों और लेखकों को प्रोत्साहित कर आधुनिक तेलुगु साहित्य सदन की श्रीवृद्धि में बडा सहयोग देनेवाले कवि स्रष्टा हैं।

सृष्टि का मूल आधार प्रेम है। प्रेम ही जीवन का सार है। ऐसे प्रेम के आदर्श स्वरूप का स्पष्टीकरण विश्व के कई कवियोंने किया है। स्वच्छ और शुद्ध प्रेम त्यागमय, प्रतिफल से रहित और समरस भाव समन्वित होता है। आदर्श प्रेम में हानि-लाभ, उतार-चढ़ाव, तर्क-वितर्क, आशा-निराशा, शंका-समाधान तथा क्रय-विक्रय के लिए स्थान नहीं रहता। आत्मार्पण या त्याग ही सच्चे प्रेमी का लक्ष्य होता है। इसी बात का स्पष्टीकरण प्रसादजी अपने 'कामायनी' काव्य के निम्नलिखित पद्य में करते हैं। वे कहते हैं—

"विनियम प्राणों का यह कितना
भय संकुल व्यापार अरे,
देना हो जितना दे दे तू,
लेना! कोई यह न करे,
परिवर्तन की तुच्छ प्रतीक्षा
पूरी कभी न हो सकती,
संध्या रवि देकर पाती है
इधर-उधर उडुगण बिखरे।"

ऐसे शुद्ध और त्यागमय आदर्श प्रेम का वर्णन अपनी कविताओं में करके तेलुगु के आधुनिक काव्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने वाले कवियों में स्वामी शिवशंकरजी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी कविताओं में निर्मल, शुद्ध प्रेम तत्व के साथ-साथ मानव की विविध प्रवृत्तियों का भी सहज, सुन्दर और चित्ताकर्षक चित्रण किया है। लौकिक से

अलौकिक की ओर आपका लक्ष्य रहा है। इसीलिए आलम्बन उनके लिए केवल प्रेमिका ही नहीं, बल्कि उपास्य देवी भी है। कवि आलम्बन को लक्ष्य कर कहते हैं—

"तलचुचुन्नानु नीवु प्रियतमवटंचु,
एंचुचुन्नानु निनू हृदयेश्वरिगनु
वलचुचुन्नानु जीवितेश्वरिग निन्नु
भावनमु सेयुचुंटि निन् देविरीति॥"

(मैं समझता हूँ कि तुम मेरी प्रियतमा हो,
मैं मानता हूँ कि तुम मेरी हृदयेश्वरी हो,
जीवितेश्वरी समझ कर मैं तुम्हारी चाह करता हूँ,
उपास्य देवी मान कर मैं तुम्हारा ध्यान करता हूँ॥)

कविकुलगुरु

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का जो स्थान है, वही आधुनिक तेलुगु साहित्य में स्वामी शिवशंकरजी का है। तेलुगु के आधुनिक कई कवियों और लेखकों के स्वामी जी स्रष्टा माने जाते हैं। वे स्वयं कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, अनुवादक और पत्रिका-सम्पादक हैं। साधारण कवियों के लिए दुर्लभ सहन शक्ति, विभिन्न भाषाओं और उनके साहित्यों के ज्ञाता होने के कारण पांडित्य की गहराई, पद्य व गद्य लेखन और पत्रिका संचालन की नई रीतियाँ प्रस्तुत करने की शक्ति स्वामीजी में इतनी अधिक है कि अन्य किसी

तेलुगु के साहित्यिक में नहीं है। इन्हीं विशेषताओं के कारण आप सर्व प्रिय बन गये हैं।

बहुभाषाविद

सन्यासाश्रम स्वीकार करने के पहले स्वामी शिवशंकरजी का नाम तल्लावज्झुल शिवशंकर शास्त्री था। संस्कृत के "कृष्णलीला तरंगिणी" के कर्ता प्रसिद्ध नारायण तीर्थ, शिवशंकरजी के वंश के पूर्व पुरुष थे। स्वामीजी का जन्म ता. १२-६-१८९२ ई० को आन्ध्र प्रदेश के गुंटूरु जिले के काजा नामक गाँव में एक मध्यवर्गीय वैदिक ब्राह्मण कुटुम्ब में हुआ। स्वामीजी के पिता कृष्णशास्त्रीजी संस्कृत और तेलुगु के अच्छे विद्वान थे। स्कूल में जब वे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तब उनके पिताजी का देहान्त हो गया। इस कारण मेट्रिक्युलेशन तक ही स्कूल की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उन्हें मिला। वे बचपन से ही अथक परिश्रमी, प्रतिभावान और विद्या प्रेमी रहे। संस्कृत साहित्य, व्याकरण, तर्क शास्त्र, अद्वैत सिद्धांत का अध्ययन, जगद्गुरु स्वामी कल्याणानंद 'भारती' जैसे महान् आचार्यों की सेवा में रह कर शिवशंकरजी ने किया। हिन्दी, उर्दू, बंगला, कन्नड, अंग्रेजी, लैटिन, फ्रेंच, जर्मनी, फारसी, वैदिक संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं का भी स्वामीजीने अध्ययन किया। चित्रकला और पैंटिंग का उन्होंने अभ्यास किया। प्राच्य और पाश्चात्य दार्शनिक सिद्धांतों का तुलनात्मक

अध्ययन स्वामी जी का प्रिय विषय रहा। घुड़सवारी, टेनिस और बुक बाइंडिंग स्वामीजी के जीवन के बरसों तक अंग ही बने रहे। शुरू से पुस्तकों का अध्ययन करने में वे बेजोड़ रहे। बारह बरस की अवस्था से ही कविता करने लगे थे। बहुभाषाविद् होकर स्वामीजीने तेलुगु साहित्य को समुन्नत बनाने का निर्णय कर लिया। वही उनके जीवन का लक्ष्य-सा बन गया। अपने जीवन के करीब सात बरस अध्यापन कार्य करने में बिताये। राष्ट्रीय आन्दोलन से भी वे दूर रह नहीं सके। १९२0 में हरिजन आश्रम, गुटूरु के व्यवस्थापक रहे। १९30 में तथा १९३२ में दो बार करीब दो बरस तक वे जेल में रह चुके। जेल में रह कर वे कई राजनैतिक साथी कैदियों को हिन्दी, संस्कृत और बंगला सिखाते रहे। स्वामीजी जहाँ रहते वहीं साहित्यिकों की बैठकें होतीं। बड़ी सहिष्णुता के साथ सब को प्रोत्साहित करते। जिनमें थोड़ी सी भी साहित्यिक प्रतिभा दिखाई देती, उनको स्वामीजी आकृष्ट कर लेते और उन्हें ठोक-पीट कर वैद्यराज बना देते। तेलुगु के कितने ही आधुनिक कहानीकार, उपन्यासकार और कवि स्वामीजी का आज भी उतना ही आदर करते हैं, जितना कि पहले करते थे।

१९२३ ई० में स्वामी जी की पत्नी का देहान्त हो गया। उन्होंने फिर विवाह नहीं किया। अपना सारा समय तेलुगु साहित्य के सृजन में बिताने लगे।

१९४७ में शिवशंकर शास्त्री जी ने सन्यासाश्रम स्वीकार कर लिया। तब से वे स्वामी शिवशंकर कहलाने लगे।

हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ सुन्दर सुडौल शरीर, विभूति की स्वच्छ धवल रेखाओं से विलसित विशाल भाल, सफेद घनी भौहों के बीच ऊँची और मोटी-सी नाक, सुडौल मुख, बरसों के अनुभव और अगाध पांडित्य के सूचक छोटे छोटे श्वेत केशों से घिरा सिर, गले में रुद्राक्ष की माला, कोहनी तक की बाहों वाला खादी का ढीला-ढाला छोटा-सा गेरुए रंग का कुर्ता, पिंडलियों तक तहपंद की तरह लिपटी गेरुए रंग की खादी की धोती, गले में गेरुए रंग की खादीकी शाल, हाथ में दो-तीन पुस्तकें, कलम, मोटे शीशों वाला चश्मा, मनीपर्स आदि से भरी गेरुए रंग की छोटी-सी थैली, पैरों में खडाऊँ, निर्लिप्त और आकर्षक संभाषण, चर्चाओं से दूर रहने की प्रबल प्रवृत्ति तथा भोलापन, ये सब स्वामी शिवशंकर की उन विशेषताओं में से हैं जिनके कारण सैकडों व्यक्तियों के बीच भी वे अलग ही दीखते हैं।

नई नई प्रक्रियाएँ

स्वामी शिवशंकरने कई भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन करके उन भाषाओं की नई प्रक्रियाएँ तेलुगु में लाने का प्रयत्न किया। ख़ास कर गीत रूपक, गीत स्वगत, पद्यनाटिका का सृजन तेलुगु में

करके परवर्ती कवियों के लिए वे पथ प्रदर्शक बन गये। शिवशंकरजी के कई गीतरूपक सफलता पूर्वक रंगमंच पर प्रदर्शित किये गये। रेडियो द्वारा कई बार प्रसारित भी किये गये।

स्वामीजी के काव्य और उनके साहित्य को पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) लघु पद्य काव्य (२) गीतरूपक (३) पद्य नाटिकाएँ (४) गीत स्वगत (Dramatic monologues) (५) स्फुट कविताएँ। हृदयेश्वरी, काव्यावली, आवेदना आदि लघु पद्य काव्य, रत्नाकरम, कविप्रिया, यक्ष-राली, प्रभुवाक्यम्, भामति, लोपामुद्रा, वरपरीक्षा, सहजयान-पंथी आदि गीत रूपक, पद्मावती चरण-चारण चक्रवर्ती, दीक्षित दुहिता, पदांक, सद्वाक्य वगैरह पद्य नाटिकाएँ, "वकुल मालिका" जैसा गीत स्वगत, तरुणाप्त, संदर्शन, भावनायिका, प्रभात, पेलार्का, पंच चत्वारिंशत्, तस्लीम, उमरखय्याम, वंदन, हस्तक्षेप, आनंद वगैरह स्फुट कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

आम तौर पर भाव दो प्रकार के होते हैं। (१) बाह्य वस्तुगत या साधारण मानवीमानवीय भाव (२) आत्मगत या भिन्न-भिन्न वैयक्तिक भाव। इसी तरह कविता भी दो तरह की होती है। (१) बहिर्व-स्तुगत (२) आत्मवस्तुगत। पहली तरह की कविता में कवि अपने से भिन्न मानवेतर प्रवृत्तियों को लक्ष्य कर कविता करता है तो दूसरी पद्धति में अपने सुखदुःख, आशा-निराशा आदि को कविता की सामग्री

बना लेता है। स्वामी शिवशंकरजी के काव्यों में दूसरी पद्धति ही अधिक दीखती है। साथ-साथ कथानक की प्रधानता यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है।

विभिन्न काव्य और उनकी विशेषताएँ

"हृदयेश्वरी" पद्य काव्य १९२६ ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें दो दिलों की कथा का चित्रण किया गया। विभ्रम, विरह वीची, आशाज्योति, वैतालिक, शुभ स्वप्न, लोकयात्रा, देवालय, संदेश तथा समागम शीर्षक नौ सर्गों में यह लघु पद्य काव्य समाप्त हुआ है। आलम्बन के दर्शन से आश्रय का हृदय मुग्ध हो कर उसकी तरफ़ आकर्षित होता है। कवि कहते हैं कि उस मनोहर माघ मास के सायं समय मैंने तुम्हारे सरसी के जलज जैसे सुंदर मुख के दर्शन किये। तब से मेरा मन मधुप जैसा बन गया। तुम्हारे मुख पर मंडराने लगा। तुम्हारे बाल जाल में मेरे प्रेमी लोचन उलझ गये।

धीरे-धीरे आकर्षण बढ़ता ही गया। आँखों से आलम्बन दूर होने पर कवि का हृदय निराशा से भर गया। कवि कहते हैं:

चिम्म चीकटुलु क्रम्मे हृत्सीम नपुडु
चूड्कुलुन्न समस्तम्मु शून्य मय्ये
देवि, ई भक्तुनकु निक ध्येय मोकटे
स्थल कमल रम्यमैन नी चरण युगलि।

(मेरे हृदय को अंधकार ने घेर लिया। सब कुछ शून्य-सा लगने लगा। हे देवी! तुम्हारे चरण कमल ही इस भक्त के ध्येय बन गये हैं।)

फिर कहते हैं :

अति विशाल गम्भीर भवार्णवंबु
नन्नु दाटिंप जालिन नौक वीव;
स्थिर पवित्र मदीय हृत्पीठ निहित
दिव्य विमलानुरागाधिदेवि वीव।

(अति विशाल गम्भीर भवसागर के उस पार मुझे पहुँचा सकने वाली नाव तुम्ही हो। मेरे स्थिर पवित्र हृदय में अधिष्ठित दिव्य विमल अनुराग की देवी तुम्ही हो।)

फिर आश्रय के विरह की तीव्रता बढ़ती जाती है। भूख-प्यास वह भूल जाता है। कृष्ण पक्ष ही उसके जीवन में बस जाता है। सारी सृष्टि उसे निस्सार लगती है। अन्य वस्तुओं से उसे घृणा हो जाती है। जीवन से ही वह ऊब जाता है। ऐसे अवसर पर उसे मालूम होता है कि आलंबन भी उस पर मोहित है। तब उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। उसे ऐसा लगता है कि आकाश में घिरे काले-काले बादल सब हट गये हैं। नक्षत्र चमकने लगे हैं। सभी दिशाएँ तेजोमय हो गई हैं। लेकिन अन्त में दिल्ली दूर ही रह जाती है। दोनों अलग ही रह जाते हैं। कवि का भोला-भाला प्रेमी-हृदय धक्का खाता है। धीरे-धीरे उसका हृदय सृष्टि की अन्य

वस्तुओं की वेदना को समझने में तल्लीन हो जाता है। शिव की शरण में उसका हृदय अर्पित हो जाता है।

इस लघु काव्य में शृंगार के दोनों पक्ष—संयोग, वियोग, करुण तथा शांतरस के साथ-साथ मन की विविध गतियों का ऐसा सजीव वर्णन हुआ है कि पाठक मुग्ध हो जाते हैं। भाषा सरल, सरस और सजीव है। अलंकार और छन्द की दृष्टि से यह काव्य काफी प्रभावशाली बन पड़ा है।

'हृदयेश्वरी' काव्य की कथावस्तु ही 'बकुलमाला', 'साधक', 'व्रतभंग' आदि अन्य काव्यों के लिए आधार बन गई है। 'बकुलमाला' की रचना करके स्वामीजी ने आधुनिक तेलुगु साहित्य क्षेत्र में गीत स्वगत (Dramatic monologues) को प्रस्तुत किया है। इसमें एक ही अभिनेता स्वगत भाषण के द्वारा कथा का विवरण प्रकट करता है। 'बकुलमाला' शीर्षक रचना में, प्रेयसी के द्वारा ठुकराये गये एक भोले-भाले प्रेमी युवक के करुण कोमल प्रणय जीवन का वर्णन किया गया है।

नायिका इन्दिरा के हाथों बकुल पुष्पों का हार बनाया जाता है। वह नायक के गले में पहनाया जाता है। थोड़े समय के बाद वह हार मुरझा जाता है। वह सुगन्ध भी कम हो जाती है। मगर नायक की पेटी में वह हार सुरक्षित रहता है। वह हार सारा वृत्तान्त सुनाता है। वह हार कहता है—

वाडिपोयिन जीर्णवकुलमालगनेंचि
तीसिवेयकुडु नन् दीसिवेयकुडय्य।
मीरु नानायकु निकु मित्र मट्टुलु तोचु
काकुन्न नीपेटिकनु देरचु टेलागु ?
ऍंचबोकुडु नन्नु नेंडु पू दंडगा
प्राण मुन्नदि निड्डु प्राण मुन्नदि नाकु !
वित चूपुलतोड वीक्षिंतु रेमिटिकि
प्रसव दामम्मुनकु प्राण मुंडगरादो ?

(मुरझाये जीर्ण वकुल हार समझकर मुझे न ठुकराओ। मालूम होता है कि तुम मेरे स्वामी के मित्र हो। वरना तुम इस पेटी को कैसे खोल सकोगे ? क्योंकि यह पेटी मेरे स्वामी की है। मुझे सूखा पुष्पहार मात्र न समझो। मेरे भी प्राण हैं। आश्चर्य से मेरी ओर क्यों देखते हो ! क्या पुष्प हार के प्राण नही होते ? सुनो 'मुझमें प्राण हैं। प्राण ही नहीं मेरे भी सुख-दुख हैं।

बाल्य, यौवन तथा बुढ़ापे के अन्तर के अनुसार मेरा जीवन भी परिवर्तित होता रहा है। मैं भी दो प्रेमियों के दिलों को मिलाने वाला प्रतीक हूँ। अपने स्वामी का तो सर्वस्व मैं ही हूँ। नवनीत जैसा हृदय है उसका। उसने मुझे कभी शुष्क हार नहीं समझा। आप्त की भाँति मेरा आदर करता रहा। अपने सुख-दुख का विवरण सुनाता रहा। वर्षों से स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। उसी के लिए जिन्दा हूँ। अन्त में वह कहता है—

पुष्पमालिक गाने पुट्टि युंडनयेनि
पूबोणिगा नेनु पुट्ट गलिगितिनेनि

अतनिने वरियिंचि आत्मवल्लभुनिगा
कौगलितु तदीय कंठ मे नेवेल।"

(मैं अगर पुष्पों की माला के रूप में जन्म न लेकर सुन्दरी के रूप मे जन्म लेता तो उसी को आत्मवल्लभ बना लेता। उसके गले से हमेशा लिपटा रहता।)

आगे चलकर नायक और नायिका के संयोग और वियोग का भी वर्णन कविने किया है। नायिका के हृदय की चंचलता और अस्थिरता के कारण अन्त में नायक को निराश होना पड़ता है। आत्मार्पण के लिए भी वह तेयार होता है। क्योंकि उसका प्रेम बासनामय नहीं है। कहता है—

प्रेयसिकै ने, नेयदि ययिननू
संतोषमुतो सलुपगनेर्तुनु

(प्रेयसी के लिए मैं सब कुछ सन्तोष के साथ करने के लिए प्रस्तुत हूँ। नायिका का सुख ही मेरा सुख है। चाहे मैं दुःख ही क्यों न पाऊँ, मगर नायिका सुखी रहे तो उसी में मुझे भी सुख है।)

ऐसे त्यागी प्रेमी का चित्रण देख कर पाठकों का हृदय करुणा से भर जाता है।

इस कवितांश में भी संयोग और वियोग शृंगार के साथ करुणा और शांत रसों का सजीव चित्रण किया गया है। आवेग, हर्ष, चपलता, व्रीडा, धृति, चिंता, दैन्य, शंका, ग्लानि व निर्वेद का सहज वर्णन इस में हुआ है। अनुप्रास, रूपक तथा उपमाओं की छटा सर्वत्र देखने को मिलती है। "प्रेम नगर की

राह कठिन है" मीराबाई के गीत के इस चरण का मूल रूप में स्वामीजी ने इस काव्य में कई बार प्रयोग करके कविता की सुन्दरता बढ़ाई है।

"पद्मावती चरण-चारण चक्रवर्ती" शीर्षक पद्य नाटिका में भक्त जयदेव की महानता दर्शायी गई है। "सहजयान पंथी" शीर्षक गीत रूपक में चंडीदास के निर्मल प्रेम तथा सामाजिक कठोरता का वर्णन किया गया है। "वर परीक्षा" में राजपूत वीरों की साहसी तथा त्यागमय प्रवृत्तियों का वीर रसात्मक साथ-साथ करुण रसात्मक वर्णन किया गया है। ज्योतिसिंह राठौर वरपरीक्षा में उत्तीर्ण तो होता है, परन्तु अपने प्राण देकर। इस प्रकार तेलुगु में दुःखांत गीत रूपक सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने का श्रेय भी स्वामी जी को ही मिला है। स्वामी जी के काव्यों का प्रकाशन कई बार हो चुका है। ८२० पृष्ठों की कविताएँ दो जिल्दों में इसी बीच प्रकाशित की जा चुकी हैं।

साहित्यिक संस्थाओं के सभापति—

आधुनिक तेलुगु साहित्य के साथ स्वामी जी का जीवन हिल-मिल-सा गया। १९१९ ई० में उन्होंने साहिती समिति की स्थापना की। वे ही उसके सभापति बने। उस संस्था की तरफ़ से "साहिती" और "सखि" नामक दो साहित्यिक पत्रिकाएँ चलीं, जिनका लक्ष्य आधुनिक तेलुगु के साहित्यिकों को प्रोत्साहित करना था। १९३८ ई० में नव्य साहित्य परिषद् की

स्थापना की गयी और उसके प्रथम अध्यक्ष स्वामी जी ही बने। इस संस्था की तरफ़ से 'प्रतिभा' नामक साहित्यिक पत्रिका कई वर्षों तक चलायी गई। आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में "सरस्वती" पत्रिका का जो स्थान रहा, वही स्थान आधुनिक तेलुगु साहित्य के विकास में प्रतिभा पत्रिका का रहा। उस पत्रिका के सम्पादकों में स्वामीजी का प्रमुख स्थान रहा। ललित कलाओं के विकास के लिए आन्ध्र नाटक कला परिषद् की स्थापना की गई। इस संस्था की स्थापना में भी स्वामी जी का बड़ा हाथ रहा। यह संस्था आज भी सुचारु रूप से चल रही है।

स्वामीजीने सरस्वती ग्रन्थ मंडली, अनुबंध ग्रन्थ मंडली, और आन्ध्र प्रचारिणी ग्रन्थमाला नामक प्रकाशन संस्थाओं के गौरव सम्पादक रह कर अनेक तेलुगु ग्रन्थों के प्रकाशन में योग दिया। स्वामी जी ने संस्कृत, पाली, बंगला, मराठी, हिन्दी तथा कन्नड़ भाषाओं से ऐसे कई उपन्यासों और कहानियों का तेलुगु में अनुवाद किया जो तेलुगु प्रांत में बहुत प्रचलित हो गये। बंगला के रमेशचन्द्रदत्त, हरप्रसाद शास्त्री, प्रभात कुमार मुखर्जी, रवींद्रनाथ ठाकुर कृत जीवन प्रभात, जीवन संध्या, माधवी कंकण, कांचनमाला, कुंकुम भरणी, रमा सुन्दरी तथा गोरा वगैरह उपन्यासों, प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री, उग्र वगैरह की कहानियों, कन्नड़ की कुछ कहानियों का स्वामीजीने तेलुगु में रूपांतर किया। वे सभी कहानियाँ पुस्तकाकार

में प्रकाशित हो चुकी हैं। संस्कृत से कथा सरित्सागर तथा पाली से जातक कथाओं का भी आपने तेलुगु में अनुवाद किया। वे सब कथाएँ छः-छः जिल्दों में प्रकाशित हो चुकी हैं। "व्याकरण दर्शन" नामक बृहद् ग्रन्थ भी स्वामीजी तेलुगु में प्रस्तुत कर चुके हैं जो कि अभी अप्रकाशित है। इनके अलावा तेलुगु की एकांकियों, कहानियों तथा कविताओं के संग्रहों का स्वामी जी ने संकलन किया। हाल ही में साहित्य अकादमी, दिल्ली की तरफ़ से स्वामी जी की संकलित तेलुगु कहानियों का संग्रह "कथा मंजूषा" के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

हिन्दी प्रचार के समर्थक

स्वामीजी आरंभ से हिन्दी प्रचार के प्रबल समर्थक रहे। स्वयं उन्होंने हिन्दी का प्रचार भी किया। हिन्दी के कई शब्दों का ही नहीं, बल्कि हिन्दी के कुछ वाक्यों का भी अपनी कविताओं में उन्होंने प्रयोग किया। साहित्यिक आदान-प्रदान की तरफ़ उनका ध्यान रहा। इसके लिए वे अनवरत प्रयत्न करते रहे और अब भी कर रहे हैं।

स्वागत और सम्मान

तेलुगु भाषा-भाषियों ने समय-समय पर स्वामीजी का सम्मान करके उनकी सेवाओं का आदर किया है। गुंटूरु, वेटपालेम, हैदराबाद, पोन्नूरु, बापट्ला,

एलूर, विजयवाड़ा वगैरह कई शहरों में बड़े पैमाने पर स्वामीजी का सम्मान किया गया १९५३ ई० में स्वामी जी का षष्टिपूर्ति उत्सव वेटपालेम में धूम धाम से मनाया गया। सम्मान सभाओं में कई उपाधियाँ विद्वानों के द्वारा उन्हें प्रदान की गईं, जिनमें 'महा महोपाध्याय, कवि सार्वभौम' मुख्य हैं। साहित्यिक अकादमी, दिल्ली, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद की सलाहकार समितियों के सक्रिय सदस्यों में स्वामीजी एक हैं। उनका अधिक समय पूजा, अनुष्ठान और साहित्य सेवा में ही बीतता है। उनकी स्फूर्ति, कर्तव्य पालन की दृढ़ता और साहित्य सृजन के प्रति उनकी श्रद्धा आदि विशेषताएँ सबके लिये अनुकरणीय हैं।



विश्वनाथ सत्यनारायण

आधुनिक आन्ध्र साहित्य जगत् के आप उत्तुग हिमालय शृंग हैं। आन्ध्र साहित्य के सभी अंगों पर सफलता पूर्वक लेखनी चलाकर अपने प्रकांड पांडित्य और प्रखर प्रतिभा के बल पर अत्युत्तम काव्यों का सृजन कर आधुनिक आन्ध्र साहित्य सदन को सुसंपन्न बनानेवाले आप सत्साहित्यिक हैं।

संसार की किसी भी भाषा के साहित्य में कई ऐसे कवि देखने में आते हैं जो खंडकाव्य, महाकाव्य और गीत काव्यों की रचना करते हैं। ऐसे बहुत से लेखक मिलते हैं जो कहानियों, रूपकों, उपरूपकों, उपन्यासों तथा आलोचनाओं की रचना करते हैं। गायक मिलते हैं, आचार्य मिलते हैं, वक्ता मिलते हैं और विद्वान मिलते हैं। लेकिन ऐसे साहित्यिक बिरले ही मिलते हैं, जिनमें उक्त सब विशेषताओं का सुन्दर समन्वय हुआ हो।

सर्वतोमुखी प्रतिभा

तेलुगु के आधुनिक साहित्य के समुन्नत इतिहास में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ऐसे ही इने-गिने साहित्यिकों में से हैं, जिनमें उक्त सब विशेषताओं का सुन्दर समन्वय ही नहीं, बल्कि समुचित विकास भी हुआ है। वे एक ही साथ सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न काव्यकार, उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, समालोचक, कुशल सम्पादक, समर्थ आचार्य, सफल वक्ता और अच्छे गायक हैं। तेलुगु साहित्य के करीब-करीब सभी अंगों पर आपने सफलता पूर्वक लेखनी चलायी है। इसीलिए आप कवि सम्राट की उपाधि से विभूषित हो चुके हैं। हिन्दी के आधुनिक साहित्य के अग्रणी स्व. जयशंकर प्रसाद की तरह आपकी रचनाओं पर भी दुरूहता का आरोप लगाया जाता है। फिर भी तेलुगु भाषा-

भाषियों में आपकी रचनाओं की लोकप्रियता जरा भी कम नहीं हुई, बल्कि बढती ही गयी है। आपकी कृतियों की हर साल बढ़ती हुई मांग ही इसके लिए प्रत्यक्ष उदाहरण है।

श्री विश्वनाथजी का जन्म ७ अक्तूबर १८९५ ई. में आन्ध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के नन्दमूरु नामक गाँव में वैदिक ब्राह्मण कुटुम्ब में हुआ। उनके पिताजी का नाम विश्वनाथ शोभनाद्री था। उन्होंने तेलुगु में हरिकथाओं की रचना की थी। वे इतने बड़े दानी थे कि उनकी सारी जायदाद जल्दी ही समाप्त होगयी। स्वयं विश्वनाथजीने 'मा स्वामी' (हमारे प्रभु) शीर्षक भक्ति शतक में अपने पिताजी के दान का यों वर्णन किया है—

'मा तातल् गडियिंचि नास्ति योक ये मात्रंबु मातंड्रि
पेन् दातृत्वंबुन काग लेदु......'

(हमारे दादाओं ने जो सम्पत्ति कमाई वह हमारे पिताजी की दानवीरता के कारण बच नहीं सकी।) फिर भगवान् विश्वेश्वर से प्रार्थना करते हैं—

'तन हस्तंबुन बेल्लुरेगिन महादातृत्व शौर्याग्नि किंधन
मै पोयिन मम्मु बुत्रकुल मादारिद्र्यमुन् जूचि यीतनि
सेविंपु डटंचु जेप्पि चनियेन् मातंड्रि बंगारु कोंडनु
जे दाल्चियन निन्नु जूपि कनवा नामाट? विश्वेश्वरा!'

('हे विश्वेश्वर! हमारे पिताजी के हाथों प्रज्ज्वलित महान् दातृत्व की शौर्याग्नि के हम ईन्धन बन गये। उनके पुत्र हम गरीब होगये। हमारी गरीबी देखकर हमारे

नोबुल कालेज में भर्ती हो गये। फिर बी. ए. पास करके वहीं नोबुल कालेज के हाईस्कूल में तेलुगु अध्यापन का कार्य करने लगे। प्राइवेट तौर पर मद्रास युनिवर्सिटी की एम. ए. परीक्षा भी पास कर ली। तब तक विश्वनाथजी कवि के रूप में विख्यात हो गये। इसी समय महात्मा गान्धीजी का असहयोग आन्दोलन देश भर में व्याप्त हो गया। राष्ट्रीयता के पुजारी विश्वनाथने नौकरी छोड़ दी। मछलीपट्टणम स्व. डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या जैसे नेताओं का कार्यक्षेत्र रहा। वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए 'आन्ध्र जातीय कला शाला' की स्थापना की गयी। विश्वनाथ वहाँ तेलुगु शिक्षक बन गये। १९२२ से १९२८ तक वहीं पर वे काम करते रहे। फिर आप मछलीपट्टणम के हिन्दू कालेज तथा गुण्टूरु के ईसाई कालेज में तेलुगु लेक्चरर का काम १९३३ तक करते रहे। बाद में विजयवाडा कालेज में तेलुगु विभाग के प्रधान का काम करने लगे। १९५९ से करीमनगर के सरकारी कालेज के प्रिन्सिपल नियुक्त किये गये। फिर उस कार्य से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। इस तरह वे अध्यापन के कार्य में शुरू से ही लगे रहे।

जीवन का लक्ष्य

श्री विश्वनाथजी संस्कृत, तेलुगु और अंग्रेजी के बड़े पण्डित हैं। संस्कृत के वे कवि भी हैं। प्रस्थान कवि भाष्य, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, शंकरभाष्य, तर्क,

व्याकरण, और मीमांसा आदि बहु शास्त्रों का उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। संस्कृत भाषा पर उनका अनन्य अधिकार है। 'देवीत्रिशति' की रचना उन्होंने संस्कृत में की। 'अमृत शर्मिष्ठम' उनका संस्कृत रूपक है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के वे समर्थक हैं। आधुनिक युग की प्रगति को अपनाते हुए प्राचीनता को वे नहीं भूलते। इसी लिए प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृतियों के वे मूर्तिमान रूप बन गये हैं।

स्वरूप और स्वभाव

ऊँचा कद, सुडौल शरीर, आजानु बाहु, लम्बी नाक, पतले होंठ, चश्मे से शोभित तेज आंखें, गम्भीर मुख, मुंडा हुआ सिर, हिन्दू संस्कृति की प्रतीक चोटी, सरल प्रकृति, घुटनों तक की रेशमी कमीज, चरणों तक की स्वच्छ धवल धोती, कंधे पर ज़रतार का पट्टीदार दुपट्टा या काश्मीरी शाल, पैरों में देशी चप्पल, हाथ में सुंघनी की छोटी-सी डिबिया और मुंह में सुपारी के दो-तीन टुकड़े, संक्षेप में विश्वनाथ का यही स्वरूप है।

विश्वनाथजी प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। उनके जीवन में भिन्न भिन्न अनुभूतियों की कमी नहीं रही। उनके वेदनामय रसात्मक हृदय से निकले हुए उद्गार प्रौढ़ शैली का लिबास ओढ़े रहते हैं। वे अपनी अनुभूतियों का यों वर्णन करते हैं—

ओकसारि नालोन नूहिंचि येमियो
स्त्रीवोले सिग्गु पोंदेदनु नेनु।

ओकसारि येद पोंगि यूहिचि कविवोले
मृदुकंठ मेत्ति पाडेदनु नेनु।
ओकसारि हृदय मूरक बाधपडि कटि
तुदलंदु नीरु निचेदनु नेनु।
ओकसारि वीत हेतुकमुगा सौख्यम्मु
विरिसि पड्डट्लु नव्वेदनु नेनु।
ए महाभावमो वच्चि हृदय माव-
रिंचि नासंधुलनु गदलिचि वैचु।
आ महाभाव मरसेद नन्न कोलदि
ना विलोचन पथ मेल्ल नल्लनय्ये ॥

(एक बार अपने आप कुछ सोच कर स्त्री की भाँति मैं शर्माता हूँ। एक बार दिल उमड़ कर विचलित होता है। तब कवि की तरह मधुर कंठ से गाता हूँ। एक बार अनजाने में ही दिल व्यथित होता है। तब आंखों के कोनों में आँसू भर लेता हूँ। एक बार ऐसे हँस पड़ता हूँ मानो अनायास ही सुख की प्राप्ति हो गयी हो। कोई महाभाव मेरे दिल पर छा जाता है। मेरी सब नसों और संधियों को हिला देता है। ज्यों-ज्यों उसे पहचानने का प्रयत्न करता हूँ त्यों-त्यों मेरा विलोचन पथ श्यामल हो जाता है।)

विविध काव्य

ऐसे भावुक हृदय से विश्वनाथजीने कई काव्यों की रचना की। वस्तु की दृष्टि से उनके काव्यों को पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं। (1) राष्ट्रीयता सम्बन्धी (२) प्रणय और विलाप सम्बन्धी (३) प्रकृति वर्णन सम्बन्धी (४) भक्ति सम्बन्धी। (५) सम-

सामयिक विषय सम्बन्धी। शैली की दृष्टि से उनके काव्य, कथा प्रधान, वर्णन प्रधान, गीत प्रधान, स्तुति प्रधान और लोकगीत प्रधान आदि हैं। शतकों की रचना में भी वे सिद्धहस्त हैं।

श्री विश्वनाथजी राष्ट्रीय आन्दोलन से अछूते नहीं रह सके। निद्रित, अज्ञानी जनता को देख कर वे विचलित हो उठे। 'कोऊ नृप होउ हमहिं का हानि' वाली उक्ति को चरिस्तितार्थ होते देख कर वे चुप नहीं रह सके। उन्होंने जनता को जगाने का प्रयत्न किया। तेलुगु जनता को सम्बोधित कर जागरण गीत आलापना शुरू किया। "आन्ध्र प्रशस्ति" और "आन्ध्र पौरुष" ऐसे ही उद्‌बोधन के काव्य हैं। उर्दू साहित्य में मौलाना हाली के 'मुसद्दस' का, हिन्दी साहित्य में बाबू मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत भारती' का जो महत्व है, तेलुगु साहित्य में विश्वनाथ जी के "आन्ध्र प्रशस्ति और आन्ध्र पौरुष" का वही महत्व है।

"आन्ध्र प्रशस्ति" में प्राचीन ऐतिहासिक महापुरुषों तथा क्षेत्रों का वीररसात्मक वर्णन मिलता है। आन्ध्रों के प्राचीन वैभव का गान करके वर्तमान दुरवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है। भविष्य की उज्वलता का भव्यचित्र प्रस्तुत किया गया है। "आन्ध्र पौरुष" भी इसी प्रकार का उद्‌बोधनात्मक काव्य है। कवि कहते हैं—

ओकनाडु गलदान्ध्र युवकुलु तूरुपु
कनुम दुर्गमुल नेलिन-दिनंबु ।
ओकनाडु गलदु शिल्प कला सरस्वति
अमरावतिनि नृत्य माडु दिनमु ।

(एक दिन ऐसा था जब कि आन्ध्र युवकोंने पूर्वी प्रान्तों के गढ़ों पर शासन किया था। एक दिन ऐसा था जब कि कला सरस्वती ने अमरावती नगर में नृत्य किया था।) उसी आन्ध्र जाति की आज बड़ी दुर्गति हो रही है। कवि कहते हैं—

राज्यांगतंत्र निर्माण कौशलुलकु
जंकदस्त्रमुल नाशलु जनिंचे ।
परराज रक्त प्रवाह मज्जनुलकु
गत्ति गनुगोन भयमेत्ति पोये ।
सिंहासनमुल नासीनुलौ वारिकि
नितर दास्यपु रुचि हेच्चि पोये ।

(राज्य निर्माण के व्यवहारों में जो कुशल थे वे मुनीम बनने के लालच में पड़ने लगे। अन्य राजाओं के रक्त प्रवाह में जो स्नान करते थे वे तलवारों की धार देख कर डरने लगे। सिंहासन पर जो विराजमान होते थे, वे गुलामी के प्रति रुचि दिखाने लगे हैं।)

इस तरह के वर्णनों द्वारा कविने घोषणा कर दी कि गुलामी की ज़िन्दगी तेलुगु भाषा-भाषी बिता नहीं सकते। राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में आन्ध्र जनता को जगाने और स्वतंत्रता के पथ पर उन्हें आगे चलाने में इन काव्यों ने बड़ा योग दिया।

देशभक्ति

देश भक्ति से सम्बन्धित विश्वनाथजी के काव्यों में 'कुमाराभ्युदय या वल्ली सेना की विजय' और 'झाँसी रानी' उल्लेखनीय हैं। 'कुमाराभ्युदय' की कथावस्तु स्कंद पुराण और महाभारत से सम्बन्ध रखती है। छः सर्गों में इस काव्य की समाप्ति हुई है। अरिष्टनेमी नामक राक्षस की दो बेटियाँ थीं। चित्रसेना और देवसेना। देवसेना की रक्षा एक अन्य राक्षस से इन्द्रने की। उसका पालन-पोषण स्वयं इन्द्रने किया। जब कुमारस्वामी ने पद्मासुर का वध किया; तब इन्द्र ने देवसेना का विवाह कुमारस्वामी के साथ कर दिया। यही इस काव्य की कथावस्तु है। यद्यपि यह काव्य पौराणिक है तथापि इसमें गान्धी, विनोबा के सर्वोदय सिद्धान्तों का वर्णन दूसरे ढंग से किया गया है। इसमें देशभक्ति पर जोर दिया गया है। 'झाँसी रानी' यह एक नौ सर्गों का राष्ट्रीयकाव्य है। इसमें झाँसी रानी के त्याग, बलिदान तथा अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन किया गया है। अंग्रेजों का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि "कल तक जो याचक थे, आज वे मालिक हैं। कल तक जो व्यापारी थे वे आज अधिकारी हैं।" फिर हमारे जुलाहों के अंगूठे काटने वाले अंग्रेजों की कायरता की दिल्लगी उड़ाते हैं। भारत की स्वतंत्रता की प्रथम लड़ाई का वर्णन वीररसात्मक ढंग से कविने किया है। ये दोनों काव्य प्रबन्धात्मक शैली में रचे गये हैं।

प्रणय और विलाप

प्रणय और विलाप सम्बन्धी विश्वनाथजीके काव्यों में 'शृंगार वीथी', 'शशिदूत', 'गिरिकुमार के प्रेम गीत', और 'वरलक्ष्मी त्रिशति' मुख्य हैं। 'शृङ्गार वीथी' में राधा और माधव के प्रणय का उदात्त चित्रण किया गया है। कविने इसमें लौकिक और अलौकिक शृंगार का वर्णन किया है। 'शशिदूत' में एक नवयुवक पति अपनी प्रणय क्रुद्धा नवोढ़ा पत्नी को प्रसन्न करना चाहता है। अपनी तरफ उसे आकृष्ट करना चाहता है। अमृतसरसी के मूर्तिमान मालिक शशि को अपना दूत बनाता है। यदि शशि प्रसन्न हो तो उसका काम भी बन जाएगा। इसी से शशि को कई तरह से समझाता है। शशि के सामने गिड़गिड़ाता भी है। इस तरह इन काव्यों में संयोगशृंगार का वर्णन मिलता है। "लौकिकता से अलौकिकता की ओर" वाली उक्ति इनमें चरितार्थ हुई है। शृंगार रस के बाद जीव के हृदय को प्रभावित करने वाला करुणरस है। करुण रस की जड़ में वेदना है। प्रकृति के कण-कण में यह वेदना व्याप्त है। संयोग और वियोग, सुख और दुःख जिन्दगी के दो पहलू हैं। वियोग-दुःख जीव के हृदय को करुणार्द्र बना देता है विश्वनाथजी का विरह कातर स्वर 'गिरि कुमार के प्रेम गीत' तथा 'वरलक्ष्मी त्रिशति' में मुखरित हो उठा है। कवि कहते हैं—

अस्मदीय कंठमुनंदाडुचुंडे
नोक येद्रो गीति बयटिकि नुबिकिरादु
चोच्चुकोनि लोनिकिं बोदु व्रच्चिपोये
नाहृदय मी महा प्रयत्नमंदु।"

(मेरे कंठ में कोई एक गीत भरा हुआ है। मगर उभर कर वह बाहर प्रकट नहीं होना चाहता। दिल में घुस भी नहीं जाता। इस महान् प्रयत्न में मेरा हृदय फटता जा रहा है।)

जब प्रथम बार हृदय में व्यथा घर कर लेती है तब कवि आक्रोश कर बैठते हैं कि—

मोदटि सारि नायेडदलो मुल्लु नाट
बडि महाशूलमुनु बोले बाध पेट्टे
देहमु भरिंचुटयु कष्ट मै हृदंबु
राशि बाड़बवन्हि पराक्रमिचे

(प्रथम बार मेरे हृदय में कांटा बोया गया। वह धीरे-धीरे महान् शूल की तरह बाधा पहुँचाने लगा। उस व्यथा को शरीर नहीं सह सका। बड़ा कष्ट हुआ। हृदय समुन्दर में बडबाग्नि प्रज्वलित हो उठी।)

प्रेयसी के वियोग से व्यथित कवि प्रण करते हैं—

'इद्दि प्रतिन बूनितिनि प्रवहिंपजेतु
नीयडुगु दम्मुलंदु ननेक नाक
वाहिनुलु वानिनीरमुल प्राशनम्मु
गाग भव्यान्ध्र देश सत्कवुलकेल्ल।

(प्रतिज्ञा करता हूँ कि ऐसी स्वर्गिक धाराएँ तुम्हारे चरण चिह्नों पर बहाढूँगा जिनका जल, आन्ध्र के भावी सत्कवियों के लिए प्राशन के योग्य बने।)

आगे चल कर कवि आसाढ़ के बादलों से अपनी तुलना करते हैं। दोनों आँसू बहाने वाले हैं। इस प्रकार संयोग और वियोग सम्बन्धी काव्य धारा में "गिरि कुमार के प्रेम गीत" काव्य विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है।

'वरलक्ष्मी त्रिशति' पत्नी के वियोग के बाद लिखा गया काव्य है। वियोग का अलौकिक रूप इसमें दर्शित हुआ है। कवि के प्रेमी हृदय की अनुभूतियों के मार्मिक चित्रों के साथ-साथ निर्वेद के संदेश भी इसमें प्रस्तुत किये गये हैं। कवि अपने टूटे हुए दिल को धीरज बँधाते हैं। हृदय को भक्ति की तरफ़ मोड़ लेते हैं। काव्य के आरम्भ में वियोग के दुःख का वर्णन करते करते कवि की लेखनी स्थगित हो जाती है। गला रूँध जाता है। कहते हैं—

ओ सखा! प्रिय भार्या वियोग मेरुग
नट्टि यो पूर्व सत्कृती! यकट! नीवु
कर्म शतकंबु चदुवकु मर्मघाति
नी वेरुगलेवु दानिलोनि दगु......

(हे मित्र! प्रिय पत्नी के वियोगदुख को न जाननेवाले हे सत्कृती, हाय! तुम कर्म शतक मत पढ़ो। वह मर्मघाती है। तुम नहीं जान सकते कि उसके अन्दर... ।)

मिगिलिनदि योक्कटे नाकु मेरुवंत
बरुवु नांगुडे लो मध्य भागमंदु
अंत पेरुन कंते भार्यास्थि गानि
ना शरीरास्थि निजमु कृष्णार्पणम्मु।

(मेरे कलेजे के मध्य भाग में मेरु पर्वत के बराबर का बोझ बस गया है! यही अब मेरी ज़िन्दगी में बचा है। (पत्नी का देहांत हो गया। उस की अस्थियाँ कृष्णा नदी में मिलायी गयीं।) हाँ सच है, पत्नी की अस्थियाँ कृष्णा में मिलायी गयीं। लेकिन असल में मेरी ही अस्थियों का कृष्णार्पण हो गया है।)

इस काव्य में कुल 300 पद्य हैं। यह तीन भागों में विभक्त है—(1) कर्मशतक, (2) स्मृति शतक, (3) नित्य शतक। नित्य शतक के पद्यों में दुखी जीव शान्ति प्राप्त करता है। जहाँ शृंगार और करुणरस का संघर्ष हो वहाँ शान्त रस का संचार होता है। इसी का उदात्त वर्णन इसमें किया गया है।

प्रकृति वर्णन

प्रकृति वर्णन सम्बन्धी आपके काव्यों में 'ऋतुसंहार' उल्लेखनीय है। षट् ऋतुओं का वर्णन साठ पद्यों में कवि ने प्रस्तुत किया है। तेलुगु प्रांत का जीता-जागता चित्र इस काव्य में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ के पशु-पक्षी, बाग-बगीचे, ताल-तलैये, पेड़-पौधे, नदी-नाले, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, जड-जंगम, हरे-हरे खेत, काले-काले बादल तथा सन-सन करता समीर आदि सृष्टिगत सभी विशेषताओं का, सूक्ष्म अनुशीलन के द्वारा, भाषा की प्रौढता और शैली की विलक्षणता के साथ, कवि ने वर्णन किया है। यह काव्य विश्वनाथजी की अद्भुत प्रतिभा का सुन्दर उदाहरण है।

भक्ति की प्रधानता

भक्ति सम्बन्धी विश्वनाथजी के काव्यों में 'विश्वेश्वर शतक' तथा 'विश्वनाथ मध्याक्करलु' प्रधान हैं। विश्वनाथजी अपने दैनिक जीवन में पूजा, अनुष्ठान में लगे रहते हैं। माता-पिता से उन्हें दो सम्पदाएँ मिलीं—पत्नी और परमेश्वर। दोनों को प्राणों के समान उन्होंने अपनाया। प्यार किया। उनके भक्त भी हो गये। उनमें एक लौकिक है तो दूसरा अलौकिक। इन दोनों के ध्यान में कवि इतने लीन हो जाते हैं कि अपने को भी भूल जाते हैं। निर्भय हो कर अपने आराध्य की आलोचना करते हैं। उनके समक्ष कातर बनते हैं। कहते हैं—

> नीवे राजुवु नेनु सत्कविनि तंड्री ! निन्नु वर्णिंचेदन्
> नीवे दैवमु नेनु भक्तुडनु तंड्री ! निन्नु ध्यानिंचेदन्
> नीवे भूमिवि नेनु गर्षकुड तंड्री ! निन्नु बंडिचेदन्
> ना वैदुष्यमु नीवे चूतु कृप संधानिचु विश्वेश्वरा।

(हे विश्वेश्वर, तू राजा है। मैं सत्कवि हूँ। मैं तेरा वर्णन करूँगा। तू देव है। मै भक्त हूँ। हे पिता, मैं तेरा ध्यान करूँगा। तू भूमि है। मैं किसान हूँ। हे पिता, उपजाऊ बना कर तुझमें अन्न पैदा करूँगा। हे प्रभो, मेरी विद्वत्ता पर ध्यान दे ! मुझ पर कृपा कर।)

फिर कहते हैं कि हे प्रभो, तेलुगु के कई प्राचीन महाकवियों ने तेरा गुणगान किया। उनकी कविता रूपी मधु का स्वाद तू ले चुका है। अब मेरी कविता

रूपी जल का स्वाद ले।" इतना होने पर भी जब कवि को सन्देह होता है कि भगवान् का ध्यान उन पर नहीं है, तब जोश में आ जाते हैं। वे कहते हैं कि "हे प्रभो! मैं शुरू से तुझे मानता आया हूँ। इसी से मेरी यह दुर्गति हुई है। मेरे पिताजी और तेरे बीच लेन-देन का कैसा व्यवहार था, मैं नहीं जानता। अब सारी जमीन जायदाद मेरे पिताजी के साथ ही समाप्त हो चुकी। इसका जिम्मेदार तू ही है। तू अगर सही तरीके से व्यवहार नहीं करेगा, तो तुझे इसका फल भोगना पड़ेगा। बाजार में ले जाकर तुझे सस्ते में बेच दूँगा।" फिर भी जब प्रभु मौन और स्थिर दिखाई देते हैं, तब कवि को बड़ी ग्लानि होती है। भगवान् से माफी मांगते हैं। भगवान के दर्शन की लालसा पग-पग तीव्र होती जाती है। वही तीव्रता, आतुरता तथा उत्कंठा 'विश्वेश्वर शतक' में व्यक्त हुई है।

'विश्वनाथ मध्याक्करलु' एक हजार पद्यों का भक्ति काव्य है। तेलुगु प्रांत के पुण्य क्षेत्र तथा भक्तवरेण्यों की (श्रीशैलम, कालहस्ती, द्राक्षाराम, और प्राचीन कवि, भक्तों आदि) स्तुति में इस काव्य की रचना हुई है। 'मध्याक्कर' तेलुगु के एक छन्द का नाम है। तेलुगु के प्राचीन कवीश्वर और तेलुगु महाभारत के प्रथम कर्ता नन्नया को छोड़कर, बहुत कम कवियों ने इस छन्द का उपयोग किया है। विश्वनाथजी उसी छन्द को लेकर एक हजार पद्यों की रचना कर चुके हैं। इसी

काव्य के लिये केंद्रीय साहित्य अकादमी ने ५000 का पुरस्कार विश्वनाथजी को दिया है।

समसामयिक समस्याएँ

समसामयिक विषयों पर व्यंग्यात्मक शैली में आपने कई पद्यों की रचना की। ऐसे काव्यों में 'विश्वनाथ पंचशति' एक है। इसका एक-एक पद्य एक-एक व्यंग्य बाण है। उदाहरणार्थ कुछ पद्य देखिए। कविताओं पर दुरूहता का आरोप लगाने वाले आलोचकों के बारे में कवि कहते हैं—

तोलिनालुल पद्यार्थमु
तेलियनिचो पाठकुनिदि तेलियमि यीना
लुल व्रासिन कवि दोषमु
कलि मुदिरिन कोलदि चित्रगतुलनु नडचुन्।

(पुराने जमाने में पद्यार्थ समझ में न आवे तो पाठक का अज्ञान माना जाता था। लेकिन आजकल कवि का दोष माना जा रहा है। कलि युग में स्थिति विचित्र रहेगी।)

पत्रिकाओं की बिक्री के बारे में वे पत्रकारों को सलाह देते हैं—

अंटबोकु मोक्क गवर्नमेंटु मात्र
पडनु दिट्टुमु नी यिच्चवच्चिनट्लु
कोंचमुग नोर्रगा "सेक्सु" कूड कलुपु
पत्रिकल यम्मकम्मु ना जवाबुदारि।

(एक गवर्नमेंट को छोड़ कर बाकी सबको मनमानी गालियाँ सुनाओ। सब की खूब निन्दा करो। थोड़ा-सा

'सेक्स' भी मिला दो। फिर अगर तुम्हारी पत्रिकाओं की बिक्री ज्यादा न हो जाय तो मुझ से पूछो। मैं जिम्मेवार बनूंगा।)

आसानी से यश प्राप्त करने का उपाय यों बताते हैं—

चेलगि नीकुनु कीर्ति नार्जिंचुनट्टि
प्रतिभ लेदोक्कचक्कनि बाटकलदु
शक्ति कलिगि येव्वडु प्रतिष्ठकुनुनेक्कु
वानितो नीवु पत्रिका वैर मूनु।

(कीर्ति प्राप्त करने के लिए किसी तरह की प्रतिभा तुझ में नहीं है। तो सुगम मार्ग एक है। अपनी शक्ति व प्रतिभा के बल जो व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेगा, उस से पत्रिकाओं के द्वारा शत्रुता प्रकट करो। बस, तुमको भी कीर्ति मिल जाएगी।)

इस तरह 'विश्वनाथ पंचशति' के पद्य शक्कर से मिले "क्विनाइन" गोलियों की तरह अपना असर करते हैं।

विविध काव्य

उक्त काव्यों के अलावा पामुपाटा (सर्प गीत), गोपालोदाहरण, कन्ने काटुक कल्लु, (कन्या की कजरारी आँखें), मेदलगल चिन्न मब्बुलु (चल सकनेवाले लघु बादल), बानिसल समुद्रमु (गुलामों का समुन्दर) आदि रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं। सर्प गीत एक संगीत रूपक है। सौराष्ट्र के राजा की बेटी त्रैलोक्य सुन्दरी है। उसकी शादी काश्मीर के राजा

चित्रागद के बेटे से की जाती है। पहले वर की जगह तलवार रखी जाती हैं, उसीसे शादी होती है। वास्तव में वर मानव रूप में नहीं था, सर्प के रूप में था। सर्प को साथ लेकर सास-ससुर की आज्ञा मान कर वह सुन्दरी सभी पुण्य क्षेत्रों के दर्शन करती है। रास्ते में कई औरतें उसकी दिल्लगी उड़ाती हैं। फिर भी वह धीरज नहीं खोती। एक बार चलते-चलते जँगल में उसकी एक ऋषि से मुलाकात होती है। ऋषि शाप का वृत्तांत सुन कर ब्रह्मगुंड में स्नान कर शापमुक्त होने की सलाह देता है। ऐसा करने पर सर्प मानव का रूप धारण करता है। दोनों दम्पति सुख से जीवन बिताते हैं! यही 'सर्प-गीत' की कथा वस्तु है। इसमें स्त्रियों के मन की प्रवृत्तियों का सहज वर्णन कविने किया है। गीत-रचना में कवि ने बड़ी प्रतिभा दिखाई है।

गेय काव्य

किन्नेरसानि पाटलु (किन्नेरसानि के गीत), कोकिलम्मा पेल्लि (कोयल का ब्याह) आपके गेय काव्य हैं। 'किन्नेरसानि के गीत' शीर्षक काव्य आपकी यशच्चंन्द्रिका पर चार चाँद लगा चुका है। 'किन्नेरा' तेलुगु प्रान्त में बहने वाली एक नदी है। उसकी इठलाती बलखाती चाल बहुत आकर्षक लगती है। वह गोदावरी नदी में मिल कर लीन हो जाती है। इस प्राकृतिक विषय को लेकर विश्वनाथजीने उसके इतिवृत्त की कल्पना की।

किन्नेरा का जन्म, उसकी चाल, नृत्य, संगीत, उसका उमड़ना, दुःख, गोदावरी संगम तथा किन्नेरा के वैभव का वर्णन करते हुए मधुर गेय काव्य का कविने सृजन किया। विचित्र गतियों की साज, अनुप्रास की छटा, भाषा की सुकुमारता, भावों की सबलता तथा रस की पुष्टि, सब का समन्वय इस गेय काव्य में हुआ है। इस काव्य की रचना करके कई गेय कवियोंके विश्वनाथजी मार्गदर्शक बन गये।

जवानी की उमंग, शारीरिक सौंदर्य लेकर किन्नेरा ससुराल में पदार्पण करती है। कुछ दिनों तक सुख-चैन से दिन बीतते हैं। धीरे-धीरे सास और बहू के बीच वैर शुरू होता है। तू तू मैं-मैं तक नौबत आ जाती है। पति को पत्नी-पर प्रेम है। माता के प्रति आदर है। इसलिए वह कुछ कर नहीं पाता। लेकिन वह दिल का मीठा है। किन्नेरा पति का हृदय पहचान नहीं पाती। सास के तानों से उसका गरम रक्त उबल पड़ता है। उसका अभिमान चोट खाता है। मानिनी किन्नेरा अपने आपको सम्भाल नहीं पाती। घर-गृहस्थी को तिलांजली देकर निकल पड़ती है। जंगलों से होकर चल पड़ती है। पति को जब यह खबर मिलती है, तब वह दुःखी हो, किन्नेरा के पीछे दौड़ता है। उसे समझा-बुझा कर घर वापस लाना चाहता है। उसे गले से लगा लेता है। बहुत समझाता है। मगर किन्नेरा अपना हठ नहीं छोड़ती। उसका क्रोध शांत नहीं होता। उसका

हृदय पिघल जाता है और जल का रूप धारण कर लेता है। किन्नेरा नदी बन कर झर-झर झरने लगती है।

करगिंदि करगिंदि
करगिंदि करगिंदि
करिगि किन्नेरसानि वरदलै पारिदि
तरुणि किन्नेरसानि तरकल्लु कट्टिंदि
पडति किन्नेरसानि परुगुल्लु पेट्टिंदि

* * *

(पिघल गई वह पिघल गई।
पिघल गई वह पिघल गई।
पिघल पिघल कर चल निकली,
बाढ़ बनी वह बह निकली।
तरुणी किन्नेरा बढ़ निकली।
झर झर झर झर झर निकली।
पग पग पग पग फड़क चली।
झर झर झर झर झर के चली।)

कवि का हृदय भी पिघल जाता है। यहाँ से कवि की लेखनी पाठकों के हृदय को झकझोरते हुए आगे बढ़ती है। किन्नेरा जल बन कर पति के हाथों से छूट जाती है। पति रो उठता है। कहता है—

ईवु रसाकृति वौटनु
ई वैखरि प्रवहिंचिति
नेनु शिला हृदयुंडनु
पूनुदुने धुनि वैखरि ?

नीकै एडिचि एडिचि
नाकायमु कोय्यवारे
नाई देहमिदेमो
रायिवोले नगुचुन्नदि ।

* * *

(रसाकार धारण कर
बह जाती ऐसी तुम !
शिला हृदय धारण कर
धुनि कैसी पाऊँ मैं !
रो रो कर तेरे लिये
काठ बना मेरा मन
ज्ञात नहीं ऐसा क्यों,
पत्थर-सा बनता है तन ।)

पति पत्थर बन जाता है। बड़ी शिला का रूप धारण करता है। किन्नेरा काँप उठती है। वह समझ जाती है कि उस के प्रति पति के दिल में कितना प्रेम है। वह उस शिला की परिक्रमा करती है। अपने आँसुओं से उस पत्थर के पद धोती है। लेकिन क्या फ़ायदा? पति पाषाण का रूप धारण कर चुका है। कहती है—

नीयंदु तप्पिक नेनु चेयनुलेर !
नीतोव नीदिरा ना तोव नादिरा
मरल नातो नीवु माटाडलेवुरा ॥

(अब तेरी शिकायत नहीं करती। तेरा रास्ता तेरा है। मेरा रास्ता मेरा है। तू मुझसे बात नहीं कर सकता)।

यह कह कर आँसू बहाती है। फिर पति के प्रेम को याद करती है। उससे पुलकित होजाती है। आनन्द से विभोर होकर आगे बढ़ती है। उसके हाव-भाव, चाल-ढाल देखने लायक हैं। थोड़ी दूर जाने के बाद किन्नेरा दूसरी मुसीबत में पड़ जाती है। उसे समुन्दर की याद आती है। उसके कर्कश हृदय में वह कैसे समा सकेगी? वह तो पतिव्रता है। रोती है। बिलखती है। उसकी दुःखी आवाज़ बड़ी बहन गोदावरी के कानों में पड़ती है। वह अपनी छोटी बहन के पास दौड़ी हुई आती है। उसको अपनी गोद में ले लेती है। दुनिया की रीति उसे समझाती है। सांत्वना देती है। किन्नेरा बड़ी बहन से मिल कर शांत होती है। फिर ऋतुओं के अनुसार अपना रूप बदलती रहती है। आगे बढ़ कर भद्राचल के रामचन्द्र की चरण सेवा में लग जाती है। काव्य की समाप्ति होती है। विश्वनाथजी के काव्य सौष्ठव, मधुर कल्पना, भाषा व भाव सौंदर्य का जीता जागता उदाहरण "किन्नेरसानि के गीत" शीर्षक गेय काव्य है।

रामायण कल्पवृक्ष

विश्वनाथजी का उपर्युक्त सारा काव्य साहित्य एक तरफ़ रखा जाये तो उनका अकेला "रामायण कल्पवृक्ष" दूसरी तरफ़ रखा जा सकता है। यह ग्रन्थ विश्वनाथ रामायण के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। तेलुगु भाषा-भाषियों में सब से लोकप्रिय तेलुगु

ग्रन्थ "महाभारत" है। श्री नन्नया, तिक्कना तथा एर्राप्रगडा इन तीन उच्चकोटि के कवियों ने जो कवियत्र के नाम से मशहूर हैं—व्यास प्रणीत महाभारत का स्वतंत्र अनुवाद तेलुगु में किया है। इसके बाद लोक-प्रिय ग्रन्थ भक्त श्रेष्ठ श्री पोतन्ना का भागवत है। पोतन्ना ने आन्ध्र की उपजाऊ जमीन में अपनी इस रचना द्वारा भक्ति की धारा बहा दी है। उसके बाद रामायण की बारी आती है। तेलुगु के राम-कथा सम्बन्धी दर्जनों काव्यों में रंगनाथ रामायण, भास्कर रामायण, मोल्ला रामायण, रामाभ्युदय, निर्वचनोत्तर रामायण, श्री कृष्ण रामायण, श्रीमदान्ध्र वाल्मीकि रामायण और मानिकोंडा रामायण उल्लेखनीय हैं। लेकिन हिन्दी की तुलसी रामायण की तरह अधिक लोकप्रिय रामायण तेलुगु में नहीं है। इसका कारण यही है कि अब तक किसी समर्थ कवि ने ऐसी रामायण का तेलुगु में सृजन नहीं किया, जो लोकप्रिय सिद्ध हो। उस कमी की पूर्ति विश्वनाथजी कर रहे हैं। १९३४ के पहले से ही आपने रामायण की रचना का आरम्भ किया। आदर्शवाद तथा यथार्थवाद का समन्वय श्री विश्वनाथ रामायण की विशेषता है। कथावस्तु, रस, अलंकार, छन्द, सम्वाद तथा चरित्र चित्रण की दृष्टि से विश्वनाथ रामायण आजकल सब का ध्यान आकृष्ट कर चुकी है। वाल्मिीकि रामायण की कथा का केवल आधार मात्र लेकर मौलिक रूप से रामायण का सृजन विश्वनाथजीने किया है।

केकयी, राम, दशरथ, रावण, शबरी, मारीच वगैरह पात्रों के चित्रण में प्राचीन और अर्वाचीन विशेषताओं का समन्वय करते हुए, अपनी सहज प्रौढ़ रसात्मक शैली में विश्वनाथजी मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के चरणकमलों पर पूजा पुष्प चढ़ारहे हैं।

अपनी रामायण के बारे में विश्वनाथजीने कहा है कि "मेरी रामायण अनूदित काव्य नहीं है। इसे वाल्मीकि रामायण का भाष्य कह सकते हैं। मैं अपने जीवन में मानव प्रवृत्तियों का काफी अध्ययन कर चुका हूँ। उसी अध्ययन के सार को अपने ग्रन्थों के द्वारा प्रस्तुत करता हूँ। करीब-करीब अपने जीवन के प्रारम्भिक बीस वर्षों तक के लिखे कई पद्यों को मैं जला चुका हूँ। हर दिन कम-से-कम दस पद्यों के हिसाब से पहले लिखा करता था। पद्य रचना पर अधिकार प्राप्त करना चाहता था। संस्कृत और तेलुगु के अपार साहित्य का गहरा अध्ययन कर चुका हूँ। यह सब क्यों? तेलुगु में रामायण की रचना करने के लिए। श्री रामचन्द्रजी के चरणों पर मैंने अपना सर्वस्व अर्पित किया है। वास्तव में रामायण का सृजन मुझसे नहीं हो रहा है। स्वयं प्रभु रामचन्द्रजी की अनुकम्पा का ही यह फल है। राम की कथा सब जानते हैं। केवल कथा के लिए रामायण लिखने की जरूरत नहीं है। विलक्षणता उसमें हो यह बहुत जरूरी है। 'अलग रहे लाखों में' इसी दृष्टि से रामायण की रचना वर्षों

से कर रहा हूँ। अपने जीवन और प्राणों की निचोड लेकर रामायण की रचना कर रहा हूँ। श्री रामचन्द्र के चरणों पर इसको अर्पित कर रहा हूँ।"

विविध गद्य ग्रंथ

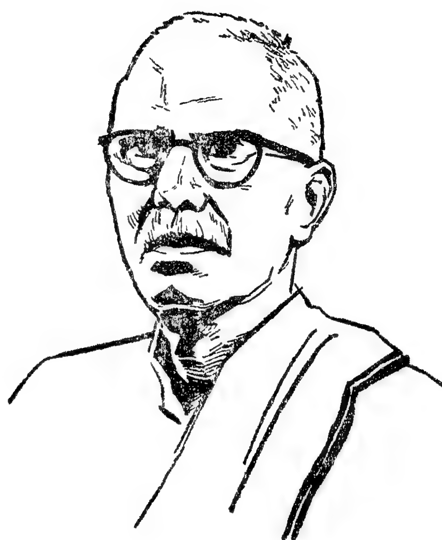
उपर्युक्त काव्यों के अलावा विश्वनाथजी मौलिक उपन्यासकार, समालोचक, कहानीकार तथा नाटक कार भी हैं। उनके उपन्यासों में—(१) एकवीरा, (२) वेयिपडगलु (सहस्रफन), (३) चेलियलिकट्टा (समुद्र का किनारा), (४) स्वर्गानिकि निच्चेनलु (स्वर्गकी सीढियाँ), (५) कुणालुनि शासनम (कुणाल का शासन), (६) हा हा हू हू, (७) जेबु दोंगलु (जेबी चोर), (८) मा बाबु (हमारा बाबू), (९) धर्मचक्र, (१0) बद्दन्ना सेनानी, (११) स्नेहफल, (१२) तेरचि राजू, (१३) वीरपूजा, (१४) कडिमिचेट्टु (कदंब वृक्ष) (१५) वीर वल्लडु वगैरह प्रधान हैं। आजकल भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा इतिहास पर प्रकाश डालते हुए—'पुराण वेर ग्रन्थमाला' के शीर्षक से १६ उपन्यासों की रचना कर रहे हैं। उनमें से (१) भगवान पर क्रोध, (२) नास्तिक धुआँ, (३) धूम रेखा, (४) नंदोराजा भविष्यति, (५) चन्द्रगुप्त का स्वप्न, (६) अश्वमेध, (७) अमृतवल्ली और (८) पुलिमृग्गु (व्याघ्र की चौक) आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। आपके आलोचनात्मक ग्रन्थों में (१) नन्नयगारि प्रसन्न कथा कलितार्थ युक्ति, (२) भारतोपन्यासमुल

(महाभारत सम्बन्धी भाषण), (3) अल्लसानि पेद्दन्ना, (4) अभिज्ञान शाकुन्तल, (5) नाचन सोमन्ना मुख्य हैं। आपकी बीस छोटी कहानियों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। आपके रूपकों में—(1) नर्तनशाला या कीचक वध, (2) वेनराजू, (3) त्रिशूल, (4) अनारकली, (5) धन्य कैलास वगैरह उल्लेखनीय हैं। आपके रेडियो रूपकों तथा उपरूपकों की संख्या बहुत ज्यादा है। तेलुगु साहित्य के विस्तृत इतिहास को रेडियो केलिये रूपकों के रूप में रचकर आपने प्रसारित कराया है।

आदर व सम्मान

आधुनिक तेलुगु साहित्य के महारथी कविसम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण का तेलुगु भाषा भाषियों ने कई बार सम्मान किया है। 1943 ई० में कृष्णा जिले के गुडिवाडा शहर में बड़े पैमाने पर आपका सम्मान किया गया। अलंकृत गज पर बिठा कर जुलूस निकाला गया। 1954 ई० में आपका षष्टि पूर्ति महोत्सव गुडिवाडा और करीमनगर शहरों में मनाया गया। आन्ध्र प्रदेश के कम-से-कम 100 से अधिक केन्द्रों में आपके सम्मानोत्सव मनाये गये। आपके भाषण सुनने के लिए काफी संख्या में लोग जमा होते हैं। आपके आदरार्थ पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित किये गये। आन्ध्र प्रदेश विधान सभा के आप सदस्य मनोनीत किये गये। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी

के आप दो बार उपाध्यक्ष चुने गये। आन्ध्र यूनिवर्सिटी की तरफ से "सहस्रफन" शीर्षक आपके प्रसिद्ध बृहत् उपन्यास के लिए पुरस्कार दिया गया। "विश्वनाथ मध्याक्करलु" काव्य के लिये केंद्रीय साहित्य अकादमीने ५000 का पुरस्कार देकर आपका सम्मान किया। विश्वनाथजी के पचासों ग्रन्थों से तेलुगु का साहित्य सदन सुशोभित हो चुका है। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण तेलुगु साहित्य गगन के ज्योतिर्मय सूर्य हैं।



काटूरि
वेंकटेश्वरराव

तेलुगु साहित्य जगत् के कवि कुल गुरु स्व० चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्रीजी की शुश्रूषा करके, उनकी कविता माधुरी को अपनाते हुए उत्तम काव्यों की रचना करनेवाले आप अमर कवि हैं। राष्ट्री-यता के अनन्य पुजारी ही नहीं, बल्कि आप गांधीवाद से प्रभावित सहृदय देश-भक्त कवीश्वर हैं।

यह लोक मुझे सदा कवि मानता रहा
उसे सिद्ध करूँ, यही मैं चाहता रहा।
पर मेरी वह चाह अधूरी ही रह गई
बुद्धि की तेजी घटी, उम्र ढलती गई।

* * *

कविकुल के आमोदयोग्य काव्य सृजन
किया नही, मुझे इसकी चिंता नहीं है।
कवि कहला कर भी प्रभु का स्तवन
किया नहीं कभी, इसकी चिंता जरूर है।

* * *

देवताओं की पूजा मैंने कभी नही की,
दान-धर्म की बात नहीं की, विप्रों की सेवा नही की।
पुण्य क्षेत्रों के दर्शन की कोशिश भी नहीं की,
उन्नति की नहीं, सदा अवनति की ही बात की॥

* * *

उच्च कुल. विद्या, रूप, और धन
सब कुछ प्राप्त किया,
पर किसी से लाभ नहीं उठाया,
यों ही जन्म गँवाया॥

इस प्रकार विनम्रता के साथ अपना परिचय 'नेनु' (मैं) शीर्षक कविता में देने वाले तेलुगु के देशभक्त, गाँधीवादी, आधुनिक कवि श्री काटूरि वेंकटेश्वररावजी हैं। उपर्युक्त वाक्य ही काटूरिजी की सहृदयता, ईमानदारी, साथ-साथ लोकप्रियता के परिचायक हैं।

ऊँचा कद, आजानु बाहु, गोरा शरीर, गम्भीर चेहरा, नोकदार नाक, घनी सफेद मूँछें, मोटे फ्रेम का चश्मा, घनी भौंहें, छोटे-छोटे केशों से युक्त गंजा सिर, हाथ में ताड की बनी छड़ी, पाँवों में पंडिताऊ चप्पल, खादी का कुर्ता, खादी की धोती, कंधे पर काश्मीरी शाल या धारीदार खादी का उत्तरीय, मुँह में कीमती तमाखू का लम्बा और पतला चुरुट संक्षेप में काटूरिजी का यही स्वरूप है।

काटूरि और पिंगलि

श्री काटूरि वेंकटेश्वरराव का जन्म १५ सितम्बर १८९५ ई० को आन्ध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के काटूरु नामक गाँव के ब्राह्मण परिवार में हुआ। तेलुगु महाभारत के प्रसिद्ध कवि 'एर्राप्रगडा' के आप वंशज माने जाते हैं। बचपन में ही आपके चाचा ने आपको गोद लिया। प्रारम्भिक पढ़ाई काटूरु गाँव में ही हुई। गुडिवाडा नामक शहर में थर्ड फार्म तक की शिक्षा प्राप्त करके मछलीपट्टणम के हाईस्कूल में भर्ती हो गये। हाईस्कूल की परीक्षा पास कर वहीं के नोबुल कालेज में भर्ती होकर इंटर तक की शिक्षा प्राप्त कर चुके। वहाँ तेलुगु के सफल कवि और अच्छे समालोचक श्री पिंगलि लक्ष्मीकांतमजी का ऐसा सम्पर्क आपको प्राप्त हुआ जो कभी नहीं छूटा। आप दोनों को तेलुगु साहित्य सदन के कविकुलगुरु स्व. चेल्लपिल्ला वेंकट शास्त्रीजी के शिष्य बनने का सौभाग्य मिला।

स्वयं काटूरिजी कहते हैं—

सुकवि ‘ पिंगलि ’ का सांगत्य मिला,
सद्गुरु ‘ चेल्लपिल्ल ’ का कृपादान मिला
इससे मैं कवि बना, तुकबन्दी करता चला
पद्य सृजन का निज चापल्य दिखाता चला।

स्व. चेल्लपिल्ल वेंकटशास्त्री और स्व. दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री दोनों सरस्वती के अवतार माने जाते थे। वे दोनों मिल कर तेलुगु और संस्कृत में कविता करते थे। आजीवन उन दोनों का साथ नहीं छूटा। वे दोनों ‘ तिरुपति वेंकटेश्वर कवि ’ कहलाए। उन्हीं अपने गुरुओं के आदर्श पर काटूरि वेंकटेश्वरराव और पिंगलि लक्ष्मीकान्तम दोनों मिलकर कविता करने लगे। तब से ‘ पिंगलि-काटूरि कवि ’ कहलाए। इन दोनों की प्रगाढ मित्रताने बाद में बन्धुत्व का रूप भी धारण कर लिया। उन दिनों मछलीपट्टणम स्व. पट्टाभि सीतारामय्या जैसे राजनीतिज्ञ, प्रसिद्ध तेलुगु साप्ताहिक “ कृष्णा पत्रिका ” के सम्पादक स्व. मुट्नूरि कृष्णाराव जैसे विद्वज्जन और स्व. चेल्लपिल्ल वेंकटशास्त्री जैसे महान कवि का केन्द्र बन गया था। इससे वह राजनीति के साथ-साथ साहित्यिक केन्द्र भी बन गया था। वहीं पर काटूरिजी के व्यक्तित्व का विकास हुआ।

असहयोग आन्दोलन और काटूरि—

काटूरिजी का जन्म धनी परिवार में हुआ। इसलिए उन्होंने कभी भी पेट भरने के लिए नौकरी

नहीं की। असहयोग आन्दोलन में काटूरिजी ने सक्रिय रूप से भाग लिया। बी. ए. की पढ़ाई छोड़ दी। 1930 के नमक सत्याग्रह में भाग लेकर छः मास तक कारागार में रह चुके। तब से आपके शरीर पर स्वच्छ श्वेत खादी का आधिपत्य हो गया। जेल से छूटने के बाद मछलीपट्टणम की आन्ध्र जातीय कला शाला में काम करने लगे। १९३२ से १९४२ तक वहीं आप कभी सहायक और कभी प्रधानाचार्य का कार्य संभालते रहे। वहाँ के कार्यसे निवृत्त होकर आपने दूसरी नौकरी स्वीकार नहीं की।

साहित्य जगत् ही आपके जीवन का विहार केन्द्र बन गया। कृष्णा पत्रिका के सम्पादक मुट्नूरि कृष्णरावजी का प्रभाव आप पर अधिक पड़ा। कृष्णारावजी के निधन के बाद १९४५ से १९५२ तक कृष्णा पत्रिका के सम्पादन का कार्य आपने संभाला। आन्ध्र प्रदेश के कितने ही केन्द्रों में आपके भाषण होते रहे हैं, जो साहित्यिक महत्व रखते हैं। १९४५ में नव्य साहित्य परिषद के तेनालि अधिवेशन के सभापति की हैसियत से आपने जो भाषण दिया उसने साहित्य जगत् में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। काटूरिजी की कविताओं पर गाँधीवाद का प्रभाव अधिक दीखता है। उनका निवास स्थान काटूरु गाँव रहा। चार लड़कियों और तीन लड़कों से युक्त काटूरिजी का पारिवारिक जीवन सुखमय रहा।

आपके ज्येष्ठ पुत्र कोंडय्या और द्वितीय पुत्र विजय सारथी साहित्य क्षेत्र में पदार्पण कर के यश प्राप्त कर चुके हैं।

विविध काव्य

परिमाण की दृष्टि से देखें तो काटूरिजी की कविता कम ही है। पर उन्होंने जो कुछ लिखा सो ठोस लिखा है। काटूरिजी की निजी कृतियाँ 'पौलस्त्य हृदय' और गुडिगंटलु' (मन्दिर की घंटियाँ) हैं। इन दोनों का प्रकाशन हो चुका है। 'काटूरि और पिंगलि' दोनों के नाम पर प्रकाशित कविता संग्रह 'तोलकरि' (बरसात का आरम्भीय मौसम) १९२३ ई० में ही प्रकाशित हुआ। काटूरि और पिंगलि 'कवि द्वय' को उच्चकोटि के कवियों के बीच स्थान दिलाने वाला प्रबन्ध काव्य 'सौंदर नंदम' है जिसका १९३४ ई० में प्रकाशन हुआ।

"पौलस्त्य हृदय" तथा "गुडिगंटलु" (मंदिर की घंटियाँ) शीर्षक काव्य संग्रह को काटूरिजी ने अपने बड़े भाई स्व. रामकृष्णय्या जी के नाम अंकित किया। वे लिखते हैं—

"घर गृहस्थी, बाल-बच्चे, खेतीबाड़ी किसी पर ध्यान दिये बिना घुमक्कड़ बन घूमते रहने वाले मेरे जैसे अपने इस छोटे भाई को देख कर मालूम नहीं मन

ही मन वे कितने दुःखी हुए होंगे। मगर कभी उन्होंने मेरी शिकायत नहीं की। दयालु बन कर मेरा लालन-पालन किया। ऐसे शीलवान अपने बड़े भाई के नाम यह ग्रन्थ अंकित करता हूँ।"

इस ग्रन्थ में काटूरिजी ने 'हमारे लोग, हमारा गाँव' शीर्षक कविता भी जोड़ दी है। यद्यपि इस कविता के अंतर्गत अपने परिवार और बन्धु-बाँधवों का परिचय कविने दिया है, मगर वह परिचय काव्यमय बन पड़ा है। कविने अपने पूर्वजों की आपसी मित्रता का सहज वर्णन किया है। यह परिचय प्राचीन भारतीय आदर्श परिवार का प्रभावशाली दृश्य पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है।

भारत के गाँव-तब और अब

'हमारा गाँव' शीर्षक कविता हिन्दी के राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त जी की 'भारत भारती' की याद दिलाती है। अपने गाँव काटूरु की प्राचीन और वर्तमान परिस्थितियों का वर्णन करते हुए प्राचीन भारतीय गाँवों की उन्नति, साथ-साथ आधुनिक भारतीय गाँवों की अवनति का भी हृदयग्राही चित्र-कवि ने अंकित किया है।

कवि का काटूरु गाँव पहले गरीब था। लेकिन कृष्णा नदी पर जब बाँध का निर्माण हुआ तब उसके

पानी से सारी पृथ्वी उपजाऊ बन गई। काटूरु गाँव भी कृष्णा के किनारे ही है। कृष्णा का पानी नहरों के द्वारा वहाँ भी पहुँचा। फिर क्या था! काटूरु गाँव में लक्ष्मी निवास करने लगी। गाँव का रूप ही बदल गया। सभी कुलवाले वहाँ बस गये। सब के सब मिल जुल कर रहते थे। धर्म के प्रति लोगों में आस्था थी। सचमुच प्राचीन भारत का वह स्वर्ण युग था। यद्यपि उस समय भी पाप कर्म लोग करते थे तथापि कम से कम उस समय पाप से वे अवश्य डरते थे। पाप कर्म को पुण्य कर्म सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करते थे। भारत के गाँवों का वह आदर्श रूप धीरे-धीरे परिवर्तित होता गया। वह प्रेम भाव अब नहीं रहा। यहाँ कवि व्यथित हो कर पूछते हैं—

कष्ट सुखमुलंदु गलिमि लेमुलयंदु
बंचि कुडुचु नट्टि पल्ले प्रदुकु
कन्नुमरगे; नेटि यन्नल केडमोगाल्
पेड मोगालु वच्चि पडिये नेट्लु?

'कष्ट-सुख, अमीरी-गरीबी में भी मिलजुल कर जीवन यापन करने वाले ग्रामों की हालत बदल गई। आज कल के भाई एक दूसरे का मुंह भी देखना नहीं चाहते। ऐसी स्थिति क्यों हुई?' फिर कवि प्रश्न करते हैं कि 'पहले के वे कुल अब भी हैं। अमीरी-गरीबी तो तब भी थी, अब भी है। ऐसी हालत में

ग्राम जीवन की मधुरिमा लुप्त हो कर वह क्यों तिक्त होगई ?'

इस प्रकार इन कविताओं में भारतीय गरिमा, गाँधीवाद के आदर्श, तथा आन्ध्रों की भव्य नागरिकता का वर्णन करते हुए काटूरि यह संदेश गौण रूप से देते हैं कि भावी ग्रामीण जीवन किस प्रकार सुखमय बन सकता है।

तेलुगु भाषाभाषियों के उपास्य देवता दो हैं। एक हैं, तिरुपति पर्वत पर विलसित बालाजी और दूसरे हैं भद्राचलम में विराजमान श्री रामचन्द्रजी। इन दोनों से सम्बन्धित कविताएँ हैं, 'मंदिर की घंटियाँ और पौलस्त्य हृदय'।

रामभक्त रावण

'पौलस्त्य हृदय' शीर्षक कविता में रावण को हम नये रूप में पाते हैं। श्री रामचन्द्र जी के आगमन की खबर समुद्र के द्वारा पाकर प्रसन्न हो रावण कहता है कि—

'एन्नाल्लकु ! एन्नाल्लकु
कन्नुलु विंशतियु नाकु गलिगिन फल मा
सन्नमयि वच्चे ! भुजग
वोन्नति चरितार्थमगु मुहूर्तमु वच्चेन्।'

"कितने ही दिनों के बाद मेरे नयनों के अभीप्सित फल की प्राप्ति का समय आ गया है।

मेरी भुजाओं की गर्वोन्नति के चरितार्थ होने का मुहूर्त समीप आ गया है।"

वास्तव में रावण श्री रामचन्द्र का परम भक्त है। पर उसकी भक्ति साधारण नहीं है। नवधा भक्ति में से किसी को भी वह नहीं अपनाता। रणरंग में महाबली रावण, अवतार पुरुष रामचन्द्र का सामना करने के लिए उतावला होता है। भीषण वैर भक्ति को वह अपनाता है। 'पौलस्त्य हृदय' कविता का उद्देश्य भी यही है। इस कविता में कवि बताते हैं कि अन्य सभी मार्गों से भीषण विद्वेष का मार्ग ही भगवान् के निकट पहुँचने का उत्तम साधन है।

इसके लिए कवि ने रावण के जन्म के वृत्तांत का आधार लिया। सनकसनन्दन जब वैकुंठ में प्रवेश करने लगे तब द्वारपालक जय और विजय ने उनको रोक दिया। उस से क्रुद्ध होकर सनकसनन्दन ने शाप दिया कि तुम दोनों पृथ्वी पर जन्म लो। जब जय विजय ने क्षमा माँगी तब सनकसनन्दन ने शाप विमोचन का उपाय बता दिया। उन्होंने उपदेश दिया कि परमेश्वर का वैरी बन कर तीन बार जन्म लेने पर प्रभु के सन्निकट पहुँच सकोगे। उसी के अनुसार प्रथम जन्म में जय विजय, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप बने। द्वितीय जन्म में रावण और कुंभकर्ण बने। तृतीय जन्म में शिशुपाल और दंतवक्त्र बने। अन्त में उन दोनों का शाप विमोचन हो गया।

इस कविता का शीर्षक 'रावण का हृदय' न रख कर 'पौलस्त्य हृदय' रख करके कवि ने नवीनता दिखाई। रावण का पिता 'पुलस्त्य' परम निष्ठावान ज्ञानी था। उसके पुत्र रावण का हृदय पिता के आत्मज्ञान से उद्दीप्त था। रावण की अपूर्व भक्ति का कारण यही था। इस प्रकार 'पौलस्त्य हृदय' नवीन कल्पना और प्रभावशाली भक्ति का उज्जवल उदाहरण बन पड़ा है।

'मन्दिर की घंटियाँ' शीर्षक लघु काव्य में कवि बालाजी से प्रार्थना करते हैं कि सात पर्वतों के शिखर पर विलसित हे प्रभो! तुम्हारे दर्शन के लिए भक्त हरिजन हाथ जोड़े खड़े हैं। उन्हें दर्शन दो। पहाड़ों पर निवास करते हुए अपने ही भक्त जनों से दूर मत होओ।' फिर कवि हरिजनों के दुःखों का करुणाजनक वर्णन करते हैं। भगवान् से कहते हैं कि हे प्रभो, अब तुम्हारे भोग-भाग्य, तथा ऐश-आराम पहले की तरह नहीं चलेंगे। दीनों पर ध्यान देना न्यायोचित है।

पददलित जनता की उन्नति का गान करने वाली प्रगतिशील कविताओं में जोश, खरोश तथा वर्ग विषमता के दर्शन होते हैं। लेकिन काटूरिजी का प्रगति मार्ग अहिंसा के आधार पर निर्मित है। दीन जनता की सेवा ही जनार्दन की सेवा है। उनसे तादात्म्य प्राप्त करके समाज के उद्धार का मार्ग वे प्रशस्त करना चाहते हैं।

'तोलकरी' (बरसात का आरंभीय मौसम) श्री पिंगलि लक्ष्मी कांतम तथा काटूरि वेंकटेश्वर राव दोनों कवियों के नाम पर सं० १९२३ ई० में प्रकाशित फुटकर कविताओं का संग्रह है। उसमें 'कविता की सामग्री, कवि शिशु, कोकिल, संक्रांति, जोन्नचेनु (ज्वार की खेत), एडबाटु (बिछोह) अज्ञानकृतम, रसाल, तोलिपूत (प्रथम बौर), तुम कौन हो? पिंजड़े का सिंह और रक्त तिलक शीर्षक कविताएँ संग्रहीत हैं। इन कविताओं में प्राचीन और अर्वाचीन वर्णन शैली का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। इस पुस्तक की प्रस्तावना आन्ध्र विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति स्व. सि. रामलिंगा रेड्डी जी ने लिखी थी। वे लिखते हैं—

"यह काव्य संग्रह अनेक कविताओं से विलसित सुकुमार पुष्पमंजरी के समान है। हर कविता का आकार प्रकार, वर्णन शैली अनुपम और असाधारण हैं। कुछ कविताएँ प्राचीन और कुछ अर्वाचीन परिपाटी पर लिखी गई हैं। इन कवियों का मार्ग आधुनिक है।" आगे चल कर वे लिखते हैं—

"इन कविताओं का प्रकृति वर्णन सूक्ष्म भाव समन्वित है। प्रकृति की चित्तवृत्तियों का मनुजों की सहज अकृत्रिम चित्तवृत्तियों के साथ सुन्दर समन्वय किया गया है। गुण की दृष्टि से इनसे बढ़ कर श्रेष्ठ कविताएँ आन्ध्र भाषा में अधिक नहीं हैं।"

"सौंदरनंदम"

तेलुगु साहित्य के आधुनिक काल के इने-गिने तथा प्रधान काव्यों में कातूरि और पिंगलि कृत 'सौंदरनंदम' अत्युत्तम है। गौतम बुद्ध का भाई है नंद। उसकी पत्नी का नाम है सुन्दरी। दोनों प्रेमी-जीव हैं। गौतम बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर विषय-वासनाओं में लिप्त नन्द बौद्ध धर्म स्वीकार करता है। श्रमण बन जाता है! सुन्दरी भी अपना हृदय बदल लेती है। अपने ऐहिक सुखों को तिलांजलि देकर लोक सेवा में लीन होकर सुन्दरी व नन्द अपने जीवन धन्य बना लेते हैं। संक्षेप में इस काव्य की यही कथावस्तु है।

संस्कृत में इस कथा को लेकर अश्वघोष ने 'सौंदरनन्दम' की रचना की थी। अश्वघोष बौद्धधर्म के प्रामाणिक आचार्यों में से एक थे। उनके संस्कृत के सौंदरनन्दम का प्रधान उद्देश्य बौद्ध धर्म का ही प्रचार था।

स्वयं अश्वघोष ने अपने काव्य में बताया है :—

"सामन्यतया लोग विषय-वासनाओं में लिप्त रह कर मोक्ष प्राप्ति के विरोधी बनते हैं। इसलिये इस काव्य के बहाने से परमार्थ तत्व प्रतिपादित किया गया है। पाठक कव्य के प्रधानसंदेश को ही परम लक्ष्य के रूप में स्वीकार करें। आनुषंगिक रूप में इसमें शृंगार सम्बन्धी जो वर्णन मिलता है, उसे

आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं। नन्द दूसरे प्रकार का जीव है। नन्द जैसे जीव आजकल अधिक संख्या में हैं। इस तरह व्यष्टि भावना तक ही सीमित लोगों के समक्ष सुन्दरी और नन्द के पात्रों के चित्रण से विलसित अपने प्रबन्धकाव्य 'सौन्दरनन्दम' के द्वारा पिंगलि और काटूरिने समष्टि की भावना प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयत्न किया हैं। प्रबंधात्मिकता और काव्य लक्षणों की दृष्टि से भी यह काव्य लोकप्रिय बन गया है। अपने गुरु स्व. चेल्लपिल्ल वेंकटशास्त्रीजी को गुरु दक्षिणा के रूप में यह काव्य उन्होंने समर्पित किया। इस काव्य का रजतोत्सव गुडिवाडा शहर में मनाया गया।

श्री काटूरीजी तेलुगु, संस्कृत और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता हैं। संस्कृत से भास के उपरूपक 'स्वप्न वासवदत्ता और प्रतिज्ञा यौगंधरायण' का तेलुगु में अनुवाद आपने किया। अंग्रेजी से, महात्मा गान्धी जी की आत्मकथा, रोलाँ कृत 'गाँधी', महादेव भाई कृत अबुलकलाम आजाद, ए. एस. पी. अय्यर कृत त्रिमूर्ति वगैरह ग्रन्थों के सुन्दर अनुवाद तेलुगु में प्रस्तुत किये। वे सब अनूदित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आपके बीसों रेडियो रूपकों में श्रीनिवास कल्याणम, तेलुगु के प्रसिद्ध गीतकार क्षेत्रय्या की जीवनी से सम्बन्धित 'मुव्व गोपाल' वगैरह उल्लेखनीय हैं। जीवन भर तेलुगु साहित्य जगत् के यशस्वी साधक श्रीवेंकटेश्वररावजी का देहावसान

ता० २५-१२-१९६२ को हो गया। तेलुगु साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्री बेजवाडा गोपालरेड्डीजी के शब्दों में "श्री काटूरीजी आन्ध्र प्रदेश के उच्चकोटि के कवियों में से एक हैं। आप राष्ट्रीयता के पुजारी और सहृदय व्यक्ति के रूप में साहित्यिकों के अलावा साधारण जनता के लिये भी आदर के पात्र बन गये हैं"



जि. जाषुवा

हरिजनों के कुल में जन्म लेकर भी कडी मेहनत, अपार अध्ययन और अनुपम प्रतिभा के बल पर अमूल्य काव्य रत्नों का सृजन कर उच्च कोटि के तेलुगु के आधुनिक कवियों में स्थान प्राप्त करके कीचड के कमल की तरह पंडित और पामर सब से सम्मानित होनेवाले जनता जनार्दन के आप अनन्य तपस्वी कवि हैं।

"प्रसिद्ध आन्ध्र कवियों की कवितारूपी वीणाओंने मुझे आकर्षित किया। मेरे हृदय को स्पर्श किया। मुझे प्रोत्साहित किया। सोचा कि मैं भी एक वीणा बजाऊँ। कोशिश करने पर मुझे तो वीणा नहीं मिली। सितार मिला। वही मेरी कविता है। उसे मैंने बजाया। बजारहा हूँ। उसे सुना रहा हूँ प्रजा को, पूंजीपतियों को नहीं। इस मेरी कविता की यात्रा में कुछ तार टूट गये। कुछ तो मूक हो गये। लेकिन मैं हताश नहीं हुआ। उत्साहित होकर बजा ही रहा हूँ। दुनियाँने मेरी तरफ लाल लाल आँखों से देखा। मेरा अनादर किया; आदर किया। सत्कार किया; असत्कार किया। मुझे दूर किया; गोद में लेकर प्यार भी किया।

किसीने मुझे प्रोत्साहित किया
किसीने मुझे निरुत्साहित किया
किसीने मुझे बुलाकर प्यार किया
किसीने मुझे दूर से दुत्कार दिया
टीलों पर मैं कभी चढा, गढों मे मैं कभी गिरा
फिर भी मैं आगे बढता ही चला
माँ शारदा की मैं सेवा करता चला।"

उपर्युक्त वाक्य तेलुगु के धुनके पक्के, फक्कड स्वभाव के ऐसे कवि के हैं जिनका जन्म ईसाई कुल में हुआ। फिर भी उन्होंने कडी मेहनत, अपार तपस्या के बल पर आधुनिक तेलुगु काव्य जगत् में स्थाई और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। उनका हृदय हमेशा जोश-खरोश के साथ सामा-

जिक अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह कर बैठता है। वे कवि हैं श्री जि. जाषुवा जो कविता विशारद, कवि दिग्गज, कविकोकिल, तथा नवयुग चक्रवर्ती वगैरह उपाधियों से आन्ध्र जनता के द्वारा सम्मानित हो चुके हैं।

श्री जाषुवा का जीवन बडा विचित्र है। उनका जन्म २८ सितंबर १८९५ को गुंटूर जिले के विनुकोंडा गाँव में हुआ। उनके पिताने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। बचपन से उन्हें कडी मेहनत करनी पडी। किसी न किसी तरह पढ लिख कर परिवार के पालन पोषण के निमित्त गाँव के प्रारंभिक स्कूल में अध्यापक बन गये। कुछ दिनों के बाद वह नौकरी छोडकर "फिल्म ट्रान्सलेटर" का काम करने लगे। वह नौकरी भी छोडकर राजमहेन्द्रवरम चले गये। वहाँ तेलुगु के प्रसिद्ध नाटक कंपनी के व्यवस्थापक स्व. गुन्नेश्वररावजी से उनका परिचय हुआ। उनके प्रोत्साहन से तेलुगु में कई नाटकों की जाषुवाने रचना की। फिर उन्होंने वह नौकरी भी छोड दी। गुंटूर पहुँच कर वहाँ के मिशन ट्राइनिंग स्कूल में तेलुगु अध्यापन का कार्य करने लगे। वह नौकरी भी छोड कर गुंटूर जिला बोर्ड के अंतर्गत तेलुगु अध्यापक की नौकरी करने लगे। विनुकोंडा, बापटला, वगैरह गाँवों के हाइस्कूलों में नौकरी करते हुए आन्ध्र यूनिवर्सिटी की "उभय भाषा प्रवीण" परीक्षा पास की। १९४८ ई० में वह नौकरी भी छोड दी। युद्ध प्रचारक की नौकरी

करने लगे। १९५६ से १९५९ तक आकाशवाणी, मद्रास में नौकरी करते रहे। आजकल गुंटूर शहर में रह कर विश्राम ले रहे हैं। सरकार की तरफ से आर्थिक मदद पाते हुए काव्यों की रचना कर रहे हैं। १९५६ में उनकी पत्नी का देहांत हो गया।

"लंबा कद, किताबी चेहरा, नुकीली नाक, घनी मूँछें, तेज आँखें, साँवला रंग, सफेद कुर्ता, सफेद धोती, कंधे पर काश्मीरी शाल, हमेशा हाथ में दो तीन किताबें" यही जाषुवा का संक्षेप में स्वरूप है।

पग पग पर तकलीफें

आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रों में पिछडे हुए कुल में उत्पन्न होने के कारण तेलुगु और संस्कृत साहित्य के गहन अध्ययन का मौका उन्हें नहीं मिला। पूर्व जन्म के भाग्य से उन्हें साहित्य के प्रति रुचि हुई। उस समय आन्ध्र प्रांत में तिरुपति वेंकटेश्वर कविद्वय और कोप्परमु कविद्वय के द्वारा जहाँ तहाँ काव्यगान और अवधान आदि होते थे। उनसे जाषुवा काफी प्रोत्साहित हुए। फलस्वरूप १७ साल की अवस्था में ही वे तेलुगु में कविता करने लगे। कई तकलीफों का सामना करते हुए कविता जगत् में आगे बढते ही चले और अमृतकलश जैसे काव्यों की रचना करके तेलुगु के साहित्य सदन की श्रीवृद्धि की। श्री हनुमच्छास्त्री नामक ब्राह्मण विद्वान की मदद से जाषुवाने संस्कृत के काव्यों का अध्ययन किया। उन दिनों एक ईसाई

को संस्कृत सिखाना मामूली बात न थी। फिर भी शास्त्रीजी किसी की परवाह न करते हुए जाषुवा को संस्कृत काव्य पढाते रहे।

साहित्य की अनुपम सेवा

श्री जाषुवाने टूटी फूटी झोंपडी में निवास करते हुए, प्रकृति माता की गोद में बैठकर, खाली पेट ही रह कर कई तेलुगु काव्यों की रचना की। उनके काव्यों में "हिमधर्मार्कि परिणय, शिवाजी, फिरदौसी, स्वप्न कथा, गब्बिलम (चमगीदड) के प्रथम और द्वितीय भाग, कांदिशीकुलु (शरणार्थी), नेताजी, बापूजी, क्रोत्तलोकमु (नया संसार), मुमताजमहल, राष्ट्रपूजा, और मेरी कथा के प्रथम और द्वितीय भाग" आदि उल्लेखनीय हैं। करीब ११३ फुटकर कविताओं के चार संग्रह अबतक प्रकाशित हो चुके हैं। और भी कई अप्रकाशित कविताएँ उनके पास हैं।

श्री जाषुवा के काव्यों में देशभक्ति, प्रांतीय अभिमान, व्यथित हृदय की आह, कुल-मत, ऊँच नीच के भेदभावों से रहित अहिंसात्मक समाज के निर्माण का संदेश, सामाजिक अन्यायों के विरुद्ध विद्रोह की आवाज, वीररसात्मक सरल और स्पष्ट शैली, पाठकों के हृदयों को सहज ही आकृष्ट कर रसार्द्र बना देने की अनुपम कल्पना चातुरी आदि विशेषताएँ पग पग पर दृग्गोचर होती हैं।

फिरदौसी

श्री जाषुवा के काव्यों में बहुचर्चित और बहु प्रचलित काव्य फिरदौसी है। फारसी के कवि फिरदौसी को अपने उक्त काव्य के द्वारा जाषुवाने तेलुगु प्रांत में अमर बना दिया। फिरदौसी कवि की विषादांत कथा इनसानियत के लिए एक चुनौती है। बात के पक्के अभिमानी कवि और वादे से मुकुरजाने वाले बादशाह के बीच का अंतर इस काव्य में अच्छी तरह स्पष्ट हो चुका है। कवि कहते हैं—

राजु चेति कत्ति रक्तंबु वर्षिंचु
सुकवि चेति कलमु सुधलु गुरियु
आतडेल गलुगु यावत्प्रपंचंबु
नीतडेल गलुगु इहमु परमु"

(राजा के हाथ की तलवार रक्त की वर्षा करती है। पर सुकवि के हाथ की कलम अमृत की वर्षा करती है। वह समस्त संसार का शासन कर सकता है। मगर यह तो इहलोक और परलोक का भी शासन कर सकता है।)

फिर कहते हैं—राजा मर गया। आसमान से एक तारा टूट कर गिरगया। कवि भी मर गया। आसमान में एक नया तारा जगमगाने लगा। राजा पत्थरों की मूर्तियों में बस गया। पर सुकवि जनता की गिरा में अमर बन गया।

गजनी का बादशाह महमूद भारत को लूट कर रत्नों की बोरियाँ लिये गजनी चला जाता है। अपने देश को समृद्ध बना लेता है। भारत के कई मंदिर टूट कर वे सब गजनीनगर की मसजिदों के रूप में बदल

जाते हैं। महमूद अपनी विजय-कथा को शाश्वत रूप देने का निर्णय करता है। कविवर फिरदौसी को दरबार में बुला कर कहता है कि "हे कवीश्वर! अपनी कविता की विभव पुरी में ऐसे भव्य भवन का निर्माण करो जिससे मेरी विजय कथा की यशच्चंद्रिका दिग्दिगंत में व्याप्त हो जावे। राज्य की तरफ से एक एक पद्य केलिये एक एक दीनार दिया जाएगा" कवि मान लेते हैं। साठ हजार पद्यों का महान काव्य सृजित करते हैं। उसके लिये फिरदौसी को 30 बरस लगते हैं। काव्य का शीर्षक है "शाहनामा"। भरे दरबार में कवि मुक्त कंठ से उस काव्य का गान करते हैं। बादशाह को सुपुर्द कर घर लौट जाते हैं। लेकिन बादशाह अपने वादे के विरुद्ध चांदी के दीनार कवि के घर भेजता है। सुवर्ण के दीनारों की जगह चांदी के दीनारों को देख कर कवि का हृदय कुंठित हो जाता है। उनकी आशाओं पर पानी फिर जाता है। बादशाह की उस भेंट को स्वीकार न कर के वापस कर देते हैं। साथ साथ बादशाह की कृतघ्नता का सजीव चित्रण करके कुछ पद्य भी लिख कर उसके पास भेजते हैं। इससे बादशाह नाराज़ हो जाता है। फिरदौसी को मार डालने की आज्ञा दे देता है। फिरदौसी अपनी पत्नी और पुत्री को साथ लेकर रातों रात नगर छोड कर चले जाते हैं। जंगलों और पहाडों में भटक भटक कर आखिर अपने तूस देश में पहुँच जाते हैं। उनकी जान बच जाती है। इधर

मित्रों के समझाने पर गजनी महमूद अपनी करनी पर पछताता है। एक दिन नमाज करने के लिये मसजिद जाता है। जब वह वापस लौटने लगता है तब दीवार पर लिखा हुआ निम्न लिखित पद्य दिखाई पडता है।

क्रूर-व्याघ्र जैसे इस कृति ने
मेरी शक्ति का हनन किया।
अस्थि चर्ममय देह बची अब,
जिसमें प्राण-कली मुरझाके अटकी॥
मेरे इस जीवन्मृत वृद्ध-गात्र से
बादशाह की भूख मिटेगी कैसे?
राजा क्या स्वाद पाएगा?
परिभव का ताप मिटेगा कैसे?

* * *

रत्नों के लालच में पड कर
मैंने लगाया सागर में गोता।
पर कुछ लगा न हाथ, हाय,
उलटे मुझे निगलने लगा है सागर॥

बादशाह इन्हें पढता है। उसका हृदय पिघल जाता है। पश्चात्ताप की अग्नि में उसका हृदय तपता है। तुरन्त साठ हजार सोने के दीनार देकर अपने सिपाहियों को फिरदौसी के यहाँ भेज देता है। इधर सिपाही सोने के दीनार लेकर वहाँ पहुँचते हैं। उधर अमरकवि फिरदौसी का जनाजा निकलता है। फिरदौसी कवि की पुत्री उसे अस्वीकार कर देती है। जब यह खबर बादशाह को मिलती है तब उसका हृदय चूर चूर हो जाता है। उस रकम से

तूस देश में फिरदौसी के संस्मरण में एक मुसाफिर-खाने का बादशाह निर्माण कराता है। जीर्ण शीर्ण उस शाला के चिह्न आज भी वहाँ देखने को मिलते हैं। उन्हें देखकर लोग आठ आठ आँसू बहाते हैं। वह संस्मरण बादशाह के अपयश का आज भी जीता जागता स्थाई प्रतीक सा लगता है। वह वास्तव में कविवर फिरदौसी की कीर्ति पताका है। चार अध्यायों में समाप्त फिरदौसी काव्य का अध्ययन करने के बाद, कोई भी ऐसा पाठक नहीं मिलेगा जिसकी आँखों से आँसू की धारा उमड न पडे। फिरदौसी काव्यने जाषुवा को तेलुगु के आधुनिक कवियों में विशेष स्थान प्रदान किया है।

हृदय की व्यथा का मूर्तिमान रूप

'फिरदौसी' के बाद उल्लेखनीय काव्य 'गब्बिलम्' (चमगीदड) है। यह काव्य कवि के हृदय की गहराई से निसृत व्यथा का मूर्तिमान रूप है। हिन्दू समाज में हरिजनों का आदर नहीं होता। देहातों में दूसरे लोगों के साथ मिल जुलकर रहने की सुविधा भी उन्हें नहीं मिलती। गाँव से दूर टूटी फूटी कुटिया में अपने भाग्य को कोसते हुए उन्हें निवास करना पडता है। इस तरह के अभागे अछूत भारत में एक दो नहीं, करोडों की संख्या में हैं। जाषुवा भी उसी कुल के हैं। इसीलिये उनका व्यथित और भावुक कवि हृदय 'चमगीदड' शीर्षक काव्य के पद पद में प्रस्फुटित हो

चुका है। मगर कवि की विशेषता यह कि वे किसी की निंदा नहीं करते। कविने 'अरुंधती' पुत्रों की दीन हीन हालत का करुणा जनक चित्रण अपने इस काव्य में किया है। आठों पहर तम से भरे उजडे घरों में निवास करने वाले चमगीदड को अपना दूत बना कर भारत के पददलित अभागे अछूत की कथा भगवान शंकर को सुनाने के लिये कैलास शिखर तक कवि भेजते हैं। चमगीदड से कवि कहते हैं—

आलयंबुन नीवु व्रेलाडुवेल
शिवुनि चेवि नीकु गोंत चेरुवुगनुंडु
मौन खगराझि ! पूजारि लेनिवेल
विन्नविंपुमु नाडु जीवित चरित्र।

(हे मौन पाखी ! मंदिर में तुम शिवलिंग के नज़दीक लटकते रहते हो। शिवजी का कान तुम्हारे नज़दीक ही रहेगा। जब पुजारी न रहे तब समय पाकर मेरा जीवन चरित भगवान को सुनाओ।)

उसके बाद काव्य राष्ट्रीय भावना तथा प्रांतीय विशेषताओं से ओतप्रोत होकर साहित्यिक महत्व को व्यक्त करते हुए आगे बढता है। तंजाऊर, नेल्लूरु, हंपी, विद्यानगर, गुंटूर, राजमहेन्द्री, द्राक्षारामम, बोब्बिलि, कटक, नालंदा, और पाटलीपुत्र आदि ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थलों के साथ साथ साहित्य जगत् के अमूल्य रत्न भी एक एक करके अपनी विशेषताओं को प्रकट करते हुए पाठकों की आँखों के आगे प्रत्यक्ष होते हैं। साथ साथ कई वीररसात्मक घटनाओं

का भी कविने बडी उत्तमता से चित्रण किया है। फलस्वरूप चमगीदड शीर्षक काव्य एक अभागे की जीवनी की गाथा के साथ साथ देश भक्ति का भी संदेश देकर उच्च कोटि का प्रबोधात्मक काव्य बन पडा है।

नई नई समस्याएँ

महात्मा गान्धी जैसे महान नेता के नेतृत्व में हरिजनों की भलाई का देश की जनताने बीडा उठाया। भारत की हालत बदलने लगी। हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश करने की अनुमति मिल गई। समानता का सिद्धांत अमल में आगया। कवि के कथन के अनुसार अरुंधती सुतों के निराशावृत गगन में आशा के तारे चमक उठे। वे अपनी दासता की बातें भूलने लगे। तब "चमगीदड" का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद और एक तरह की नई समस्याएँ उठ खडी हुईं। नई चिंताओंने कवि के हृदय को घेर लिया। देश में जहाँ देखें वहाँ ईर्ष्या-द्वेष, अनेकता, धार्मिक वैमनस्य, जाति-कुलसंबंधी झगडे, और स्वार्थ चिंतन आदि का बोलबाला हो गया। तब कवि का हृदय चिल्ला उठा—

> ए नाडु मा काव्य सृष्टि कर्तल जिह्व
> विश्व सत्यमु नालपिंप गलदो!
> ए नाडु माजाति दृष्टि मांद्यमु वासि
> चुट्टुप्रक्कल देरि चूड गलदो!

ए नाडु मा बुर्र लो जुट्टु तललेनि
पुक्किटि कथललो जिक्कु वडवो !
ए नाडु मा विद्य लिनुप संघमु नंदु
चिलुमु पट्टक प्रकाशिंप गलवो !

तनुवु द्राचक सोमरितनमु मानि
येन्नडी मठंबुलु बिच्चमेत्तु कोनवो
अट्टि शुभवेल कै कोंगु बट्टि निलचि
नलगि वापोवु चुन्नदि ना मनस्सु ॥

(जिस दिन हम काव्य स्रष्टाओं की
जिह्वा विश्व सत्य का गान कर सकेगी,
जिस दिन हमारी जाति ह्रस्व दृष्टि
छोडकर चारों ओर देख सकेगी,
जिस दिन हमारी बुद्धि बेसिर पैर की
कल्पित गाथाओं के जालसे छूट सकेगी
जिस दिन हमारी विद्याएँ लोहे के
वलय से मुक्त होकर उज्वल बन सकेंगी
जिस दिन हमारे मठ सुस्तों के केंद्र न
बनकर भिखारियों से मुक्त हो सकेंगे
उस दिन होगा कल्याण देश का,
उस दिन होगा कल्याण जगत् का
उस शुभदिन के लिये आंचल पसार कर
मेरा मन कर रहा प्रतीक्षा है।)

फिर कवि का मन यह सोच कर उदास हो जाता है कि उस नये जग के दर्शन मैं कर सकूँगा या नहीं। उसी

उदासीनता का प्रतिबिंब ही चमगीदड काव्य का द्वितीय भाग है।

तम से ज्योति की ओर—

जब पत्नी का देहांत हो जाता है तब पति के दुःखी हृदय का कवि वर्णन करते हुए लिखते हैं—कि पति उन्मत्त की भांति रात दिन निद्रा और आहार भी भूल जाता है। जहाँ जहाँ उसकी पत्नी चलती रही वहाँ वहाँ यों ही घूमता फिरता है। संतान को देखकर दुःखी हो आहें भरता है। बंधु बाँधव आकर समझाते हैं। मगर उसका दिल शांत नहीं होता। निराशा से उसका दिल आवृत हो जाता है। वह उन्मत्त की भांति घूमता फिरता है। ऐसी व्यथा का अनुभव स्वयं कवि जाषुवाने भी अपने जीवन में किया। इसीलिये दुःखी पती के हृदय का उन्होंने सजीव चित्रण "मुमताजमहल" शीर्षक काव्य में किया। पत्नी की मृत्यु से उन्मत्त शाहजहाँने निबिड अंधकार से भरे अपने जीवन गगन में ताजमहल रूपी तेजःपुंज के दर्शन किये। फिर आदर्श प्रेमी शाहजहाँ ने उस महापदार्थ में प्राण फूँक कर स्मशान को स्वर्ग सा बना दिया। जाषुवाने उस कथा को काव्य का रूप प्रदान किया। इस काव्य में एक पागल शिलपी का भी प्रवेश कराकर कवि ने मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचय दिया है। काव्य की समाप्ति करते हुए कवि लिखते हैं—

4920—8

राणि विडिचि पोये राजु नोंटरि जेसि
राजु विडिचि पोये राज्य रमनु
राज्य रमयु विडचे राजुल बेक्कंड्रु
ताजि विडुवलेदु राजसंबु ॥

(राजा को अकेला छोड कर रानी चली गई। राजा भी राज्य रमा को अकेली छोड कर चला गया। राज्य रमा भी कई राजाओं को छोड चुकी। पर ताजने तो राज सी ठाट बाट कभी न छोडी।)

जाषुवा का यह पद्य उनके "मुमताज महल" काव्य के लिये भी ठीक बैठता है।

अछूतों की आह

जाषुवा कृत "अनाथा और स्वप्न कथा" शीर्षक दो खंडकाव्य "स्वप्नकथा" के नाम से पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए। "अनाथा" कवि की आँखों से ढुलकने वाले उष्ण आँसुओं की बूँदों से भरा लघु काव्य है। इस काव्य के प्रारंभ में कवि स्वयं लिखते हैं कि काव्य शिल्प से बढ कर उद्देश्य की अभिव्यक्ति ही मेरा लक्ष्य है। रहने के लिये घर, तन भर कपडा, पेट भर खाना जिसके भाग्य में न बदें हों, ऐसी एक अछूत जाति की अनाथ अबला के जीवन का करुणाजनक चित्रण "अनाथा" शीर्षक लघुकाव्य में कविने किया है। उस अबलाका पति मर गया है। वह छः बच्चों की माँ है। उसकी कष्ट कथा का हृदय द्रावक वर्णन अनाथा काव्य में पढने को मिलता है।

"स्वप्न कथा" शीर्षक लघुकाव्य में अपनी जवानी से हाथ धोकर पुरुषों की वासनामय नज़रों के शिकार बनती हुई हमेशा दूसरों की मदद करती हुई सब से तिरस्कृत होनेवाली अभागिनी नारी की कथा का वर्णन किया गया है। महाराष्ट्र के वीर शिवाजी की जीवनी का वीररसपूर्ण चित्रण "शिवाजी" शीर्षक काव्य में मिलता है। बौद्ध धर्म के वातावरण से भरा काव्य है कांदिशीकुलु (शरणार्थी)। आन्ध्र राज्य की स्थापना के निमित्त आत्मार्पण करनेवाले शहीद पोट्टि श्रीरामुलुजी की आहुति पर दुःख प्रकट करते हुए नये आन्ध्र राज्य के निर्माण के बारे में नेताओं को "राष्ट्रपूजा" नामक काव्य में कवि उपदेश देते हैं। कई वर्षों से श्री जाषुवा इस संसार को देखते आरहे हैं। यहाँ के लोगों के तौर तरीके देख कर काफी अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। उस अनुभव के आधार पर अपने मन में जो जो विचार उठे उन सब का स्पष्टीकरण करते हुए "क्रोत्तलोकमु" "नया संसार" नामक काव्य की जाषुवाने रचना की। कवि भगवान से कहते हैं—

सृष्टिकर्तवु नीवु नीसृष्टि लोनि
मानवुड नेनु, इद्दरि मध्य मनकु
मुसुगुलो गुद्दुलाटलु सागविक
हक्कु गलदय्य प्रश्न सेयंग निन्नु ॥

(तुम सिरजनहारे हो। मै तुम्हारी सृष्टि का ही मानव हूँ। हम दोनो के बीच अब दुराव छिपाव की कोई ज़रूरत नहीं। तुमसे प्रश्न करने का हक मुझको है।)

मेरी कहानी

अपनी आत्मकथा का चित्रण आजकल श्री जाषुवा "ना कथा" (मेरी कहानी) शीर्षक काव्य में कर रहे हैं। चार भागों में यह काव्य प्रकाशित हो रहा है। जिन्दगी में जो जो अनुभूतियाँ जाषुवाने प्राप्त कीं उन सबके चित्रण के साथ साथ आन्ध्र प्रदेश की सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का भी वे ना कथा (मेरी कहानी) काव्य में वर्णन कर रहे हैं।

फुटकर कविताएँ

जैसा कि पहले कहा गया श्री जाषुवा की फुटकर कविताओं के चार संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें से अधिकांश कविताएं महापुरुषों, तेलुगु प्रांत के कवियों, प्रसिद्ध क्षेत्रों, और राजनैतिक नेताओं की प्रशंसा आदि से संबंध रखती हैं। जाषुवा की कविताओं में यद्यपि प्रांतीयता को ज्यादा महत्व मिला है तथापि उनकी प्रांतीय भावना कहीं भी राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधक नहीं बनी है। उनकी फुटकर कविताओं में गोरैया, मकडी, मयूरसुंदरी, दूल्हा भ्रमर, स्मशान, निकुंज, जाकी (पालतू कुत्ता), गाय और बंदर शीर्षक कविताओंने तेलुगु के काव्य संसार में विशेष स्थान पा लिया है।

आदमी समझता है कि अन्य जीवों से मैं ही श्रेष्ठ हूँ। इसलिये वह यह समझ नहीं पाता कि उससे

सब अच्छे हैं। गोरैया का घोंसला देखकर कवि चकित हो जाते हैं। वे कहते हैं कि तुम हलके हलके तिनके आदि लाकर घोंसला बनाते हो। तुम्हारा घोंसला तो झूले की तरह इधर उधर झूलता रहता है। उसके अंदर अलग अलग कमरों का निर्माण करते हो। उसमें पलंग का प्रबंध करते हो। नक्काशी का काम भी करते हो। हे पंछी ! तुम्हारी शिल्प कला तथा वास्तु कला चातुरी स्तुत्य है। सूत कातनेवाला यंत्र या चरखा मकडी के पेट में नहीं होते। फिर भी दैवी शक्ति की सहायता से वह रेशमी सूत भी देती है। ऐसी मकडी को देख कर कवि विस्मित होते हैं। उसके गुणों और दुर्गुणों का भी वे वर्णन करते हुए उसके गुणों का ही संदेश स्वीकार करने का उपदेश संसार को देते हैं। कवि की दृष्टि में स्मशान साम्यवाद का सच्चा प्रचारक है। जब कवि का पालतू कुत्ता "जाकी" मर जाता है तब कवि का जी भर आता है। उस कुत्ते का करुणाजनक और चित्ताकर्षक वर्णन कवि 'जाकी' शीर्षक कविता में करते हैं। महारथी कर्ण कवि को अधिक पसंद है। अपनी कई फुटकर कविताओं में कविने कर्ण की विशेषताओं का प्रभावशाली वर्णन किया है।

गुणों का मंडन और दोषों का खंडन

कहीं भी दोष दिखाई पडे तो श्रीजाषुवा उसका खंडन करते हैं। यह उनकी सब से बडी विशेषता

है। वे छुआ छूत को माननेवालों का तिरस्कार जिस प्रकार करते हैं, उसी प्रकार महात्मा ईसा का नाम लेकर ईसाई पादरी जो जो जुर्म कर रहे हैं उनका स्पष्ट शब्दों में खंडन करते हैं। हरिजन और ईसाइयों में भी जो भेदभाव है उसका भी वे खंडन करते हैं। "स्वराज्य की प्राप्ति तो हो गई, परन्तु सुराज्य की प्राप्ति नहीं हुई" इस बात की कवि को बडी चिंता है। हम बापूजी की हत्या करनेवाले भारतीय हैं, यह सोच कर कवि कुंठित हो जाते हैं। कहते हैं—

> "स्वराज्य की प्राप्ति से सब को खुशी हुई
> अंग्रेजों को देश से हटा कर हमने दमलिया
> अपने ही हाथों बापूजी की हत्या कर ली
> सभाओं में सहानुभूति के आँसू भी बहाये ॥

इस प्रकार की कविताओं के द्वारा कवि सुराज्य की स्थापना की आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं।

कलापक्ष—

भावपक्ष के साथ साथ कलापक्ष के बारे में भी जाषुवाने अपनी विशेषता दिखाई है। उनका मत है कि हम जो कुछ भी लिखें, वह मामूली आदमी की भी समझ में आवे। इस के लिये वे बिल्कुल बाजारू भाषा का प्रयोग करना नहीं चाहते। छंद संबंधी नियमों के पालन का वे समर्थन करते हैं। जिस किसी भी तरह से लिखना वे पसंद नहीं करते। साथ साथ जाषुवाने कई ठेठ तेलुगु शब्दों का जो कि आम जनता में प्रचलित हैं—अपने काव्यों में प्रयोग किया है।

पद्यों के साथ साथ गद्य की रचना में भी वे समर्थ हैं। चिन्नानायक, चंद्रिका और कुशलोपाख्यान आदि उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। चिदानंद प्रभात (ईसा की जीवनी) धृवविजय, वीराबाई, राणा कुम्भ, रुक्मिणी परिणय, आदि उनके नाटकों में से हैं।

स्वागत और सम्मान

आन्ध्र प्रदेश की जनताने श्री जाषुवा का कई बार सम्मान किया। १९३३ ई० में जयपुरम के राजा स्व. विक्रमदेववर्माजी ने ११११६ रुपये देकर आपका सम्मान किया। "कविता विशारद" की उपाधि आपको प्रदान की। उसी साल वेंकटगिरि के राजाने ५00 रुपये देकर आपका सम्मान किया। १९४७ ई० में विजयवाडा शहर में आपका सम्मान बडे पैमाने पर हुआ। हाथी पर बिठा कर आपका जुलूस निकाला गया। तेलुगु प्रांत के कविकुल गुरु चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्रीजी के द्वारा "गंडपेंडेरम" (रत्न खचित सोने का बडा कडा जो कि तेलुगु प्रांत में कवियों तथा कलाकारों को भेंट किया जाता है) आपको सौंपा गया। पूना शहर के आन्ध्र संघ और बंबई की आन्ध्र समिति ने आपका आदर किया। १९५0 में मछलीपट्टणम के नागरिकोंने ५२१६ रुपये देकर आपका सम्मान किया। १९५२ में गुंटूर शहर के लोगोंने आपका कनकाभिषेक किया। २३000 रुपये वसूल कर

के उस रकम से गुंटूर शहर में एक घर और दो एकड की तरी ज़मीन खरीद कर आपको पुरस्कार के रूप में दिया। आन्ध्र के कई धनी, दानी और साहित्य प्रेमियोंने कई तरह से आपकी मदद की। जाषुवा के करीब करीब सभी काव्य किसी न किसी दाता की आर्थिक मदद से ही प्रकाशित हुए। उनकी बेटी हेमलता "एम. ए." पास कर चुकी। आन्ध्र के प्रसिद्ध नास्तिकवादी, सर्वोदयी नेता, और ब्राह्मण श्री गोराजी के सुपुत्र श्री लवणमजी के साथ हेमलता की शादी हुई। साहित्य जगत् के साथ साथ जीवन के क्षेत्र में भी जाषुवा की सफलता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इस प्रकार अपने काव्यों के द्वारा धार्मिक एकता, और विश्वमानव की भलाई का संदेश देकर विभिन्नता में एकता लाने का जाषुवाने प्रयत्न किया। शुरू से "वसुधैव कुटुंबकम" यह आपका सिद्धांत रहा। यह सिद्धांत उनके हर काव्य में दृग्गोचर होता है। हरिजनों के कुल में जन्म लेकर भी कडी मेहनत और अपार अध्ययन के बल पर कीचड के कमल की तरह वे सम्मानित हुए। उच्च कोटि के तेलुगु के आधुनिक कवियों में स्थान प्राप्त कर श्री जाषुवा अपनी यशश्चंद्रिका से तेलुगु के साहित्य सदन पर चार चांद लगा चुके। आज भी अपनी साहित्यिक सेवाओं द्वारा देश की भलाई के काम में लगे हुए हैं।



दुव्वूरि रामिरेड्डी

आप हल के साथ साथ कलम भी हाथ में लेकर मधुर शब्दों का चयन कर अपने विभिन्न काव्य कुसुमों से तेलुगु साहित्य की फुलवारी को सजा कर उमर खैयाम की हाला और बाला से तेलुगु भाषा भाषियों को रिझा कर आन्ध्र साहित्य के इतिहास में शाश्वत स्थान प्राप्त करनेवाले कवि कोकिल हैं।

ग्रामवासिनि एरुगनु गैतवंबु
प्रकृति तल्लि स्तन्यंबुन ब्रबलिनाडा
बोलमुलन् विहरिंचुचु ब्रोद्दु बुच्चु
नट्टि ना मुद्दुवलपुनु नरय लेवे।

(मैं ग्राम का वासी हूँ। कविता करना नहीं जानता। प्रकृति माता का स्तन्य पान कर पला हूँ। खेतों में घूमते हुए दिन बिताता हूँ। हे कविते! ऐसे मेरे प्रेम पर ध्यान दो।)

इस प्रकार अपने बारे में स्पष्ट रूपसे प्रकट करनेवाले कविकुमार का रसार्द्र व्यथित हृदय देखकर कविता सुंदरी मुग्ध हो गयी। मृणाल सदृश अपनी बाँहों में उन्हें कस लिया। उससे कवि का हृदय सागर डोल उठा। उनका भावुक हृदय प्रकृति के कण कण में छिपे सौंदर्य के दर्शन कर उसे समझने का प्रयत्न करने लगा। लहर, तट, तृण, तरु, गिरि, नभ, किरण, और जलद सभी उस से बातें करने लगे। कवि का मन उन पर मोहित हो गया। उनसे तादात्म्य प्राप्त करने का उन्होने प्रयत्न किया। उसमें सफल भी हुए। कहने लगे—

निजगुप्त-चरित ग्रंथ के सभीपृष्ठ
बडे मोद से उलट रही प्रकृति मेरे समक्ष
प्रभात रागसे रंजित पूरबी तीरों पर
शुष्क-जीवन-तरु मेरा हुआ हरा।

तब तेलुगु के मधुर शब्दों के चयन के द्वारा अपनी अनुभूतियों को प्रकट करके ये कवि आन्ध्र में "कवि कोकिल" की उपाधि से प्रख्यात हुए। तेलुगु

की विविध आधुनिक काव्य धाराओं में से ख़ास कर उमरखैयाम की धारा के प्रवर्तक बन कर तेलुगु के आधुनिक कवियों में विशेष स्थान प्राप्त करनेवाले इस कवि का नाम है दुव्वूरि रामिरेड्डी।

खेतीबारी एक ओर तो कविता दूसरी ओर—

अपने बारे में आपने स्वयं ही निम्न प्रकार लिखा है। "स० ११ नवंबर १८९५ ई० को मेरा जन्म हुआ। मेरी स्कूली शिक्षा नहीं के बराबर है। गृह में ही मुझे शिक्षा मिली। बचपन से मैं खेती बारी करता रहा। आखिर तक मेरा वही पेशा रहा। विज्ञानशास्त्र और मेकानिकल इंजनीरिंग पर मेरा ध्यान गया। कविता की ओर आकृष्ट होने के पहले चित्रकला और मूर्ति कला का मैं अभ्यास करता रहा। उन्नीस बरस की अवस्था में मेरे जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिससे मैं कविता की ओर आकृष्ट हुआ। इसीलिये हमेशा मैं डरा करता हूँ कि जो कविता कामिनी सहज रूपसे मेरे पास आ गई वह उसी प्रकार मुझे छोडकर कहीं चली न जाय।

१९१६ से लेकर सात बरस तक काव्य निर्माण का कार्य मैं अधिक करता रहा। उस समय हर साल वर्षाऋतु में एक काव्य का प्रकाशन मैं करता था। "पानशाला" आदि कुछ रचनाओं को छोडकर बाकी सभी काव्यों का सृजन मैंने उस अवधि में ही किया। उसके बाद काव्य और काव्य के बीच काफी

समय लगने लगा। १९१७ को सर. सि. आर. रेड्डीजी ने नेल्लूर शहर के रेड्डी सम्मेलन में मुझे एक सुवर्ण पदक प्रदान किया। १९18 में विजयनगर के महाराजाने तेलुगु काव्यों की स्पर्धा चलाई। उसमें मेरे "वन कुमारी" काव्य को प्रथम पुरस्कार मिला। विशेष रूप से आयोजित दरबार में प्रथम पुरस्कार के मद्दे ५00 रुपये मुझे दिये गये।

अपनी कुछ कविताओं का अनुवाद मैंने अंग्रेजी में किया। "वाइस आफ दि रीड" के नामसे उन कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ। भारत, इंग्लैंड तथा अमेरिका की कई पत्रिकाओंने मेरी कविताओं की प्रशंसा की। डा. जेम्स, हेच. कजिन्स डि. लिट् ने विश्व की यात्रा की। उस अवसर पर भारत, जापान, अमेरिका तथा इंग्लैंड के कई केन्द्रों में मेरी अंग्रेजी की कविताओं का उन्होंने पाठ किया।

जब वे विश्व की यात्रा से वापस लौटे तब मैं मद्रास के अडयार में उनसे मिला। उनकी बातों ने मुझे अचंभे में डाल दिया। उन्होंने कहा-कि रामिरेड्डी! यह कैसी विचित्र बात है कि एक ऐर्लैंड का कवि भारतीय भाषाओं के साहित्य के बारे में इंग्लैंड में भाषण दे, उसे पत्रिकाओं में पढ कर ईजिप्ट के पिरामिडों के यहाँ भ्रमण करनेवाले एक अमेरिकन प्रोफेसर आपके "वाइस आफ दि रीड" की मांग करे। फिर उन्होंने कहा कि मेरे पास वाइस आफ दि रीड की जो प्रति थी उसे मैंने भेज दी।

"ब्रिटिश अंपैर एडिषन आफ इंग्लैंड पोइट्री" नामक कवितासंग्रह में मेरी तीन कविताएँ भी संगृहीत की गईं। विदेशी प्रकाशकों के द्वारा तेलुगु के कवि की कविताओं का स्वीकार किया जाना सचमुच आश्चर्य की ही बात मानी जा सकती है।.........मैंने फारसी, बंगला और फ्रेंच भाषाओं का भी अध्ययन किया।" वास्तुकला, फोटोग्रफी, इंजनीयरिंग और ज्योतिष के प्रति भी मेरी बडी रुचि रही।"

जिन्दगी की नयी मोड

स० २० अगस्त १९२६ ई० को अचानक रेड्डीजी का बच्चा चल बसा। उसके बाद उनकी पत्नी का भी देहांत हो गया। उनका जीवन अंधकार मय बन गया। उस हालत में उन्होंने बहुत सी कविताओं का सृजन किया। वे कहते हैं कि "वृक्ष तो उखड गया। साथ साथ बीज भी नष्ट हो गया। बची खुची आशा भी अब नहीं रही।" पत्नी-वियोग संबंधी रेड्डीजी की बहुत सी कविताएँ करुणाजनक और चित्ताकर्षक बन पडी हैं। उसके बाद उनका दूसरा विवाह हुआ। उस अवसर पर वे अंग्रेजी में लिखते हैं—

I Made another garden, yea
For My new love,
I left the dead Rose where it lay
And set the new above.

(नई प्रेयसी के लिये और एक उद्यान लगाया। मुरझाये (मरे) गुलाबको वहीं छोड कर और एक गुलाब उसकी जगह सजा दिया।")

दूसरे विवाह के बाद उन्हें शांति मिली। एक लडका भी हुआ। तब कई काव्यों का उन्होंने सृजन किया।

विभिन्न काव्य

श्री रामिरेड्डी कृत नलजारम्मा, वन कुमारी, कृषीवलुडु (किसान) जलदांगना, युवक स्वप्नमु, कडपटि वीडुकोलु (अंतिम बिदा), पलित केशमु, कवि रवि, पानशाला और गुलाबी तोटा वगैरह मौलिक तथा अनूदित काव्य, नैवेद्य, भग्न हृदय और नक्षत्रमाला, नामक कविता संग्रह अब तक प्रकाशित हो गये हैं। उपर्युक्त काव्यों की वजह से श्रीरामिरेड्डी-जीने तेलुगु के आधुनिक साहित्य जगत् में महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

श्री रामिरेड्डी कृत "नलजारम्मा" शीर्षक काव्य १९१७ में प्रकाशित हुआ। अपने पति के साथ सुख से जीवनयापन करने वाली "नलजारम्मा" के जीवन में दुःख की घडियाँ आजाती हैं। उसका पति ऐसी भूल करता है जिसके लिये मृत्यु दंड ही उचित ठहरता है। धर्म और आदर्श की रक्षा के लिये नलजारम्मा अपने पति को मौत के घाट उतर जाने को प्रोत्साहित करती है। जब पति की सचमुच मौत

हो जाती है तब वह भी सती हो जाती है। इस कथावस्तु का वर्णन आदर्शवाद का अनुसरण करते हुए रेड्डीजीने काव्य के रूप में किया है। यह काव्य काफी करुणरसात्मक और उदात्त बन पडा है। कवि काव्य के अंत में कहते हैं—

पंच भूतात्मक उस रमणी का शरीर
प्रकृति में लीन हो पवित्र बन गया।
पर उस सती की आत्मा ऐसे व्याप्त हुई
जैसे व्याप्त होता है सुयश दिगदिगत में॥

१९१८ ई० में तेलुगु काव्यों की स्पर्धा हुई। उस में विजयनगर रियासत की तरफ से "वनकुमारी" काव्य सम्मानित हुआ। नौ सर्गों में यह कथात्मक काव्य समाप्त होता है। एक बार शिकार के लिये निकलकर एक राजकुमार जंगल में भटक जाता है। एक जगह बकरियाँ चरानेवाली एक सुंदरी को देख कर उस पर मोहित हो जाता है। अचानक उस सुंदरी के पिता की मृत्यु हो जाती है। राजकुमार उस सुंदरी को गले लगा लेता है। अपने राज्य में ले जाना चाहता है। वह सुंदरी अपने पिता की मृत्यु से उदासीन हो जाती है। परन्तु कालचक्र के प्रभाव तथा राजकुमार के संसर्ग के कारण वह राजकुमार के साथ चलने को प्रस्तुत हो जाती है। इस काव्य में प्रकृति वर्णन बहुत सजीव और सरस बनपडा है। विभिन्न चित्तवृत्तियों, शृंगार के संयोग

और वियोग आदि का कविने प्रभावशाली वर्णन प्रौढ शैली में किया है।

देहातों का सजीव वर्णन

किसानों की जिन्दगी को कथावस्तु के रूप में स्वीकार कर आधुनिक युग में जो तेलुगु काव्य प्रकाशित हुए उनमें सर्वप्रथम काव्य रामिरेड्डीजी का "कृषीवलुडु" (किसान) है। इसमें किसान और उसकी पत्नी के दैनिक जीवन, रहन सहन तथा आचार विचारों के वर्णन के साथ साथ कविने ऋतुओं का भी सुन्दर चित्रण किया है। आन्ध्र प्रदेश के गाँवों और यहाँ के दृश्यों का पूरा विवरण रामिरेड्डीजी के इस काव्य में देखने को मिलता है। लेकिन आजकल पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव यहाँ के देहातों पर भी पडने लगा है। इससे कवि बडे दुखी हैं। कहते हैं—

> नव्य पाश्चात्य सभ्यत नागरिकता
> पल्लेलंदु नस्पष्टरूपमुल दालिचि
> काल सम्मानितमुलैन ग्राम पद्ध
> तुलनु विमुखत्वमुं गोंत गलुग जेसे।"

(देहातों पर नवीन पश्चिमी सभूयता का प्रभाव पडा है। इससे इन देहातों की पद्धतियाँ अस्पष्ट रूप से ही सही परिवर्तित हो रही हैं। फलस्वरूप हमारे देहातों से थोडी सी विमुखता उत्पन्न हो रही है।)

आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखपट्टणम के भूतपूर्व कुलपति स्व० सर कट्टमंचि रामलिंगारेड्डीजीने

रामिरेड्डीजी के इस काव्य की भूमिका में यों लिखा है "यह कृति परिमाण में यद्यपि छोटी है तथापि गुण में स्वयं शोभित और स्वयं पूर्ण है। इस काव्य को पढते समय कवि की गागर में सागर भरने की शक्ति पर आश्चर्य होता है। इसमें निरर्थक शब्द एक भी नहीं मिलता। शब्द कम और छोटे हैं, मगर अर्थ विस्तृत और गंभीर है। सभी दृष्टियों से यह काव्य श्लाघनीय है।"

कल्पना की चातुरी

"जलदांगना" नामक काव्य श्री रामिरेड्डीजी की प्रतिभा और कल्पना चातुरी का सुंदर उदाहरण है। कवि कल्पना लोक में मेघसुंदरी से मिलते हैं। तब मेघसुंदरी अपनी कहानी सुनाने लगती है। इस प्रकार काव्य का आरंभ होता है। सूर्य भगवान "काल" के नाम से वेश बदल कर आते हैं और जलदसुंदरी से ब्याह कर लेते हैं। पृथ्वी नामक नारी वहाँ आती है। उनके यहाँ दासी बन कर रहती है। सूर्य के साथ उसका संबंध जुडता है। वह जलदसुंदरी की सौत बन जाती है। तब जलद और पृथ्वी दोनों में झगडा होता है। जलदसुंदरी गगन में चली जाती है। वहाँ अपनी संतान के साथ रहने लगती है। पृथ्वी की भी संतान होती है। मगर अपनी संताज से माँ पृथ्वी को सुख नहीं मिलता। अपनी संतान को आपस में एक दूसरे को मारते मरते देखकर उदासीन बनती है।

इतने में "कमल" नामक और एक सौत का भी पता जलद को लगता है। अपने पति की स्वेच्छाचारिता से हताश होकर आत्महत्या करने हिमगिरि के यहाँ चली जाती है। वहाँ की प्राकृतिक सुंदरता पर मुगध होकर वहाँ के निर्मल जल में गोते लगाती है। तुरन्त वह थर थर कांपने लगती है। धीरे धीरे उसका सारा शरीर बरफ के पत्थर के रूप में बदल जाता है। तब उसकी दशा देख कर सूर्य भगवान तरस खाते हैं। उसके पास पहुँचते हैं। सेवा करके अपनी प्रेयसी की रक्षा करते हैं। पृथ्वी भी सौतेली ईर्ष्या भूल कर वहाँ आती है। जलदसुंदरी को अपनी गोद में जगह देकर उसकी रक्षा करती है। वहाँ कुछ दिन रह कर फिर भाप का रूप धारण कर जलदसुंदरी आसमान में चली जाती है। श्यामल कोमल अंबुद के रूप में वहाँ विहार करती रहती है। तब कल्पना लोक से कवि यथार्थ जगत् में पहुँच जाते हैं। काव्य समाप्त हो जाता है।

श्री रामिरेड्डी कृत "युवक स्वप्न" एक प्रगति वादी लघुकाव्य है। उक्त काव्य के द्वारा कवि अमीर-गरीब और ऊँच-नीच आदि भेदभावों का खंडन करते हैं। आर्थिक समानता का संदेश देते हैं। कडपटि वीड्कोलु (अंतिम बिदा) शीर्षक अपने दुःखांत लघुकाव्य और 'मीराबाई' नामक अपने दुःखांत नाटक के बारे में श्री रामिरेड्डीजीने ता. ४ मार्च १९२९ की अपनी डायरी में यों लिखा है—

"मीराबाई" नामक दुःखांत नाटक की मैंने रचना की। मेरी पत्नी का देहांत हो गया। कडपटि वीडुकोलु (अंतिमबिदा) नामक भग्न प्रेम से संबंधित इतिवृत्तात्मक काव्य की मैंने रचना की। मेरा प्रेम भी भग्न हो गया। ऐसा लगता है कि मेरे दुःखांत ग्रंथ ही मेरे दुःखमय जीवन के परिचायक हैं। सोचता हूँ कि अब सुखांत ग्रंथों की रचना करूँ, ताकि मेरा भी जीवन सुखी बने।"

पूर्व और पश्चिम का समन्वय

सामाजिक अंध विश्वासों, धार्मिक रीतिरिवाजों और भगवान के नाम पर होनेवाले अत्याचारों का खंडन करते हुए श्री रामिरेड्डीजीने "पलित केशमु" नामक काव्य की रचना की। पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित इस युग में पुरानी रीतियों को त्यागने और नये संसार में पदार्पण करने का संदेश अपने इस काव्य के द्वारा रेड्डीजी देते हैं।

जलचर, स्थलचर और नभचर आदि से विलसित इस जड चेतनमय सृष्टि के बारे में काफी मतभेद पाये जाते हैं। प्राचीन काल के भारतीय मनीषियों तथा आजकल के वैज्ञानिकों के विचारों में सृष्टि के सृजन के संबध में बडा अंतर है। सृष्टि संबंधी इसी विभिन्न विचार धाराओं का स्पष्टीकरण कथोपकथन के रूप में अपने "कवि-रवि" नामक काव्य में कविने

किया है। तेलुगु के काव्य जगत् में इस प्रकार का यही प्रथम काव्य है।

श्री रामिरेड्डीजीने १९१६ से १९१७ तक दर्जनों कविताआँ की रचना की थी। उनमें से "रसिकजनानंद, अहल्यानुराग, आदि प्राचीन परंपरा संबंधी कविताएँ, ऋतुसंहार और पुष्पबाण-विलास नामक अनूदित कविताएँ, सिंह प्रबोध, भारतमातृ प्रबोध और देशमातृस्तव आदि देशभक्ति संबंधी कविताएँ "प्रथम कविताएँ" शीर्षक ग्रंथ में संगृहीत की गईं। इसके अलावा रेड्डीजी की विभिन्न ८० कविताएँ "नैवेद्य, नक्षत्रमाला और भग्नहृदय शीर्षक तीन ग्रंथों में संगृहीत की गईं। ये सभी कविताएँ प्राय: देशभक्ति, प्रणय, प्रकृतिप्रेम, विश्वप्रेम, और व्यक्ति प्रशंसा आदि से संबंधित हैं।

हाला-बाला-प्याला—

तेलुगु के आधुनिक काव्य साहित्य के क्षेत्र में यद्यपि रामरेड्डीजी के उपर्युक्त सभी काव्यों का बडा महत्व है तथापि उन्हें अधिक यश प्रदान करनेवाले काव्यों में "पानशाला, गुलाबीतोटा, (गुलिस्ताँ) और पंडुतोटा (बोस्ताँ) नामक काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यद्यपि आधुनिक तेलुगु काव्य जगत् में उमरखैयाम की धारा का कई अन्य कवियोंने भी अनुकरण किया है तथापि इस दिशा में श्री रामिरेड्डीजी काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। रेड्डीजी अपनी

पत्नी के देहांत से जब बिल्कुल हताश हो गये थे तब कालिदास कृत मेघ संदेश और उमरखैयाम की रुबाइयोंने उन्हें पुनर्जीवन प्रदान किया था। खैयाम की ६९२ रुबाइयों का सारांश ग्रहण कर श्री रामिरेड्डीजीने मौलिक रूपसे उसे प्रामाणिक तेलुगु में काव्य का रूप दिया। तेलुगु के मुहावरों का प्रयोग करके हाला, बाला और प्याले को तेलुगु के छंदों में तेलुगु भाषा-भाषियों तक पहुँचाने का श्रीरेड्डीजीने सफल प्रयास किया। तेलुगु भाषाभाषियोंने आपके प्रयास का अभिनन्दन किया। स्वयं रेड्डीजीने अपने इस प्रयत्न के बारे में यों लिखा है—

तेलुगुं दोटल बच्चबील्ल ननुरक्ति बानशाला प्रति
ष्ठलु गाविंचि खयामु काव्यरस भांडंबुल गुलाबीलुबु
लबुलि पिट्टलू मधुपान पात्रिकलु सोंपुलगुलकु साखीयु भू
तल नाकं बोनरिंप निल्पि रसिकांध्र प्रीति गाविंचितिन्।"

(तेलुगु के बगीचों और हरे भरे चरागाहों में बडे प्रेम से पानशाला की मैंने स्थापना की है। उसमें खैयाम के काव्यरस भांड, गुलाब के फूल, बुलबुल, मधु के प्याले, इठलाती बलखाती साकी को मैंने भूतल को नाक बनाने के लिये प्रस्तुत किया है। रसज्ञ आन्ध्र जनता के हृदय मेरे इस प्रयास से झूम उठे हैं।)

खैयाम को संबोधित कर श्री रामिरेड्डीजी आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—"हे खैयाम! फारसी भाषा से भी श्रवणसुखद और मधुर हमारी तेलुगु भाषा में तुम्हारे भावों को मैंने मूर्त किया है। मेरे इस काव्य के द्वारा तुम्हारा नाम समूचे आन्ध्र प्रदेश में अमर हो जाएगा।"

सचमुच रामिरेड्डीजी के काव्य से खैयाम का नाम तेलुगु भाषा भाषियों के बीच अमर हो गया।

सादी कृत गुलिस्ताँ का अनुवाद रेड्डीजीने तेलुगु में 'गुलाबीतोटा' के नाम से किया। करीब करीब ३५० पृष्ठों का यह बृहद् काव्य है। इसके अलावा सादी कृत "बोस्ताँ" का भी अनुवाद "पंड्लतोटा" (फलों का बगीचा) के नाम से रेड्डीजीने तेलुगु में किया। यही रेड्डीजी का अंतिम काव्य था। यद्यपि यह काव्य अधूरा ही रह गया तथापि अनूदित ग्रंथ ही ३०० पृष्ठों का बन गया है। इस प्रकार रेड्डीजी ने तेलुगु साहित्य जगत् में खैयाम और सादी तथा उनके काव्यों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

विविध गद्य ग्रन्थ

श्री रेड्डीजी ने पद्य के अलावा गद्य ग्रंथों की भी रचना करके तेलुगु के गद्य साहित्य को संपन्न बनाया। "सीतावनवास, कुंभ राणा, माधव विजय और मीराबाई" रेड्डीजी के नाटक हैं। मीराबाई एक दुःखांत नाटक है। रंगमंच पर यह नाटक प्रदर्शित किया गया। कई आलोचनाओं का उसे सामना भी करना पडा। रेड्डीजी के साहित्यिक निबंधों में "कवि कवित्वावतरण, कवित्वतत्व, काव्य जीवन, कवित्व-शिल्प, अनुकरण, कवित्व प्रयोजन, काव्य और नीति, मर्मकवित्व (रहस्यवाद), नाटक, इतिहास और अलंकार तत्व आदि उल्लेखनीय हैं। आधुनिक

तेलुगु साहित्य संबंधी रेड्डीजी के कई आलोचनात्मक लेखों का तेलुगु समालोचना साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। रेड्डीजी की डायरियाँ इसी बीच प्रकाशित की गईं। साथ साथ मित्रों को उनके द्वारा लिखे गये पत्र भी प्रकाशित किये गये। उनकी डायरियों तथा उनके पत्रों से तेलुगु साहित्य और उस की विभिन्न प्रवृत्तियों के बारे में कई अमूल्य बातों का पता लगता है।

कलापक्ष

जहाँ तक भावयक्ष की बात है वहाँ तक श्री रामिरेड्डीजीने अपने काव्यों में नवीन प्रवृत्तियों और विचारों को स्थान दिया। मगर कलापक्ष के बारे में उन्होंने ज्यादातर प्राचीन तेलुगु साहित्यिक परंपरा का ही अनुसरण किया। तेलुगु भाषा की दो शैलियाँ आन्ध्रप्रांत में प्रचलित रहीं। एक तो ग्रांथिक कहलायी और दूसरी व्यावहारिक या ग्राम्य कहलायी। इस के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए श्री रामिरेड्डीजी लिखते हैं कि "मैं ग्रांथिक या व्यावहारिक शैलियों में से किसी एक का पक्षपाती नहीं हूँ। मैं किसी भी शैली का तिरस्कार नहीं करता। व्यावहारिक भाषा का भी हमेशा वाङ्मय में अपना विशेष महत्व रहता है। जीवित भाषा किसी प्रकार की चहारदिवारी की परवाह नहीं करती।"



देवुलपल्लि
वेंकट कृष्ण शास्त्री

आप भूषण और दूषण से विचलित न हो कर अपनी कोमलकांत पदावली से युक्त छायावादी कविताओं के द्वारा सहृदय पाठकों को आकर्षित कर तेलुगु के समुन्नत साहित्य में छायावाद को आदरणीय स्थान दे कर अपनी विभिन्न अनुपम सेवाओं के द्वारा तेलुगु साहित्य सदन की श्रीवृद्धि में हाथ बँटानेवाले आन्ध्र के आधुनिक 'शेल्ली' हैं।

अंग्रेज़ी तथा बंगला साहित्य के प्रभाव से तेलुगु साहित्य में नयी प्रवृतियों का सृजन हुआ। प्रसिद्ध अंग्रेज़ साहित्यिक शेल्ली और कीटस तथा बँगला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि की कविताओं का प्रभाव शिक्षित युवकों के हृदय पर पड़ा। फलस्वरूप तेलुगु साहित्य में स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद तथा छायावाद का चलन प्रारंभ हुआ। तेलुगु साहित्य में नवीन प्रयोगों को प्रोत्साहित करने के लिए "साहिती समिति और नव्य साहित्य परिषद्" आदि साहित्यिक समितियों की स्थापना हुई। गीति काव्यों का सृजन होने लगा। हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद व छायावाद के नाम से जो प्रवृत्ति चल पड़ी वह तेलुगु साहित्य में "भाव कविता" के नाम से व्यवहृत हुई। अंग्रेज़ी के लिरिक (Lyric) शब्द के लिए तेलुगु में 'भावगीत' शब्द प्रचलित हुआ। ऐसी कविता "भाव कविता" कहलाई। इस प्रकार की कविता करने वाले 'भाव कवि' कहलाये। तेलुगु के आधुनिक काव्य साहित्य की इस नयी शैली के प्रवर्तक कवियों में श्री देवुलपल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्रीजी का नाम उल्लेखनीय है।

आन्ध्र के शेल्ली—

एक समय ऐसा भी था कि तेलुगु के आधुनिक काव्य साहित्य में भाव कविता की बड़ी धूम रही। साथ साथ उस का काफ़ी विरोध भी हुआ। उस

विरोधी तूफ़ान का सामना करके अपनी कोमलकांत पदावली से युक्त मुक्तक गीतों के द्वारा तेलुगु साहित्य जगत् में कृष्ण शास्त्रीजी ने अपने लिए महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आन्ध्र के भिन्न-भिन्न केन्द्रों में जा जाकर अपने प्रभावशाली भाषणों तथा कविता गान द्वारा नव्य कविता का ख़ूब प्रचार किया। भूषण और दूषण से विचलित न होकर अपने पथ पर आप अग्रसर रहे। कई कवियों के पथ प्रदर्शक बने। इसी लिए भाव कविता के प्रतिनिधि कवि के रूप में कृष्ण शास्त्रीजी को मान्यता प्राप्त हुई।

स्वच्छ पोशाक, सुन्दर वदन, सुडौल शरीर, हवा में लहराते हुए काले-काले घुँघराले लंबे बाल, सदा हँसता हुआ चेहरा, अपरिचितों को भी अपनी ओर आकर्षित करने वाला मधुर संभाषण और अगाध पांडित्य सब ने मिल कर तेलुगु के उच्चकोटि के आधुनिक कवियों की श्रेणी में कृष्ण शास्त्रीजी को पहुँचा दिया। तेलुगु साहित्य के आप 'शेल्ली' कहलाये। आपकी कविताओं की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(१) व्यक्तिवाद या आत्माभिव्यंजना।
(२) प्रकृति भावना।
(३) सौन्दर्य भावना।
(४) पुरातन के प्रति प्रेम।
(५) प्रणय, आकांक्षा, विरह और दुःख।
(६) देश प्रेम।

(७) छन्दों के नियमों का उल्लंघन, नये छन्दों का निर्माण।

(८) प्रतीक पद्धति।

बचपन से ही कविता—

१ नवम्बर १८९७ ई० को आन्ध्र प्रदेश के पूरब गोदावरी जिले के पिठापुरम नामक शहर में श्री कृष्ण शास्त्रीजी का जन्म हुआ। उनके पिता और ताऊ दोनों तेलुगु तथा संस्कृत के पंडित एवं कवि भी थे। वे पिठापुरम के जमीन्दार के आस्थान कवीश्वर थे। उनका घर हमेशा पंडितों और कवियों से भरा रहता था। इसलिए बचपन से ही उद्भट कवियों का अच्छा सांगत्य कृष्ण शास्त्रीजी को प्राप्त हुआ। नौ वर्ष की अवस्था में ही आप आशु कविता करने लगे। हाइस्कूल की परीक्षा पास करके काकिनाड़ा शहर के कालेज़ में भर्ती हो गये। वहाँ आन्ध्र प्रान्त के प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी और प्रकांड पंडित स्व. रघुपति वेंकटरत्नम नायुडु जैसे आचार्य की सेवा में रहकर शिक्षा पाने का उनको अवसर मिला। अंग्रेज़ी, फ्रेन्च और सूफी साहित्य का आपने गहरा अध्ययन किया। इंटर पास करके विजयनगरम के कालेज में भर्ती हो गये। वहाँ बी. ए. पास करके काकिनाड़ा वापस चले गये। वहाँ ईसाइयों के हाइस्कूल में अध्यापन का काम करने लगे। मगर कई दिनों तक वे वह नौकरी नहीं कर सके। उनका कविहृदय साहित्य की ओर ही आकृष्ट

होता गया। अथक परिश्रम के कारण वे बीमार पड़ गये। स्वास्थ्य लाभ के लिए बल्लारी की यात्रा की। रेल चलने लगी। रास्ते में नल्लमला जंगल की प्राकृतिक शोभा ने उनके कविहृदय को आनन्द से विभोर कर दिया। उनकी लेखनी चल पड़ी। कवि गा उठे—

आकुलो नाकु नै पूवुलो बूवुनै
कोम्मलो गोम्मनै नुनु लेतरेम्मनै
ई यडवि दागिपोना
एन्दैन
निचटने यागिपोना!

(पत्ते में पत्ता बनूँ, फूल में फूल बनूँ,
नव पल्लव में पल्लव बन जाऊँ,
इस जंगल में छिप जाऊँ,
जैसे भी हो यहीं कही पर रुक जाऊँ।)।

गलगलनि वीचु चिरुगालिलो गेरटमै
जलजलनि पारु सेल पाटलो देटनै
ईयडवि दागिपोना
एटलैन
निचटने यागिपोना;

(सन-सन करते समीर की लघु लहर बनूँ,
झर-झर झरते झरने का मैं तान बनूँ,
इस जंगल में छिप जाऊँ,
जैसे भी हो, यही कही पर रुक जाऊँ।)

विविध काव्य

१९२० की यह घटना है। तभी कृष्ण शास्त्रीजी के प्रसिद्ध गीति काव्य 'कृष्ण पक्ष' का आरम्भ हुआ। स्वास्थ्य लाभ कर बल्लारी से वे वापस आ गये। कुछ दिनों तक आराम लेने के लिए गोदावरी नदी के तीर पर कोव्वूरु नामक शहर में रहे। वहीं पर 'कृष्ण पक्ष' काव्य लगभग पूरा हो गया। यह साठ भिन्न-भिन्न कविताओं का संग्रह है। भावगीतों का यह प्रतिनिधि गीति काव्य है। करुण रस प्रधान गीतों से युक्त होने के कारण 'कृष्णपक्ष' शीर्षक रखा गया। इस काव्य ने तेलुगु के आधुनिक काव्य जगत् में तहलका मचा दिया। स्वस्थ होकर जब वे काकिनाडा पहुँचे तब उनकी पत्नी यक्ष्मा से पीड़ित हो गयी। उनके दुःख की सीमा न रही। पत्नी को मृत्यु से बचाने के उनके सभी प्रयत्न निष्फल हो गये। १९२२ ई० में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। उनका मन कुंठित हो गया। धीरे-धीरे वे अपने मित्रों के सांगत्य में रह कर दुःख भुलाने की चेष्टा करने लगे। इसी समय १९२२ ई० के लगभग कन्नीरु (आँसू) शीर्षक आपका गीत संग्रह प्रकाशित हुआ। इन्हीं दिनों शास्त्रीजी का दूसरा विवाह एक काँग्रेसी परिवार की लड़की से हो गया। उस समय से आपने अपना सारा समय साहित्यिक कार्यों में बिताना प्रारंभ किया। व्यावहारिक भाषा शैली का आपने समर्थन किया। पाँच छः वर्षों तक आपने आन्ध्र के कई शहरों में नव्य

कविता का ख़ूब प्रचार किया। नव कवियों तथा लेखकों को नयी स्फूर्ति प्रदान की। १९२६ ई० के लगभग "प्रणय पत्रों की कथा" शीर्षक आपका गद्य ग्रन्थ पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। "प्रवास" शीर्षक गीति-काव्य का भी सृजन इन्हीं दिनों हुआ। वे पिठापुरम वापस आ गये। वहाँ के हरिजन विद्यार्थी गृह से आपका सम्बन्ध जुड़ गया। उन दिनों ब्राह्मणों के द्वारा बहिष्कृत भी किये गमे। फिर भी वे अपने निश्चय पर अटल रहे। इन्हीं दिनों आपके कई प्रगतिवादी गीत प्रचलित हो गये। इस प्रकार एक ओर देश हित के कामों में भाग लेते रहे और दूसरी ओर "ऊर्वशी" नामक गीति-काव्य की रचना की जो १९२८ ई० में प्रकाशित हुआ। १९२८ ई० में कृष्ण शास्त्री के आप्त मित्र श्री मोक्कपाटि राममूर्तिजी ने मद्रास में आत्महत्या कर ली। इससे शास्त्रीजी को बड़ा आघात-सा लगा। "प्रवास" शीर्षक गीति-काव्य उसी राममूर्ति के नाम उन्होंने समर्पित किया।

रवीन्द्र का प्रभाव

१९२९ ई० में उत्तर भारत की आपने यात्रा की। विश्व-भारती के दर्शन किये। रवीन्द्रबाबू के सम्पर्क में आये। १९30 ई० तक पिठापुरम पहुँचे। वेश्याओं की सुधार के प्रयत्नों में लग गये। एक सुधार संघ की स्थापना भी की। कई वेश्याओंके विवाह भी कराये। पिठापुरम के जमींदार ने काकिनाड़ा के कालेज में कृष्णशास्त्रीजी को

लेक्चरर नियुक्त किया। १९४१ ई० तक वहीं अध्यापन का काम करते रहे। उस समय कालेज के विद्यार्थियों में नयी चेतना और स्फूर्ति आ गयी। यहीं पर "आकलि" (भूख) शीर्षक प्रगतिशील गीत-संग्रह की आपने रचना की। १९४२ ई० में कृष्ण शास्त्रीजी नव्य साहित्य परिषद् के अध्यक्ष चुने गये। १९४७ ई० में आन्ध्र अभ्युदय रचयितल संघ (आन्ध्र प्रगतिशील लेखक संघ) के तृतीत वार्षिक सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये।

फिल्मी जगत् में पदार्पण

१९४६ ई० से मद्रास की फिल्मी दुनिया में गीत लेखक के रूप में कृष्ण शास्त्रीजी ने क़दम रखा। तेलुगु के फिल्मी गीतों का आपके आगमन से साहित्यिक महत्व बढ़ गया। १९४९ से आल इंडिया रेडियो की नौकरी उन्होंने स्वीकार की। रेडियो के लिए शर्मिष्ठा, विद्यापति, गुह, धनुर्दास, दक्ष-यज्ञ, जमदग्नि, नरबलि, सुप्रिया तथा आँडाल का परिणय आदि गीत रूपकों की तेलुगु में आपने रचना की। उनका प्रसार मद्रास, विजयवाड़ा तथा हैदराबाद के रेडियो केन्द्रों से कई बार किया जा चुका है।

दुःखवाद

कृष्ण शास्त्रीजी की कविता मूलतः आत्माश्रयी है। उनका हृदय विरह-वेदना से संतप्त है। वे स्वेच्छा

गान से संसार को भर देना चाहते हैं। चाहे जान ही क्यों न चली जाय, मगर स्वेच्छा विहार से मुँह मोड़ना वे नहीं चाहते। संसार के कुटिल पन्नग जैसे लोगों को देखकर कवि कहते हैं—

......चेवियोग्गि विनुडु
एनु स्वेच्छा कुमारुड नेनु गगन
मोहन विनील जलधर मूर्ति नेनु
प्रलय झंझा प्रभंजन स्वामि नेनु"

(कान लगा कर सुनो! मैं स्वेच्छा चारी कुमार हूँ। मैं गगन पथ विहारी विहंग हूँ। मैं मोहक विनील जलधर हूँ। प्रलयंकर झंझा प्रभंजन हूँ।)

"क्रौर्य कौटिल्य कल्पित कठिन दास्य
शृंखलमुलु तमंतने चेदरिपोव
गगन तलमु मार्म्रोगग गंठमेत्ति
जगमुनिंड स्वेच्छागान झरुल निंतु।"

(क्रूर, कुटिल कल्पित कठोर दास्य श्रृंखलाएँ जब तक टूट कर स्वयं ही गिर न जाँय, तब तक जी खोल कर स्वतन्त्रता के गीत ऐसे गाऊँगा जिससे गगन प्रतिध्वनित हो उठे।)

फिर कहते हैं—

नव्विपोदुरु गाक नाकेटि सिग्गु
ना इच्छये गाक नाकेटि वेरुपु
कल विहंगम पक्षमुल देलियाडि
तारकामणुललो दारनै मेरसि
माय मय्येदनु ना मधुर गानमुन
नव्विपोदुरु गाक नाकेटि सिग्गु।

(जग चाहे मुझ पर हँसे, पर मुझे शरम क्यों हो? मेरी इच्छा ही मेरे लिए सब कुछ है। किसी से मै क्यों डरूँ? सुन्दर विहंग के पंखों के बल उड जाऊँगा। ताराओं में तारा बन मैं चमकूँगा। निज मधुर गान में अदृश्य हो जाऊँगा। जग चाहे मुझ पर हँसे, मुझे शरम क्यों हो?)

"पक्षि नय्येद चिन्नि ऋक्ष मय्येदनु
मधुप मय्येद चंदमाम नय्येदनु
मेघ मय्येद वित मेरुपु नय्येदनु
अलरु नय्येद जिगुरुटाकु नय्येदनु"

(मैं पक्षी बन जाऊँगा। छोटा नक्षत्र बन जाऊँगा। मधुप बनूँगा। चंदमामा बनूंगा। मेघ बनूंगा। विचित्र बिजली बनूंगा। फूल बनूंगा। नवपल्लव बनूंगा।)

तेलिमब्बु तेरचाटु चेलि चंदमामा
जतगूडि दोबूचि सरसाल नाडि
दिगिरानु दिगिरानु दिविनुंडि भुविकि
नव्विपोदुरु गाक नाकेटि सिग्गु?

(नये बादल की चादर काढ़े सखा चाँद से हिल-मिल कर मैं आँख मिचौनी खेलूँगा। छेड़-छाड़ में रत हो जाऊँगा। गगन मण्डल से पृथ्वी तल पर मैं उतर कर नहीं आऊँगा। नहीं आऊँगा। लोग हँसें, पर मुझे शरम क्यों हो?)

कवि अपना परिचय यों देते हैं:—

नानिवासम्मु तोलुत गंधर्वलोक
मधुर सुषमा सुधांगाना मंजुवाटि,
एनोक विषाद गीतिका, नेनु निदुर
वेन्नेलल दारि नोकरेयि वेडलिपोति
नोकविपंचीविरह कंठमोरसि येगसि।"

(पहले मेरा निवास स्थल गंधर्वलोक के मधुर-सुषमा-सुधांगना की मंजुवाटी थी। मैं एक वियोग गीत हूँ। एक दिन रात को ज्योत्स्नास्नात मार्ग में विपंची विरही के कंठ से टकरा कर उड-उड कर मैं निकल पड़ा।)

"एनोक वियोग शालिनी हृदयराग
वेदनारेख, नाकलिवेगु नामे
अंगुली किसलय चंचलांचलमुल
विडिवडि अनंतविश्वान बडिति नाड्डु,
अद्दिये मोदलेनु सकल दिशांतराल
मेल्लेडल नेंदुको पर्वुलेत्तिपोव।"

(मैं एक वियोगिनी के हृदयराग की वेदना हूँ। विरहतप्त उसकी उंगलियों में उलझे चंचल अंचल से छूट कर एक दिन अनन्त विश्व में आ गया। तब से मैं दिगदिगन्तों में भटक रहा हूँ। मालूम नहीं क्यों?)

"आ सगय मादिगा नप्सरोंगनानु
रागवीधुल, किन्नरी रम्यकंठ
सीमलो, श्रावणांबुदाश्लेषपालि
तारकालोक पंक्तुल, मारुतोरु
पथमुल, तिरुगाड्डुचु पवलुरेलु
कन्नुमोड्डुपु मेयिवलपु गानिलेक।"

(तब से अप्सराओं के अनुराग की वीथियों में, किन्नरियों के रम्य कण्ठों में, सावन के मेघों के आलिंगन में, तारों की आलोकमयी पंक्तियों में, मारुत के सबल पंखों पर चढ़ दिन-रात भटक रहा हूँ। मेरी पलक नहीं लगती। मेरी देह विश्राम नहीं पाती।)

" इदि मुगियबोनि ए यर्थ मेरुगरानि
वेसटेलेनि वेर्रि यन्वेषणम्मु
ई प्रवासयात्रारति निटुले नेनु
कदलिपोवुदु नाशावकाशमुलुनु
ओक्क निट्टूर्पु वोलिकि ओक्कमौन
बाष्प कणमटु ओक गाढ वांछ पगिदि।"

(मेरा यह अन्वेषण पागल का-सा है। इसका अन्त नहीं है। इसका कोई अर्थ भी नहीं है। इस प्रवास यात्रा की रति में लीन होकर चला जा रहा हूँ। आशामय आकाश में साँस के समान, एक मौन अश्रुकण सा, एक बलवती इच्छा की भाँति चला जा रहा हूँ।)

प्रेम और विरह

कवि प्रेमी जीव हैं। प्रेम की गलियों में नित्य विहार किया करते हैं। निर्मल प्रेम साम्राज्य के अधीश्वर बन कर लौकिक भोग्य वस्तुओं को ठुकरा देते हैं। प्रेयसी से कहते हैं—

हेम मणि रत्न गणमेल लेम मनकु !
सान्ध्य समय सुवर्णितच्छाय लरसि
तारका शोभितांतर तलमु गाँचि
चिंतलनु बायुदमु चेयि जेयि गलिपि।"

(हे प्रिये! हमें हेम मणि रत्न समूहों की जरूरत नहीं। सन्ध्या समय की सुनहली छायाओं में तारों से विलसित नीलाम्बर को निहारते हुए हाथ से हाथ मिलाये सब चिन्ताएँ भूल जावें।)

कवि अपनी प्रेयसी का वर्णन "ऊर्वशी" शीर्षक कविता में निम्न प्रकार करते हैं—

नीवु तोलिपोद्दु नुनुमंचु तीव सोनवु
नीवु वर्षा शरत्तुल निबिड संग
ममुन बोडमिन सन्ध्या कुमारि वीवु
तिमिर निश्वासमुलु मासि कुमुलु शर्व
री वियोग कपोल पालिकवु नीवे
नीवे निट्टूर्पु, नीवे कन्नीरु विश्व
वेदनामूल्य भाग्यमीवे निजम्मु
नेगलम्मार पाडुकोनिन यखात
शोकगीतम्मुलं दीवे शोकगीतिवि-ऊर्वशी-प्रेयसी।"

(हे ऊर्वशी! हे प्रेयसी! तुम रात की अन्तिम प्रहर की लताच्युत मृदुल ओस की धार हो। वर्षा तथा शरद ऋतुओं के निबिड संगम में उदित सन्ध्या कुमारी हो। तिमिर निश्वासों से व्यथित वियोगिनशर्वरी की कपोल पाली हो। तुम आह हो! तुम आँसू हो! विश्व-वेदना के अमूल्य भाग्य हो। सच कहता हूँ। जी भर कर, कंठ फाड़-फाड़ कर मैं जो शोक गीत गाया करता हूँ, उनमें से तुम एक हो। तुम्ही मेरे शोक गीत हो।)

सुमन सुगंध फैलाता है। चाँद-चाँदनी बिखेरता है। सलिल बहता है। कोकिल गाती है। मयूर नाचता है। ये सब प्राकृतिक कार्य हैं। इनसे कवि प्रेम करते हैं। उनका प्रेम निर्मल है। अनंत है। संसार उनके विरुद्ध उंगली उठाता है। परन्तु वे उसकी परवाह नहीं करते। प्रेम का मार्ग नहीं छोड़ते।

मगर प्रेयसी उनसे बिछुड़ जाती है। कवि विलाप करते हैं—

स्वच्छ मैनट्टि प्रणयंपु सलिल धार
बोसि पेंचुकोन्नाड स्नेहंपु बूलतीव
तावुलनु जिम्मु नलरुल दाल्पकुँड
गालि ताकुन नेलपै ब्राले नकटा।

(मैंने स्वच्छ प्रणय के सलिल से सीच-सींच कर एक पुष्पलता को जतन से लगाया। सुगन्ध फैलाने वाले फूलों से विलसित हुए बिना ही हाय, वह लता हवा के तीव्र झोंके से पृथ्वी पर गिर गयी।)

एटुल दापरिंचेनो येमो यंत
नाकु संदुल तोवल नल्ल दिगिये
नोक्क क्रूरार्क किरणम्मु उर्विब्रालि
ना गुलाबि सोलि तूलि नन्नुवीडे।"

(अचानक कहीं से एक क्रूरार्क किरण पत्तों के रास्तों से होती हुई आ गयी। मेरे गुलाब को उसने सुखा दिया। गुलाब मुझसे बिछुड़ गया।)

इससे कवि का जीवन दूभर हो गया। उनके दुःख की सीमा नहीं रही। वे गा उठे—

हृदय नालमु तेगिये ना हृदय धनमु
तोलगि पोयेनु, जीवित फलमु सृक्कि-
नेल बडे, निंक जीविंपनेल सखुड!
वलपे विषमैन तुच्छ जीवनमु विषमु।"

(मेरा हृदय टूट गया। मेरा हृदय-धन लुट गया।

जीवन-फल गिर गया। अब मैं कैसे जीवित रहूँ! हे मित्र, मेरा प्रेम विष बन गया। मेरा तुच्छ जीवन विषाक्त हो गया।)

नाहृदयमंदु विश्व वीणा गलम्मु
भोरु भोरुन ईनाडु म्रोतवेट्टु।

(मेरे हृदय में विश्व वीणा गला फाड-फाड़ कर जोर जोर से आज रोदन कर रही है।)

मीरु मनसारगा नेडवनीरु नन्नु
नन्नु विडुवुडु ओकसारि नन्नु विडिचि
नंत नेकांत यवनिकाभ्यंतरमुन
वेक्कि वेक्कि रोदिंतुनु विसुवुलेक
विरति लेक दुर्भर शोक विषम गीतु
लेडिचि वैतु नेलुंगेत्तियेडिचि वैतु।

(जी भर कर मुझे तुम रोने नहीं देते। मुझे छोड़ दो। मैं यवनिका के अन्दर सिसक-सिसक कर रोऊँगा। विरति के बिना दुर्भर विषम शोक गीत गाऊँगा। गला फाड़-फाड़ कर रो उठूंगा।)

इस प्रकार रो-रो कर फिर कवि कहते हैं—

चिवुरिंपदो चैत्रशुभोत्सव
विभात कल्याणमु
ई दरिद्र हेमंतमुन!

(इस दरिद्र हेमंत में क्या कल्याणमय चैत्र का शुभोत्सव फिर अंकुरित होगा?)

धीरे-धीरे कवि दुःख को प्यार करने लगते हैं। संसार से कहते हैं कि 'मुझे देख कर कोई भी तरस न खावे। मैं अनन्त शोकाकुल हो कर भी तिमिरलोक

का पति हूँ।' आगे चल कर वेदना-बाला कवि की सहचरी बन जाती है। कवि पल भर के लिए भी उससे बिछुड़ना नहीं चाहते। इसलिए कहते हैं कि वेदना मेरी सह धर्मचारिणी है। वह मधुर मूर्ति है। मेरी प्रिय सखी है। उसके वियोग से मेरी जान ही निकल जायगी। इस प्रकार कृष्ण शास्त्रीजी दुःख और वेदना का हृदयग्राही वर्णन करते हैं। अन्त में उनका दुःखी दिल भगवान के अन्वेषण में लग जाता है। उनके प्रियतम परम करुणामय बन जाते हैं। कवि परमात्मा के चरणों में भेंट चढ़ाना चाहते हैं। मगर कैसी भेंट? कहते हैं—

"कलुष दुर्दांत पंक संकलित कुहर
मुल जनिंचु मदीयाश्रु मलिन धार
स्वामि, भवदीय पाद देशमुन पारि
परम पावन जान्हवी प्रतिभ गांचु"

(हे स्वामी! कलुष दुर्दांत पंक संकलित कुहरों में से उत्पन्न होने वाले मेरे अश्रुओं की मलिन धारा तेरे चरण तल में प्रवाहित होकर परम पावन जान्हवी की प्रतिभा प्राप्त करे।)

प्रतीक पद्धति

श्री कृष्ण शास्त्रीजी ने अपनी कविता के अनुकूल एक नयी लाक्षणिक शैली का सृजन किया। कोमलकांत पदावली आपकी बड़ी विशेषता है। आपके गीतों में एक भी अनावश्यक शब्द दिखाई नहीं देता।

भाव और भाषा का सुन्दर समन्वय आपके गीतों में दीखता है। भाव को प्रस्फुटित करने वाले छंदों का आपने प्रयोग किया। नये छंदों का भी आपने निर्माण किया। शब्द चित्र प्रस्तुत करने में आप अद्वितीय हैं। हिन्दी के छायावादी तथा रहस्यवादी कवियों की भांति आपने प्रतीक पद्धति को अपनाया। तबसे ऐसे नये शब्दों की बड़ी सूची तेलुगु में बन गयी है।

श्री कृष्ण शास्त्रीजी ने विद्वत् कुटुम्ब में जन्म लेकर, उत्तम संस्कार तथा सम्प्रदायों को आत्मसात कर लिया। उन्होंने नयी संस्कृति तथा विचारधारा को अपनाया। राजा राममोहनराय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा प्रतिपादित विश्वजनीनता को हृदयंगम करके विश्व प्रेम का गान किया। प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृतियों का समन्वय करके अपनी कविताओं में उसका शिवरूप प्रस्तुत किया। प्रगतिवादी रचनाओं के द्वारा सुन्दर और शांतिमय जग की कल्पना में योग दिया। आन्ध्र जननी और भारत जननी का गुणगान किया। विश्वराज्य के शुभ संकल्प में स्वर मिलाया। अपनी विभिन्न और प्रभावशाली रचनाओं के द्वारा आन्ध्र के आधुनिक कवियों में अद्वितीय स्थान प्राप्त कर लिया। शास्त्रीजी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत के साथ यह लेख हम समाप्त करते हैं जिसका अर्थ स्वयं स्पष्ट है।

जय जय जय प्रिय भारत जनयित्री दिव्य धात्रि
जय जय जय शत सहस्र नरनारी हृदय नेत्रि ॥ जय ॥

जय जय जय सश्यामल सुश्याम चलच्चेलांचल ।
जय वसन्त कुसुम लता चलित ललित चूर्ण कुंतल !
जय मदीय हृदयाशय लाक्षारुण पद युगला ॥ जय ॥

जय दिशांत गत शकुंत दिव्य गान परितोषण
जय गायक वैतालिक गलविशाल पथ विहरण
जय मदीय मधुर गेय चुम्बित सुन्दर चरण ॥ जय ॥



तुम्मल सीताराम मूर्ति

आप भाव-भाषा, रहन-सहन और आचार-विचार आदि में प्राचीन परिपाटियों का त्याग न कर, अर्वाचीन विशेषताओं को ग्रहण कर, अपनी सच्चरित्रता की रक्षा करते हुए बापूजी के सिद्धांतों का प्रचार तथा अनुसरण कर, अपने विभिन्न काव्यों के द्वारा स्वधर्म, स्वजाति, स्वभाषा, स्वप्रांत और स्वदेश का गुण गान करनेवाले यशस्वी कवि हैं।

सीधे सादे देहाती किसान के घर मेरा जन्म हुआ
एक जून खेतों में और एक जून शाला में बचपन बीता।

* * * *

करता हूँ मैं आदर सुगुणी का और अनादर दुर्गुणी का
ऊँच-नीच और जाति पांति से करता नफरत हूँ मैं सदा।

* * * *

सत्व केलिये तप करता हूँ पर रज से छूट नही पाता
पर तम से तो छूट सका हूँ रहता प्रसन्न हूँ इसीसे मैं सदा।

इस प्रकार अपने स्वभाव की विशेषताओं का स्पष्टीकरण "मैं" शीर्षक कविता में करनेवाले श्री तुम्मल सीताराम मूर्तिजीने धार्मिक विश्वास रखनेवाले किसान के घर पैदा हो कर, सज्जनों के सांगत्य से पांडित्य और प्रतिभा से संपन्न होते हुए, अपनी अनुपम तपस्या के बल पर सरस्वती माई का अनुग्रह प्राप्त कर, तेलुगु के अध्यापन का कार्य करते हुए कई महान् काव्यों की रचना करके, तेलुगु के आधुनिक कवियों में महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। चरित्र की दृष्टि से आन्ध्र प्रदेश में आपका बडा मान है। महात्मागान्धी के सच्चे अनुयायी और सर्वोदय सिद्धांत के कायल होने के नाते महात्माजी की "आत्म कथा" को तेलुगु में बृहद् काव्य का रूप देकर "महात्माजी के दरबारी कवीश्वर" कहलाए। तेलुगु साहित्य सदन को महाभारत के अपने मौलिक अनुवाद से नन्नया,

तिक्कना और एर्राप्रगडा नामक तीन महान् कवियों ने संपन्न बनाया। वे तीनों कवि कवित्रय के नाम से मशहूर हुए। उनमें तिक्कनाने ठेठ तेलुगु शब्दों का ज्यादा प्रयोग अपने काव्य में किया। श्री तुम्मल सीतारामामूर्तिजीने अपने काव्यों में उनका अनुकरण किया। इसलिये "अभिनव तिक्कना" की उपाधि से वे भूषित हुए। परन्तु श्री तुम्मलजीने वह उपाधि विनम्रता के साथ त्याग दी। सिर्फ "तेनुगु लेंका" (तेलुगु का सेवक) यह उपाधि स्वीकृत की। आजकल आन्ध्र प्रदेश भर में आप इसी उपाधि से प्रसिद्ध हो चुके हैं।

शिक्षा दीक्षाएँ

श्री सीता राममूर्तिजी का जन्म ता० २५ दिसंबर १९01 ई० को हुआ। जन्मस्थान आन्ध्र प्रदेश के गुंटूर जिले का कावूरु नामक गाँव है। महात्मा गान्धी, विनोबा भावे और राजेन्द्रप्रसाद जैसे महान् पुरुषों के आगमन से वह गाँव पुनीत हुआ। स्व० स्वामी सीतारामजी तथा उनके अनुयायियों के द्वारा स्थापित प्रसिद्ध रचनात्मक केन्द्र विनयाश्रम इसी गाँव के बहुत नज़दीक है। कावूरु गाँव शुरू से विनयाश्रम की मदद करता रहा। स्वतंत्रता के आन्दोलनों में कावूरु गाँव के वासियों ने कई बार सैंकडों की संख्या में भाग लिया। अपने अनुपम त्याग से आन्ध्र प्रांत में कावूरु गाँव ने अपना विशेष

स्थान बना लिया। उस गाँव की विशेषताओं का श्री सीतारामसूर्तिजीने स्वयं मुक्त कंठ से गान किया। उनके पिताजी का नाम नारय्या था। माता का नाम चेंचम्मा था। कावूरु के प्रारंभिक स्कूल में उनकी शिक्षा दीक्षा हुई। उनके पिता पढे लिखे न थे। फिर भी तेलुगु भारत और भागवत के अत्यंत प्रेमी थे। रोज़ सीतारामसूर्तिजी तेलुगु भारत और भागवत के पद्य पढते रहते और उनके पिता उन पद्यों का भाव श्रोताओं को समझाया करते। इससे बचपन से ही सीतारामसूर्तिजी को कविता करने की आदत पड गई। १९११ ई० में कावूरु के नज़दीक चेरुकपल्ली नामक गाँव में कवियों की एक गोष्ठी हुई। उसमें भाग लेनेवाले श्री कारेंपूडि राजमन्नार कवि की काव्य प्रतिभाने आपको प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप वे पेदपूडी नामक गाँव गये। वहाँ अपने बहनोई तेलुगु के विद्वान श्री जास्ति सुब्बय्या की सुश्रूषा में कई दिनों तक रहे। उनके यहाँ तेलुगु के प्रसिद्ध काव्य मनुचरित्रमु तथा वसुचरित्रमु का विंशेष अध्ययन किया। खेती बारी में अपने पिता की मदद करने केलिये सीता-राममूर्तिजी को घर वापस आना पडा। उन दिनों उन्होंने छः शतकों, दो हरिकथाओं, दो नाटकों तथा एक प्रबंध काव्य की रचना की। पर उन्हें प्रकाशित नहीं किया। क्योंकि वे ग्रंथ स्वयं कवि को पसंद नहीं आये।

विद्याध्ययन के लिये अथक श्रम—

दिन भर उन्हें खेतों में काम करना पडता। इसलिये कलम हाथ में लेने का मौका ही नहीं मिलता। फिर भी कविता की धुन उनके सर सवार हो ही गई। तब संस्कृत सीखने का पक्का इरादा कर लिया। कावूरु गाँव से चार मील की दूरी पर स्थित "चंदवोलु" नामक गाँव हर रोज रात को जाने लगे। वहाँ के तेलुगु और संस्कृत के महान् विद्वान व कवि श्री ताडेपल्लि वेंकटप्पय्या शास्त्रीजी की सेवा में रह कर एक वर्ष के अंदर कालिदास त्रय का अध्ययन किया। पर घरेलू कामों के बोझ से इतने दब गये कि वे चंदवोलु नहीं जा सके। फिर भी उनकी ज्ञान संबंधी प्यास नहीं बुझी। गाँव के अन्य उत्साही युवकों की मदद से एक ग्रंथालय की स्थापना की। उस ग्रंथालयने सीताराममूर्तिजी के बुद्धिविकास में अपूर्व योगदान दिया। १९२० में जब असहयोग आन्दोलन शुरु हुआ तब सीताराममूर्तिजीने ग्राम कांग्रेस संघ के मंत्री की हैसियत से राष्ट्रीयभावों का जनता में खूब प्रचार किया। १९२४ से १९२९ तक कावूरु गाँव में स्थापित राष्ट्रीय शिक्षण केंद्र "तिलक जातीय पाठशाला" में वे अध्यापन का कार्य करते रहे। उसके बाद वे मछलीपट्टणम के नज़दीक चिट्टिगूडूरु गये। वहाँ के संस्कृत विद्यालय में भर्ती होकर दुव्वूरि वेंकटरमण शास्त्रीजी की सेवा में रहकर व्याकरणशास्त्र का गहरा अध्ययन किया। १९३० में

"उभयभाषा प्रवीण" (आन्ध्र यूनिवर्सिटी) परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। उसके बाद गुंटूर जिला बोर्ड की नौकरी स्वीकार की। कई केंद्रों में तेलुगु अध्यापन का कार्य करते करते रिटैर हो गये। आजकल गुंटूर जिले के अप्पिकट्ला नामक गाँव में आराम ले रहे हैं।

आकार प्रकार

"छः फुट का लंबा और ऊँचा कद, हृष्टपुष्ट और बलिष्ठ शरीर, विशाल फाल, लंबी नुकीली नाक, घनी मूँछें, साँवलारंग, खादी धोती और खादी कुरता, हाथ में छोटी सी सुंघनी की डिबिया, अपरिचितों को भी मुग्ध करनेवाला मधुर संभाषण, सत्य के रास्ते पर चलने की आतुरता, आत्मविश्वास से भरी बातें, भाव विप्लव के समर्थक, भाषा विप्लव के विरोधी, दूसरों के गुणों को ही देखने का प्रयास, चरित्र की पवित्रता पर ध्यान देने की प्रवृत्ति और सर्वोदय सिद्धांतों का समर्थन" इन सब का समन्वय ही श्री तुम्मल सीताराममूर्तिजी हैं।

विविध काव्य

उनके काव्यों में स्वधर्म, स्वभाषा, स्वजाति, स्वप्रांत तथा स्वदेश को महत्वपूर्ण स्थान मिला। सत्य और अहिंसा से विलसित सर्वोदय का संदेश देते हुए विश्व के कल्याण के निमित्त ही आपकी कलम

आगे बढी। प्रबंध काव्य, खंड काव्य और फुटकर कविताओं की आपने रचना की। आपके काव्यों में "आत्मार्पण, राष्ट्रगान, उदयगान, आत्मकथा, धर्मज्योति, अमरज्योति, सर्वोदयगान और गीतांगण" नामक काव्य, "परिगपंट, पेद्दकापु, शबला" आदि फुटकर कविताओं के संकलन उल्लेखनीय हैं।

आत्मार्पण

संस्कृत महाभारत की एक कथा के आधार पर तेलुगु महा भारत के कर्ता श्री तिक्कनाने "लुब्ध कपोतोपाख्यान" नामक लघुकाव्य की रचना की। उसी कथावस्तु में कई आवश्यक परिवर्तन करके श्री सीतारामसूर्तिजीने "आत्मार्पण" नामक काव्य की रचना की। इस काव्य की कथावस्तु एक दिन और एक रात में समाप्त हो जाती है। इस काव्य के पात्र तीन हैं। (१) चिड़ियों का शिकारी, (२) कपोत (3) कपोती। शिकारी की हिंसात्मक प्रवृत्तियों के परिवर्तन का चित्रण इस काव्य की प्रधान विशेषता है। एक निर्मम शिकारी जंगल में जाकर कई चिड़ियों को पकड कर अपने जाल में फँसालेता है। जब वह घर लौटने लगता है तब मूसलधार वर्षा होती है। जहाँ देखें वहाँ पानी ही पानी दिखाई देता है। सूर्य पश्चिमांबर में डूब जाता है। फिर भी वर्षा कम नहीं होती। चारों ओर अंधेरा व्याप्त हो जाता है। तब शिकारी का हृदय भयभीत हो जाता है। अपने

पापों की याद कर उसका हृदय पश्चात्ताप से कुंठित हो जाता है। उधर कपोत जब यह देखता है कि उसकी कपोती शिकारी के जाल में फँसकर मृत्यु की घडियाँ गिनरही है तब व्यथित हो जाता है। आक्रोश करता है—

> कलिमि लेमुल लोन भागंबु गोनुचु
> मंचि चेड्डल लोन बालपंचु कोनुचु
> मेलगु नर्थांगि दूरमै तोलगेनेनि
> मगनि काधार मेव्वरो मगुव! चेपुमा!"

(हे देवी! बताओ! अमीरी और गरीबी, बुराई और भलाई में समानरूप से पति के साथ साथ जीवन में भाग लेनेवाली अर्धांगिनी अगर पति के जीवन से दूर हो जाय तो उस पति की सहायिका दुनिया में और कौन है?)

उसके बाद वह कपोत शिकारी के यहाँ पहुँचता है। देखता है के शिकारी भूख और सर्दी से तकलीफ उठारहा है। तब वह सर्दी से उसे बचाने केलिये तिनके ला ला कर इकठ्ठा करता है। उनमें आग लगा कर शिकारी को सर्दी से बचाता है। फिर कपोती के वियोग में तडप तडप कर खुद उस आग में कूद कर आत्मार्पण कर देता है। वह कहता है कि हे शिकारी! तुम मुझे खाकर अपनी भूख बुझा लो। इस घटना से शिकारी का कठोर हृदय द्रवित हो जाता है। हिंसा पर अहिंसा की जीत होती है। तुरन्त वह सभी चिडियों को जाल से मुक्त कर देता है। कपोती अपने पती की लाश देख कर वियोग की व्यथा से

बचने के लिये खुद भी अग्नि में कूद कर अपने प्राण दे देती है। इससे शिकारी का सत्व गुण उद्दीप्त हो जाता है। अपना हिंसात्मक पेशा छोड कर जीवन को धन्य बनालेता है। श्री सीताराममूर्तिजीने अपने इस काव्य में पति पत्नी के वियोग का करुणाजनक और हृदयविदारक वर्णन किया है। यह काव्य अपनी मृत पत्नी के नाम कविने अंकित किया है।

बापूजी के दरबारी कवि—

बापूज़ी की आत्मकथा को श्री सीताराम मूर्तिजीने तेलुगु में बृहत् काव्य का रूप प्रदान किया। उस काव्य की वजह से आप "महात्माजी के दरबारी कवि" कहलाये। अकटूबर १९३२ को आरंभ करके २६ जनवरी १९५१ को कविने यह काव्य समाप्त किया था। आन्ध्र विश्वविद्यालय के कुलपति स्व० कट्टमंचि रामलिंगारेड्डी जैसे उच्चकोटि के विद्वानों, कवियों तथा समालोचकों द्वारा यह काव्य समादृत हुआ।

प्रबोधात्मक काव्य—

श्री सीताराममूर्तिजी का "राष्ट्रगान" प्रबोधात्मक काव्य है। तेलुगु में राष्ट्र का अर्थ प्रांत है, न कि देश। कवि राष्ट्रगान की भूमिका में स्वयं लिखते हैं कि तेलुगु प्रांत, तेलुगु जनता, तेलुगु का प्राचीन इतिहास और तेलुगु भाषा का नाम सुन कर मेरा हृदय आनंद से भर जाता है। ऐसे अपने प्रांत,

अपनी जनता और अपनी भाषा को गुलामी के जंजीरों में जकडे देख कर मुझे बडा दुख होता है। मेरा दिल इस स्थिति से उद्वेलित हो उठा है। उसके प्रभाव से मेरा जीव उत्तेजित हो उठा है। उसी के फल स्वरूप "राष्ट्रगान" का सृजन हुआ है। प्रांतीयता के कारण कवि कहीं भी राष्ट्रीयता को नहीं भूलते। अपने काव्य में पहले कवि तेलुगु माता का गुणगान करके, फिर भारतमाता की स्तुति करते हैं। अपने इस काव्य के द्वारा कविने अपने प्रांत को जगाने का प्रयत्न किया। गुलामी के जंजीरों को तोडने केलिये लोगों को उत्साहित किया। स्वदेश, स्वभाषा और स्वधर्म को न भूलने का ओजमयी शैली में संदेश दिया। तेलुगु प्रांत की कई विशेषताएँ सीताराममूर्तिजी के "राष्ट्रगान" में इतनी सजीव हो उठी हैं कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भी वह काव्य नित्य नूतन ही बना हुआ है। आन्ध्रराज्य की स्थापना हो गई। मगर महात्मा गान्धीजी के सच्चे साथी, अनन्य तपस्वी शहीद पोट्टि श्रीरामुलुजी की आहुति से। इससे महात्माजी के शिष्य श्री सीताराम मूर्तिजी का हृदय सागर उमड पडा। कहते हैं—

ओ तेनुंगु राष्ट्रमा! तुट्ट तुद केंत
कडिढि पनिकि बालु पडिति वम्मा?
शुद्ध सत्वमूर्ति सुतुडोक्क डाहुति
वोवुदाक कदलिरावु नीवु।"

(हे तेलुगु माँ! आखिर तुम कैसी करतूत कर बैठी हो? शुद्ध सत्वमूर्ति अपने सुत की जबतक आहुति नहीं हुई तब तक तुमने यहाँ आने का नाम ही नहीं लिया!)

सुराज्य का समर्थन

ऐसे बलिदान के बाद स्वतंत्र भारत में आन्ध्रराज्य की स्थापना हुई। फिर विशाल आन्ध्र प्रदेश की भी स्थापना हो गयी। मगर कवि को शांति नहीं मिलती। जातिपांति, ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थ की परकाष्ठा के दर्शन कर कवि का हृदय वेदना से उत्तेजित हो उठता है। अपने साथियों को सही रास्ते पर चलाने का वे प्रयत्न करते हैं। प्रांतीय हितों के साथ साथ समूचे भारत के हितों की रक्षा करने का उपदेश देते हैं। ऐसी ही कविताओं का संग्रह है सीताराममूर्तिजी का "उदयगान"।

"धर्मज्योति" नामक काव्य में अपने पिताजी की धर्म परता और कांचन मुक्ति संबंधी त्याग भावना का वर्णन कविने किया है। सोने की ईंटें चंदवोलु गाँव में मजदूरों को नहर खोदते समय मिलती हैं। पुलिस के भय से मजदूर उन्हें व्यापारियों के हाथ बेच देते हैं। यह खबर पाकर पुलिस वहाँ पहुँचती है। एक व्यापारी कुछ सोने की ईंटें कवि के पिता श्री नाराय्या के यहाँ छिपाता है। नारय्या यदि चाहते तो अमानत में खयानत करसकते थे। मगर धर्मनिष्ठ नारय्या वैसा नहीं करते। अपने

यहाँ सोने की ईंटों को सुरक्षित रख कर फिर उन्हें मालिक को सौंप देते हैं। उस आदर्शवादी घटना का अपने "धर्मज्योति" नामक काव्य में बडे ही सुंदर ढंग से कविने वर्णन किया है।

सर्वोदय गान

महात्मा गान्धीजी के निधन से श्री सीताराममूर्तिजी दुःख सागर में डूब गये थे। अश्रुधारा बहाते हुए कुछ पद्यों की रचना की थी। वे सब "अमरज्योति" नामक लघु काव्य के रूप में प्रकाशित हो गये हैं। महात्माजी के निधन के बाद पूज्य विनोबाजीने जगत् को भूदानयज्ञ का संदेश दिया है। उसी विषय को कथानक के रूप में स्वीकार कर श्री सीताराममूर्तिजीने "सर्वोदय गान" नामक सुंदर काव्य की रचना की है। यह काव्य चार सर्गों में विभाजित है। इस काव्य में विनोबाजी के उपदेशों तथा सर्वोदय सिद्धांतों का सरल भाषा में वर्णन किया गया है। विनोबाजी के भूदान यज्ञ की यात्रा से संबंधित कई उल्लेखनीय घटनाओं का भी इसमें चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है। इस काव्य के नायक "विनोबाजी" हैं। उनके वर्णन से काव्य का आरंभ होता है। सर्वोदय राज्य की कल्पना के साथ काव्य समाप्त होता है। कवि चाहते हैं कि ऐसे राज्य की स्थापना हो जहाँ भिखारी नहों, चोर लुटेरे न हों, षडयंत्र न हों, स्वार्थी न हों, फौजी ताकत के नाम पर

करोडों रुपये लुटाये न जायँ, अहिंसा की नींव पर उस राज्य रूपी प्रासाद का निर्माण हो।

भगवद्गीता का पद्यमय अनुवाद "गीतांगण" के नाम से कविने किया। भर्तृहरि शतक का भी "तेनुगुनीति" के नाम से उन्होंने काव्यानुवाद किया। उपर्युक्त काव्यों के अलावा श्री सीताराममूर्तिजी की पचासों फुटकर कविताएँ चार संग्रहों में अब तक प्रकाशित हो गई हैं। भारत सवित्रि, संक्रांति, हंपीक्षेत्र, गुरुदक्षिणा, वीरधर्म, नव भारती और संक्रांति के विचार आदि उच्च कोटि की कई उल्लेखतीय कविताएँ उन में संग्रहीत की गई हैं। तेलुगु प्रांत के भोग-भाग्य, रीति-नीति, रहन-सहन और आचार-विचार, आदि सजीव रूप में मूर्तिजी की कविताओं में दृग्गोचर होते हैं। "संक्रांति विचार" शीर्षक कविता में कविने अपनी जीवनी का ही वर्णन किया है। कवि स्वयं किसान हैं। खेतों में काम करते रहते हैं। उसके बाद तेलुगु के पंडित बन कर तेलुगु की उपजाऊ भूमि में श्रेष्ठ काव्यरूपी अनाज को उपजाते हैं। उस समय कवि को जो जो अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं, उन सब का भी विशेष चित्रण कविने अपनी कविता में किया है। आपकी कविताएँ भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से भी उच्च कोटि की बन पडी हैं।

ठेठ तेलुगु शब्दों का प्रयोग—

कलापक्ष के बारे में सीतारामम्मूर्तिजी के अपने निश्चित सिद्धांत हैं। तत्सम शब्दों की बहुलता को वे पसंद नहीं करते। इसीलिये उनके काव्यों में तत्सम, तद्भव के शब्दों के साथ साथ ठेठ तेलुगु शब्द भी काफी मात्रा में पाये जाते हैं। रस, अलंकार तथा छंदों के विषय में प्राचीन आचार्यों के सिद्धांतों का ही आप समर्थन करते हैं। कट्टर से कट्टर समालोचक भी आपकी शैली गत विशेषताओं से मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते।

स्वागत और सम्मान

श्री सीतारामम्मूर्तिजी आशुकविता करने में सिद्धहस्त हैं। अवधान की क्रिया में उन्होंने कई बार सफलता प्राप्त की। महात्मा गान्धीजी के सिद्धांतों पर आपका अटल विश्वास है। उन सिद्धांतों को अपने काव्यों की आत्मा बनाकर श्री मूर्तिजीने तेलुगु साहित्य को काफी समुन्नत बनाया है। आन्ध्र प्रदेश की जनताने कई बार श्री सीतारामम्मूर्तिजी का सम्मान किया है। १९३९ में नेल्लूर शहर में बडे पैमाने पर आपका सत्कार किया गया। १९४२ में अप्पिकट्ला गाँव के लोगोंने आपका सम्मान किया। उस अवसर पर "सम्मान संस्मरण ग्रंथ" का प्रकाशन किया गया। १९४४ में मुक्तयाला के राजा के द्वारा

तथा नव्य साहित्य परिषद् के द्वारा सम्मानित हुए। १९४९ में निडुब्रोलु में आपका जो सम्मान किया गया वह सुवर्णाक्षरों में लिख रखने योग्य है। आपका कनकाभिषेक किया गया। गंडपेंडेरम (कवियों के लिये विशेषरूप से निर्मित सोने का बडा कडा) समर्पित किया गया। हाथी पर बिठाकर जुलूस निकाला गया। उस अवसर पर "संस्मरण ग्रंथ" प्रकाशित किया गया। १९५७ में गुडिवाडा शहर की पुरपालिकाने आपका सम्मान किया। वहीं आन्ध्रनलंदा की तरफ से भी सम्मानित हुए। २ अक्टूबर १९५७ को आपके जन्मस्थान कावूरु गाँव के लोगोंने चरखे पर सूत कात कर उससे कपडा तैयार करा कर तराजू में मूर्तिजी को बिठाकर उस से तोला। फिर वह कपडा गरीबों में वितरित किया गया। जब सीताराममूर्तिजी नौकरी से अलग हो गये तब अप्पिकट्ला गाँव के लोगोंने आर्थिक मदद कर आपका बडा सम्मान किया। आन्ध्र, मद्रास तथा अन्नामलै यूनिवर्सिटियों के अधिकारियों ने अपने यहाँ के पाठ्यक्रमों में वर्षों तक श्री सीताराममूर्तिजी के काव्य पठित पुस्तकों के रूप में नियत किये।

आज भी आप लेखनी चला रहे हैं। "आत्मकथा" नामक अपने काव्य में मूर्तिजीने १९२० तक के महात्माजी के जीवन को लिपिबद्ध किया। उसके बाद के महात्माजी के जीवन को "महात्म कथा" के नाम से काव्य का रूप प्रदान कर रहे हैं। साहित्य

के मूल्य के बारे में मूर्तिजी अपना विचार निम्न लिखित पंक्तियों में व्यक्त कर चुके हैं। वे कहते हैं—

बरुवुजूचि कृतिकि बरुवुनीकुड्ु, चिन्न
रचनयैन नेमि? रामुडद्ु
गानिपिचुनेनि मानवुनद्वि तीर्चि
द्दिदुनेनि दानि कुद्दिलेद्ु।

(किसी भी कृति को बोझ की दृष्टि से महत्व न दिया जाय। बोझ व कलेवर की दृष्टि से वह ग्रंथ हलका या लघु ही क्यों न हो, उसमें यदि राम प्रतिबिंबित हों और मानव के हृदय को यदि वह परिवर्तित कर सके तो वही श्रेष्ठ है।)

श्री सीतारामसूर्तिजी की यह उक्ति सभी दृष्टियों से उन्हीं के काव्यों के लिये ठीक बैठती है।



श्रीरंगम
श्रीनिवासराव

आप समाज के व्यथित, पतित, तिरस्कृत, बहिष्कृत, पिसे, घिसे, दीन, हीन जनों के नेता बन कर उन मूक प्राणियों को अमरवाणी प्रदान कर के, उन्हें तेलुगु के काव्य-जगत् में महत्वपूर्ण स्थान दिलानेवाले अग्रश्रोणी के प्रगतिवादी तेलुगु-कवि हैं।

एक नया जग
एक नया जग
एक नया जग रहा पुकार!
डट के चलो तुम
सट के चलो
चढ़ के चलो, तुम बढ़ के चलो!
पग पग चलते
पद पद गाते
अंतर निज गरजाते चलो!
जल प्रपात रव
नव जग कलरव
नहीं सुना क्या? नहीं सुना क्या?

* * *

सडी हड्डियाँ
ढली उमरिया
जिसकी सुस्तो! मरो खपो!
रक्त गरम कर
शक्ति ज्वलित कर
चुस्त सैनिको! निकल पडो!
“हरोम! हरोम! हर!
हर! हर! हर! हर!
हरोम! हरोम!” कह चल निकलो!
एक नया जग
महान् वह जग
धरती पर मुसकाये! सारा जग जग जाए!
डट के चलो तुम
सट के चलो!
चढ के चलो तुम बढ़ के चलो!

* * *

नव जग का वह बड़ा नगाड़ा
विराम तज कर बजता है
नाग सर्प सा
क्षुधित व्याघ्र सा
अग्निहोत्र सा बढे चलो !
नजर न आई नव जग के
उस अग्नि मुकुट की तडक भड़क ?
लाल ध्वजा की चमक दमक ?
होम ज्वाल की धधक भभक ?

क्रांति की पुकार

नये जग की यह पुकार, क्रांति की ऐसी ललकार सुनकर आधुनिक तेलुगु काव्य जगत् में खलबली मच गयी। संस्कृतनिष्ठ, संप्रदायबद्ध और रूढ़िग्रस्त समतल राजपथ पर विचरनेवाली तेलुगु की कविता कामिनी, प्रगतिवाद का क्रांति पथ देख कर विचलित हो उठी। कोमल कांत पदावली से सज्जित होकर प्रियतम और प्रेयसी के हृदयों को प्रफुल्लित करती फिरनेवाली प्रेममयी कविता अचानक प्रगतिवाद के पथरीले पथ की पुकार सुन कर काँप उठी। मगर उस पुकार में जोश था, आवेश था। जबर्दस्त आकर्षण था। बस झख मार कर उस क्रांतिकारी पुकार के पीछे उसे चलना पड़ा। मंत्रमुग्ध हो वह चल पड़ी। देखते देखते वह पुकार विराट रूप धारण करने लगी। उसके अनुयायियों की संख्या बढने लगी। नंगी-भूखी, पददलित, मूक जनता की वाणी ऐसी पुकार लगानेवाले क्रांतिकारी कवि के कंठ में मुखरित

चिल्लावें सो वाद्य हूँ।
अनलवेदी के निकट मैं अश्रु का नैवेद्य हूँ।

*　　　*　　　*

भूधर,
सागर, कंकेलि पुष्प के मंजर।
निर्झर; सब हैं मेरे सहोदर।
मैं हूँ इक गहन दुर्ग,
मेरा है अलग स्वर्ग,
अगम, अनर्गल मेरा यात्रा मार्ग।

इस प्रकार की अपनी उत्तेजनात्मक कविताओं के द्वारा आधुनिक तेलुगु के काव्य जगत् में एक नयी मोड़ लानेवाले श्री श्री का जन्म २ जनवरी १९1० ई० को विशाखापट्टणम में हुआ। डेढ़ साल की उम्र में श्री श्री अपनी माँ को खो बैठे। १९४७ ई० में पिताजी को भी गवाँ बैठे। जिन्दगी में कई कठिनाइयों का सामना करते हुए १९२७ में इंटर पास कर फिर बी. ए. की डिग्री भी प्राप्त कर ली। तेलुगु, अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं का आपने गहरा अध्ययन किया। संस्कृत और तमिल भाषाओं से भी आप परिचित हैं। आपने अपनी कुछ प्रगतिशील कविताओं का अंग्रेजी में स्वयं अनुवाद कर लिया, जिनका संकलन ग्रंथ "Three chees for man" के शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है।

मृत्यु पर विजय

आपकी काव्य प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त है। वे बचपन से ही कविता करने लगे। दस वर्ष की अवस्था में आपने "वीरसिंह और विजयसिंह" शीर्षक

पचास पृष्ठों का उपन्यास तेलुगु में लिखा। कठिनाइयों का सामना करने की उन्हें आदत ही पड़ गयी। जीवन में तीन बार मृत्यु के मुख से बच निकले। तीन बरस की अवस्था में बच्चों की बीमारी के शिकार हो गये। बचने की आशा नहीं रही। तब उनके भाल, छाती, गर्दन तथा हाथ की कलाई पर चुरुट से इस प्रकार जलाया गया जिसके निशान आज तक बने हुए हैं। दूसरी बार जब वे बी. ए. की तैयारी कर रहे थे तब टाइफाइड से पीड़ित होकर ६३ दिन तक बीमार रहे और मरते मरते बच गये। तीसरी बार १९५१ में वे एक दम पागल हो गये। तीन मास तक मेंटल अस्पताल में रह चुके। मध्यम श्रेणी के ब्राह्मण कुटुंब मे जन्म लेकर श्री श्री शुरू से सरस्वती के लाडले बनकर लक्ष्मी की कृपादृष्टि से वंचित ही रहे। कुछ वर्ष तक स्कूल मास्टरी करते रहे। उसके बाद पत्रिका के क्षेत्र में पहुँच गये। वहाँ भी वे अधिक दिनों तक काम नहीं कर सके। फिर रेडियो में काम करते हुए मिलिटरी में भर्ती हो गये। वहाँ से भी लौट कर साहित्यिक कार्य को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। आम चुनाव के अवसर पर कम्यूनिस्ट पार्टी के अनुकूल श्री श्री ने जनता में प्रचार किया। बाद वे आन्ध्र प्रदेश की विधान सभा के सदस्य बन गये।

स्वागत और सम्मान

श्री श्री फिल्मी दुनिया में पहुँच गये। सरस्वती के प्रियपुत्र श्री श्री लक्ष्मी के भी कृपा पात्र बन गये।

उनकी आर्थिक स्थिति बहुत सुधर गयी। मद्रास में निजी मकान है। फिल्मी कार्य में इतने व्यस्त रहते हैं कि आराम ही नहीं मिलता। हमेशा अपनी मस्ती में मस्त रहते हैं।

आन्ध्र प्रदेश ने श्री श्री का कई बार सम्मान किया। तेलुगु के प्रगतिशील लेखक संघ के तो आप सर्वेसर्वा रहे। आपके पथ प्रदर्शन में पचासों तरुण कवि निकल कर तेलुगु भारती की सेवा में लगे हुए हैं। नवंबर १९५४ में भारत की तरफ से विश्व के शांति सम्मेलन में भाग लेने स्टाकहोम गये। उस समय मास्को, लंदन, पैरिस भी हो आये। फिर मई १९५९ में दूसरी बार यूरोप की यात्रा कर आये। आन्ध्र प्रदेश के सैकडों केन्द्रों में आपका स्वागत सम्मान हुआ। आप पर रूस और साम्यवाद का इतना प्रभाव पड़ा कि आपने अपनी पुत्री का नाम 'लेनीना' रखा। अपनी अदभुत प्रतिभा, अनुपम साहित्यिक साधना, अपरिमित निर्भीकता और साहस के बल पर श्री श्री तेलुगु के आधुनिक जनप्रिय कविवरों में स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

श्री श्री का समस्त काव्य साहित्य काल-क्रम के अनुसार तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। (१) १९३२ के पूर्व की कविताएँ (२) १९४० तक की कविताएँ (३) १९४० के बाद की कविताएँ। प्रथमयुग की उनकी कविताओं में वेणुगान, बौद्धतेज, स्वर्ग के देवता, तमस्विनी, गीत तथा सान्ध्य भावना आदि

उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं पर 'भाव कविता' का (छायावाद) अधिक प्रभाव दीखता है। वे अपनी "तमस्विनी" शीर्षक कविता में कहते हैं।

नक्षत्र किसी अनजान वेदना से उद्वेलित हैं,
इसी से वे उदित व तिरोहित होते रहते हैं।
जलद किसी अंतरव्यथा से व्यथित हैं,
इसी से परेशान हो इधर उधर चलते हैं।
समीर की लहरें किसी की छाया में भटकती हैं,
वहाँ से लौट कर अपनी राम कहानी मुझे सुनाती हैं।
ज्ञात नहीं क्यों, मेरे दिल में विकल रागिनी बजती है॥

प्रगतिवाद का प्रभाव

तेलुगु के आधुनिक काव्य जगत में भाव कविता (छायावाद) का आरम्भ १९१० के लगभग संप्रदायबद्ध प्राचीन कविता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। १६३० तक उसकी बड़ी धूम रही। लेकिन जीवन के संघर्ष से दूर एक कल्पनामय भावलोक में विहार करते हुए भावुक कवि जब नभ से भू पर चरण धरने से इनकार करने लगे तब आम जनता उनसे विमुख होने लगी। औद्योगिक विकास तथा पूँजीवादी सभ्यता का भी प्रभाव जनता के दिलों पर पड़ने लगा। जर्मनी में फासिज्म के समर्थक सत्तारूढ़ हो गये। इससे विश्व में युद्ध की आशंका बढ़ गयी। फलस्वरूप क्रांतिकारी शक्तियाँ जागृत हो गयीं। रूस की क्रांति ने इस जागृति में बड़ा योग दिया। इधर भारत में एक तरफ़ असहयोग आन्दोलन, दूसरी तरफ़ क्रान्तिकारी आन्दोलन भी चलने लगे। अतः भारत

की अन्य भाषाओं के साथ-साथ तेलुगु में भी प्रगतिवादी कविताओं का आरम्भ हुआ। श्री श्री की शक्तिमयी लेखनी इस ओर चल पड़ी। ता० १२ अप्रैल १६३४ को उनकी "महा प्रस्थान" कविता प्रकाशित हुई। आन्ध्र जनता ने उनकी कविताओं का स्वागत किया। तब से जयभेरी, अभ्युदय, नवकविता तथा जगन्नाथ रथ चक्र वगैरह उनकी कई प्रसिद्ध और श्रेष्ठ प्रगतिवादी कविताएँ प्रकाशित हुईं। श्री श्री की ऐसी ४0 कविताओं का संग्रह "महा प्रस्थान" के नाम से पुस्तकाकार में प्रकाशित हो गया है, जिसके अब तक कितने ही संस्करण निकल चुके हैं।

प्रगतिवाद का लक्ष्य—

प्रगतिवादी कविताओं की वस्तु के बारे में जनवरी १९३६ में मद्रास के रेडियो केन्द्र से प्रसारित "आज की तेलुगु कविता और नयी प्रवृत्तियाँ" शीर्षक अपने भाषण में श्री श्री ने यों कहा है:

"आज के कवियों का दृष्टिकोण व्यापक हो चुका है। जिस प्रकार आसमान में पहुँच कर प्रचीन कवि नक्षत्र पथ में विहार करते रहे हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के भी बहुत निकट पहुँच कर उन अँधेरे कोनों में जहाँ प्राचीन काल के कवियों की पहुँच नहीं हुई—क्रान्ति की किरणों का प्रसार आज के कवि कर रहे हैं। शहरी जीवन और औद्योगिक वातावरण से प्रभावित हृदय विदारक दृश्य तथा पतनोन्मुख समाज का उच्छृंखल

नृत्य आदि आज के कवियों के काव्य-विषय बन रहे हैं। इस दिशा में रूसी फ़्यूचरिजम (Russian Futarism) उनके लिए आदर्श बन गया है। मायकोवस्की (Mayakovsky) पास्तरनाक (Pasternak) वगैरह की रचनाएँ पीड़ित शोषित जनता के प्रति आज के कवियों के हृदयों में सहानुभूति उत्पन्न कर रही हैं। एक तरफ़ कुबेर का कोष, दूसरी ताफ़ कुचेल का वेश देख कर वे चकित हो रहे हैं। अपने चारों तरफ़ समाज के द्वारा बहिष्कृत, रात दिन चोटी का पसीना एडी तक बहाने वाले मजदूर, दीन दरिद्र नंगे भूखे पद दलित जनों को वे देख रहे हैं। ऐसे करुणाजनक दृश्यों का चित्रण अपनी कविताओं में करके संसार की आँखें खोलने का प्रयास आज के कवि कर रहे हैं।"

श्री श्री का पथ

ऐसी शोषित पीड़ित दरिद्र जनता को संबोधित कर श्री श्री अपनी "जगन्नाथ के रथ चक्र" शीर्षक कविता में यों कहते हैं—

> पतित जनो!
> भ्रष्ट जनो!
> व्यथा-सर्प से ग्रसित जनो!
> जीवन भर,
> जल जल गल,
> शनीचर के रथ चक्र के
> धुर में गिर पिसे घिसे
> दीन जनो!
> हीन जनो!

कौर रहित, ठौर रहित
पक्षी बने भिक्षु जनो !
बंधुओं से पदिच्युत हो,
जनता से तिरस्कृत हो,
समाज से बहिष्कृत हो,
पड़े हुए
च्युताशयी
हताश जनो !
मत रोओ ! मत रोओ !
सिसक सिसक सिसक सिसक
मत रोओ ! मत रोओ !

* * *

वह देखो, आते हैं
जगन्नाथ
जगन्नाथ
जगन्नाथ रथ चक्र
जगन्नाथ रथ चक्र
रथ चक्र
रथ चक्र
रथ चक्र, रथ चक्र
वह देखो ! आते हैं।
पतित जनो !
भ्रष्ट जनो
मेघावृत
पथ पर चल
रथ चक्र, रथ चक्र
आते हैं, आते हैं।

* * *

आकस के रास्ते पर
निकले हैं तेजी से
करते हुए प्रलयघोष
जगन्नाथ रथ चक्र।
उन्हें मैं तेजी से
धरती पर लाऊँगा,
भूचाल मैं भर दूँगा
सारा जग बदलूँगा।

* * *

शान्ति शान्ति कान्ति कान्ति
जग भर में दीप्त होगी।
सपना यह सच होगा।
यह धरती स्वर्ग होगी।

* * *

इस प्रकार शोषण की व्यवस्था के अन्त और साम्यवादी व्यवस्था के आरम्भ का आश्वासन देने वाले कवि का हृदय भी कभी-कभी निराशा से भर जाता है। वे अपनी एक कविता में प्रश्न करते हैं—

सचमुच ही यह लोक सारा
हर्ष से भर जाएगा क्या?
सचमुच ही इन मानवों के
होंगे दिन कल्याणमय क्या?
क्या साधुता और बंधुता का
प्रेमतत्व जयी होगा?

देश का इतिहास

सच्चे मानवतावादी कवि श्री श्री जब हर देश के इतिहास पर ध्यान देते हैं तब उनका हृदय दहल उठता

है। "देशका इतिहास" शीर्षक कविता में आक्रोश कर उठते हैं।

किसी देश का देखें इतिहास
क्या है उसमें गर्व का अंश?
नर जाति का समस्त इतिहास
पर पीडन से भरा हुआ है।

* * *

बली लोग सब दुर्बल जग को
दास बना कर कुचल चुके हैं।
नरहंतक सब धराधीश बन
इतिहासों में बैठ चुके हैं।

* * *

नहीं दीखता ऐसा स्थल जो
नर के रक्त से सिचा नहो ।
भूतकाल सब रक्त सिक्त है
देख ज़रा वह अश्रुयुक्त है॥

* * *

आगे चल कर कवि इदिहास का सच्चा अर्थ स्पष्ट करते हैं।

कौनसा युद्ध क्यों कर हुआ?
कौनसा राज्य कब तक चला?
सब के दिनांक दस्तावेज़
इतिहास के नहीं हैं प्रमाण।

* * *

इस रानी का प्रेम पुराण
उस धावे के व्यय का हिसाब

कैफियतों की राम कहानी
इतिहास के नहीं हैं प्रमाण ॥

* * *

इतिहास के अंधेरे कोने के
निचले तह में छिपे तथ्य सब
खोज निकालें यही फर्ज अब
तब होवेगा श्रेय विश्वका।

* * *

नीलनदी की नागरता में
सामान्यों का जीवन था कैसा?
ताजमहल की निर्माण क्रिया में
पत्थर ढोये किन कुलियों ने?

* * *

साम्राज्यों के आक्रमणों में सोच ज़रा,
सामान्यों का कैसा था भाग?
प्रभु के चढे उस पालकी को नही
देख ज़रा उसके वाहक थे कौन?

प्रगतिवादी कवि की दृष्टि में काव्य के लिए त्याज्य वस्तु कोई नहीं है। मगर उसे समझने की ज़रूरत है। श्री श्री "ऋक" शीर्षक अपनी कवितामें उपर्युक्त बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं—

पिल्ला हो वह कुत्ते का
टुकड़ा हो वह साबुन का
डिब्बा हो सलाई का
मत समझो हीन किसी को,
कवितामय समझो सब को ॥

* * *

टुकड़ा हो वह रोटी का
छिलका हो वह केले का
तख्ता हो वह लकडी का
देखा करते हैं सब तुम को,
कहते हैं समझो तुम हम को ॥

नव कविता

आज की सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध कवि आवाज़ उठाते हैं। शोषक और शोषित के बीच के अंतर को दूर करना चाहते हैं। इसके लिए नव कविता का कवि स्वागत करते हैं—

सिंदूर और रक्तिम चंदन
बंधूक और संध्या का राग
व्याघ्राहत रक्त हिरन का
उत्तोलित लाल पताका
रुद्राली की नयन ज्वाला
माँ काली की करालजिह्वा
नव कविता को सभी चाहिए ॥

* * *

गंधक की बहु प्रचंड धुंधर
तुंग तरंगित सप्त समुंदर
धधकता हुआ कडा कोयला
बिखरता हुआ बुक्का चूरन
भभकती हुईं विद्युत लपटें
उत्तेजित जनता की रोरें
नव कविता को सभी चाहिए।

* * *

श्येनों के पंखों की फड फड
कारखानों की भैरव घड घड
जंगल के शेरों का गर्जन
निबिड घनों का प्रचंड तर्जन
खड्ग-पशु का उग्र विराव
झंझानिल का षड्ज ध्वान
नव कविता को सभी चाहिए।

* * *

स्वयं हिले अन्यों को हिला दे
खुद बदले अन्यों को बदल दे
खुद गाये अन्यों से गवाये
गहरी नींद से सब को जगाये
पग पग जग को आगे बढाये
पूर्ण जिन्दगी सब को दिलाये
कविता ऐसी हमें चाहिए॥

यद्यपि कवि समाज का ही प्राणी है तथापि उसका स्वतंत्र अस्तित्व भी होता है। मगर वैयक्तिक स्वतंत्रता यदि सामाजिक चेतनता की सहायक न बने तो वह समाज के लिए घातक सिद्ध होगी। श्री श्री की कई व्यक्तिगत प्रतिभा सम्बन्धी ऐसी कविताएँ भी हैं जो प्रच्छन्न रूप से सामाजिक चेतनता से ओतप्रोत हैं। जैसे—

मैंने भी
विश्व की वह्नि में
इक समिधा की आहुति दी है।
मैंने भी
विश्व की वृष्टि में
अश्रु बूंद इक अर्पित की है।

मैंने भी
भुवन के घोष में
पागल स्वर निज मिला दिया है।

श्री श्री की "पथिक, भिक्षु वर्षीयसी, उन्मादी और आकाश दीप' आदि कविताओं में ऐसे शब्दचित्र प्रस्तुत किये गये हैं जो हिन्दी के प्रसिद्ध आधुनिक कवि निरालाजी के 'भिखारी' और पंतजी के 'बूढ़े' की याद दिलाते हैं। मानवतावादी कवि श्री श्री ने 'मानव' शीर्षक अपनी कविताओं के द्वारा मानव के विराट् स्वरूप के दर्शन कराये हैं। मानव के स्वप्न, विश्वास-अविश्वास, उत्थान-पतन, हार-जीत वगैरह का संक्षेप में विचारोत्तेजक ढंग से कविने चित्रण किया है।

उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त "शैशव गीत, अवतार, ज्वालातोरण, साहसी, कटु गीत, कलारवी, किसके लिए, एक रात, उस पार, पराजित, आह, एक क्षण में, छायाएँ, गरीब, घंटियाँ, अद्वैत, कवि स्विनबर्न, वह, मिथ्यावादी, आशा के दूत, रूस गरज तू! वगैरह और भी श्री श्री की ऐसी कविताएँ हैं जो अपनी अपनी जगह बेजोड़ हैं।

विविध कविताएँ

तृतीय युग की श्री श्री की कविताएँ ज्यादातर सर्रियलिजम पर आधारित हैं। तेलुगु की शतक शैली में "सिरि सिरि मुव्वा" की रचना उन्होंने की है। वे पद्य ज्यादातर व्यंग्य और आलोचना प्रधान हैं। "खड्ग

सृष्टि, प्रास क्रीडलु" ऐसी कविताओं के संग्रह हैं जिनमें राजनैतिक, वैयक्तिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर साम्यवादी दृष्टिकोण से रोशनी डाली गई है। साम्यवादी सभ्यता का मण्डन-पूंजीवादी सभ्यता का खंडन श्री श्री की कविताओं का मूल आधार है। चाहे बड़े हों या छोटे, नेता हों या जेता, धनी हों या निर्धन, कवि की दृष्टि में दोषी दिखाई दें तो वे उनकी कटु आलोचना कर बैठते हैं। उनकी आलोचना जितनी कटु होती है, भाषा भी उनकी उतनी ही पटु होती है। वे कहते हैं—

रास क्रीडा शृंगार रस का
बहुत ही रम्यमय प्राण है।
प्रास क्रीडा हास्य रस का
दिल पसन्द इक बाण है।

*　　　*　　　*

जनतंत्र के नाम पर
'सीटों' का शिकार है।
राज करेगी आगे बढ़ कर
पुलिसों की अब लाठी है।

इस युग की कविताओं में "सदसत्संशय" "ए, ऐ, ओ, औ" शीर्षक कुछ श्रेष्ठ कविताएँ भी हैं। जो भी हो तीसरे युग की श्री श्री की कविताएँ, दूसरे युग की उनकी कविताओं के सामने भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से भी फीकी ही नजर आती हैं।

श्री श्री तेलुगु के सफल गद्य लेखक भी हैं। "चरमरात्रि" उनकी छोटी कहानियों का संग्रह है। श्री श्री ज्यादार पद्य लेखक के रूप में ही तेलुगु भाषा भाषियों में विख्यात हो चुके हैं।

कलापक्ष में क्रांतिकारी परिवर्तन—

भावपक्ष के साथ साथ श्री श्री कलापक्ष में भी क्रातिकारी परिवर्तन ले आये। भाषा, छंद तथा अभिव्यंजना प्रणाली में भी नूतनता लाने का श्रेय उन्हीं को है। तत्सम, तद्भव, देशी तथा विदेशी शब्दों का मनमाना और उचित प्रयोग उन्होंने अपनी कविताओं में यत्र तत्र किया है। सामान्य शब्द भी श्री श्री की कविताओं में स्थान पाकर विलक्षण बन जाते हैं। कहीं कहीं पर नये शब्द गढने का भी उन्होंने प्रयत्न किया है। "कविते! हे कविते?" शीर्षक कविता में उन्होंने स्वयं कहा है—

जो कुछ देखा जो कुछ सुना
उसे व्यक्त करने निकला था मैं।
शब्दों की खोज करने लगा जब
कितने ही पद निकल पडे तब।
वे सब
स्मशान जैसे कोषों को छोड
व्याकरणों की जंजीरें तोड
छंद-सर्प के परिरंभण से
छूट छूट कर द्रुत गति से
फूट पडे, निकल पडे, मेरे दिलमें कूद पडे।
कविते! हे कविते!

छंद के प्रयोग में उन्होंने स्वतंत्रता से काम लेकर ज्यादातर गद्य-गीत (Blank Verse) को अपनाया है। श्री श्री की कविताओं में सर्वत्र अनुप्रास की छटा दिखायी देती है। कुछ कविताओं में घंटानाद सा सुनाई देता है। जैसे—

मरो प्रपंचं
मरो प्रपंचं
मरो प्रपंचं पिलिचिंदी
पदंडि मुंदुकु पदंडि तोसुकु
पोदां पोदां, पैपैकि !

जनता जनार्दन के सच्चे उपासक

आम तौर पर कहा जाता है कि—

"प्रगतिवाद की वस्तु अस्थायी होने के कारण उससे संबंधित कविताएँ भी अस्थायी होती हैं। भाव की गंभीरता कम, शब्दों का आडंबर उनमें अधिक रहता है।" श्री श्री की कुछ कविताओं पर ऐसा ही आरोप लगाया जाता है। मगर उन की कई कविताएँ भाव की गंभीरता और अभिव्यंजना प्रणाली की विशेषताओं से सज्जित होकर आधुनिक तेलुगु काव्य साहित्य की स्थायी संपत्ति बन गयी हैं और वे कविताएँ विश्वजनीन मानवता और शांतिमय समानता का उद्घोष करती हैं। जनता की सेवा ही सच्चे अर्थ में जनार्दन की सेवा है तो "श्री श्री" जनता जनार्दन के सच्चे उपासक कवि हैं।



करुणश्री

आप करुणामय बुद्ध भगवान के पावन चरित को रसात्मक सरस काव्य का स्वरूप देकर आन्ध्र प्रदेश के पंडित और पामर सभी के हृदय कुसुमों को सुगंधित कर उनके दिलों पर अपनी अमिट छाप अंकित करनेवाले सफल कवि हैं।

"मेरे पुभु संसार के कल्याण केलिये अपना भोग भाग्य छोड चुके। मेरे करुणामय प्रभु जंगलों में छः बरस तक तपस्या कर अंत में बोधिवृक्ष की छाया में बुद्ध बने। दुनिया को अमर संदेश देकर विश्वमानव के हृदय पटल पर अमृत की वर्षा की। उनके चरण चिह्नों से शांति फूट पडी। उनकी आँखों से करुणा की धारा उमड पडी। उनकी वाणी से अहिंसा की सुरसरिता प्रवाहित हो उठी। वे हैं भगवान बुद्ध। वे ही मेरे प्रभु हैं। वे ही मेरे आराध्य हैं।" उपर्युक्त वाक्य तेलुगु के ऐसे आधुनिक कवि के हैं, जो तेलुगु में गौतम बुंद्ध के पावन चारित को रसात्मक सरस काव्य का रूप देकर आन्ध्र प्रांत के पंडित और पामर सभी के हृदय कुसुमों को सुगंधित कर चुके हैं। उनके काव्यों से भगवान बुद्ध का नाम तेलुगु के काव्य जगत् में अमर हो गया है। उस कवि का नाम है "करुणश्री"।

स्वयं ही करुणश्री

करुणश्री का पूरा नाम है जंध्याल पापय्या शास्त्री। उनके कथन के अनुसार भगवान बुद्ध का ही दूसरा नाम करुणश्री है। करुणामय प्रभु गौतम बुद्ध को अपना आराध्य मान कर "करुणश्री" के उपनाम से विभिन्न काव्यों का सृजन करके तेलुगु के आधुनिक कवियों में विशेष स्थान प्राप्त करनेवाले श्री पापय्या शास्त्रीजी हिन्दी भाषा के भी अच्छे पंडित हैं। भवभूति के द्वारा प्रतिपादित "एको रसः करुणएव" सूत्र

शास्त्रीजी का आदर्श है। यह सूत्र शास्त्रीजी की कविताओं में सर्वत्र दुग्गोचर होता है। इस विशेषताने बहुत शीघ्र ही अशेष आन्ध्र जनता को आकर्षित कर शास्त्रीजी को जनता के आदर के पात्र बनाया है। तेलुगु के प्रसिद्ध फिलूमी संगीत दिग्दर्शक और मधुर गायक श्री घंटसाला वेंकटेश्वरराविजी ने शास्त्रीजी के कई पद्यों का गान करके आन्ध्र प्रदेश के कोने कोने में उनका नाम व्याप्त कर दिया है। आज भी पापय्या शास्त्रीजी के पद्यों के रिकार्ड आन्ध्र भर में जहाँ चाहें वहाँ सुने जा सकते हैं।

अध्ययन और अध्यापन

श्री पापय्या शस्त्रीजी का जन्म स० ४ अगस्त १९१२ ई० को गुंटूर जिले के कोप्पर्ति नामक गाँव में हुआ। उनके पिता परदेशीजी आयुर्वेद के वैद्य थे। कोम्मूरु, मोपिदेवि और पेदचेरकूरु नामक गाँवों में श्री कुप्पा आंजनेय शास्त्रीजी जैसे महान् विद्वानों की सेवा में रह कर तेलुगु तथा संस्कृत भाषाओं के साहित्य का करुणश्रीने गहरा अध्ययन किया। १९३६ में आन्ध्र यूनिवर्सिटी की उभयभाषा प्रवीण की परीक्षा पास की। उसके बाद आपने हिन्दी भाषा का अध्ययन किया। आन्ध्र यूनिवर्सिटी की हिन्दी भाषा प्रवीण तथा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की राष्ट्रभाषा विशारद परीक्षाएँ पास कीं। १९४३ से १९४६ तक रेटूरु गाँव के हाइस्कूल में हिन्दी अध्यापन का कार्य करते रहे। उसके

बाद अमरावती के हाइस्कूल में हिन्दी और तेलुगु के अध्यापक नियुक्त हुए। फिर १९५१ से गुंटूर शहर के ए० सि० कालेज में तेलुगु, हिन्दी और संस्कृत के शिक्षक नियत हुए। तब से वहीं अध्यापन का कार्य बडी सफलता के साथ कररहे हैं। यद्यपि आपने अध्यापक का पेशा जीविका के लिये स्वीकार किया तथापि साहित्यिक क्षेत्र ने ही आपके जीवन में प्रधान स्थान प्राप्त कर लिया। बचपन से ही कविताएँ करते हुए "ऊर्मिला, कुंती कुमारी तथा पुष्पविलाप" नामक कविताओं को शास्त्रीजी ने पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया। इससे उन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। फलस्वरूप १९४४ ई० में करुणश्री की विभिन्न कविताओं का संग्रह "उदयश्री" के नाम से प्रकाशित हुआ। आन्ध्र जनता ने उस काव्य संग्रह का बडा आदर किया। तब से ब्रह्मश्री, कण्वश्री, मंजुश्री, उषश्री, शुभश्री और हितश्री आदि उपनामों से कई कवि कुमार आधुनिक तेलुगु काव्य जगत में पदार्पण कर तेलुगु साहित्य की अनुपम सेवा कर रहे हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि स्व० जयशंकर प्रसाद आपके आराध्य हैं। उनके "कामायनी" काव्य का तेलुगु में पद्यानुवाद आपने किया है। गुंटूर शहर में निजीमकान बना कर वहीं स्थाई रूप से निवास कर रहे हैं।

आजानुबाहु, करुण रस से विलसित वदन, लंबी ऊँची नाक, सुंदर आँखें, मुँह पर जहाँ तहाँ चेचक के दाग, शांत स्वभाव, विनम्र व्यवहार, मधुर संभाषण,

खादी की धोती, खादी का कुर्ता, कंध पर कश्मीरी शाल या रेशमी दुपट्टा, इन सब का समन्वित रूप ही करुणश्री हैं।

करुणश्री के काव्यों में "विश्वश्रेय की भावना, करुण रसका सफल चित्रण, देशभक्ति, प्रांतीय अभिमान, सामाजिक सुधार, सौंदर्य भावना, महिलाओं का अपार आदर, प्रणय, वीरों की पूजा, व्यक्ति प्रशंसा, शब्दचित्र प्रस्तुत करने की विशेष कुशलता, सरल, सरस, सुंदर मधुर तेलुगु शब्दों का चयन" आदि विशेषताएँ दृग्गोचर होतीं हैं।

विविध काव्य

करुणश्री के प्रथम काव्य संग्रह का नाम है "उदयश्री। ३४ कविताएँ उसमें संग्रहीत की गईं। परमेश्वर की प्रार्थना से काव्य संग्रह का आरंभ होता है। विश्वसंसार को चलाते चलाते थके हुए परमेश्वर को अपने हृदय सौध में पधारने का कवि निमंत्रण देते है। फिर आगे चल कर अहिंसा सिद्धांत के उपदेशक गौतम बुद्ध के दर्शन करते हैं। उनसे कवि प्रार्थना करते हैं कि इस पृथ्वी को स्वर्ग बना दो। यहाँ के घोर हलाहल को दिव्यामृत बना दो। इतने में कवि को भुवनसुंदरी, अमृतमयी, शांतिदायिनी और लोक पावनी करुणकुमारी दिखाई देती है। वह बुद्ध भगवान की लाडली पुत्री है। कवि कहते हैं कि —भगवान करुणामय है। सृष्टि करुणामय है। जीवन

करुणामय है। संसार करुणा में उत्पन्न होता है और करुणा में ही विलीन होता है। करुणा और कवि का अटूट संबंध है। अगर कवि न हो तो करुणा का कोई अस्तित्व नहीं है। ऐसे करुणा कलित हृदय से कवि करुणश्री चारों तरफ देखते हैं। जहाँ चाहें वहाँ उस करुणकुमारी के विविध स्वरूप एक एक करके कवि की आँखों के सामाने प्रत्यक्ष होते हैं।

पुष्प की आह

पहले पहल अयोध्या नगर के रनिवास में अकेली ऊर्मिला दिखाई देती है। उसके त्याग की दुहाई देकर उसे सांत्वना देने का कवि प्रयत्न करते हैं। इतने में कहीं से करुणाजनक राग सुनाई देता है कुसुम बाला का। वह कुसुम कहता है।

मा वेल लेनि मुग्ध सुकुमार सुगंध मरंद माधुरी
जीवित मेल्ल मीकयि त्यजिंचि कृशिंचि नसिंचि पोये, मा
यौवन मेल्ल कोल्लगोनि आपयि चीपुरि तोडचिम्मि, म
म्मावल पारपोतुरु गदा, नरजातिकि नीति युन्नदा ?

(हमारा मूल्यवान मुग्ध सुकुमार सुगंध मरंद माधुरी मय जीवन तुम्हारे लिये कृशित होकर नष्ट हो गया। हमारी जवानी का उपयोग कर उसके बाद झाडू से हमें लोग दूर फेंक देते हैं। नर जाती की क्या यही नीति है ?)

पुष्प की ऐसी करणा जनक आह सुनकर पाठकों का हृदय सचमुच विचलित हो जाता हैं। कवि के हृदय का मंथन शुरू हो जाता है। आखिर हृदय को

पुनीत बना कर नेत्र खोलते हैं तो देखते हैं कि कुंती कुमारी अपने कलेजे के टुकडे (कर्ण) को नव पल्लवों की शय्या पर लिटा कर नदी की लहरों में बहारही है। ज्यों ज्यों बच्चा दूर होता जाता है त्यों त्यों कुंती के हृदय की धडकन भी सुनाई देती है। वहाँ कुंती और पाठक का साधरणीकरण होता है। यह करुणश्री की कविताओं के शिल्प की बडी विशेषता है।

उसके बाद सती सावित्री, मोहन के हृदय की रानी राधा और चालीस करोड जनता को जन्म देनेवाली भारतमाता की अश्रुधारा दिखाई देती हैं। पुष्प भी यह अभिलाषा करते हैं कि दासता से विमुक्त स्वतंत्र भारतमाता के कंठहार बनें, माता के आनंदाश्रु से सिंच कर पुलकित होवें। फिर दीना हीना तेलुगु माता को देख कर कवि उसके वैभव मय प्राचीन इतिहास की याद करके आठ आठ आँसू बहाते हैं। काफी उद्वेगसे उत्तेजित हो कर कवि सभी तेलुगु भाषाभाषियों को जगाने का प्रयत्न करते हैं। इन कविताओं के अलावा लोहे के चने पकाने वाली सती अनसूया, संध्या की अरुण कांतियों में सुनहली खादी की साडी पहनी शशिरेखा, काल पुरुष के पैरों तले कुचलनेवाले दरिद्र पुष्प, सुंदर सरस शैली में मधुर तेलुगु शब्दों का चयन कर के भक्ति रसामृत की धारा तेलुगु की उपजाऊ भूमि में बहानेवाले तेलुगु भागवत-कार भक्त पोतना के हाथ की लेखिनी आदि के "उदयश्री" नामक कविता संग्रह में दर्शन होते हैं।

तेलुगु के वर्धमान साहित्यिक डा व्नंड्रूरि रामकृष्ण-माचार्यजी के शब्दों में प्रेम को काम भावना से अलग कर, स्नेह के नजदीक लाने का गौरव तेलुगु साहित्य क्षेत्र में नव कवियों को—विशेष कर श्री पापय्या शास्त्री जी को प्राप्त हुआ। इसीलिये "उदयश्री" तेलुगु की नव्य कविता के लिये युगोदयश्री है।" करुणश्री कृत इस कवितासंग्रह को २६ बार पुनर्मुद्रित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आधुनिक तेलुगु साहित्य के इतिहास में छब्बीस बार पुनर्मुद्रित होने का गौरव और किसी काव्य को प्राप्त नहीं हुआ।

उदयश्री का द्वितीय भाग

करुणश्री कृत कविताओं का और एक संग्रह "उदयश्री द्वितीयभाग" के रूप में प्रकाशित हुआ। इसमें नेताजी, भगतसिंग, तेलुगु प्रांतके अमर देशभक्त अल्लूरि सीतारामराजु, संतवेमना और हमारा गाँधी" शीर्षक व्यक्ति प्रशंसासे संबंधित कविताएँ संग्रहीत हैं। गांधीजी की हत्या के सिलसिले में व्यथित हृदय से कविने "विषक्षण, दुर्दिन, बाष्पांजलि, महाप्रस्थान, दिव्यमूर्ति और स्वर्गीय बापू" आदि कविताओं की रचना की थी। वे कविताएँ भी इस संग्रह में हैं। "पुरुषोत्तम और धर्मपरशु" नामक कविताएँ मौलिक दृष्टिकोण से लिखी गईं। कवि का विश्वास है कि सिकंदर, पुरुषोत्तम के हाथों पराजित होकर वापस लौट गये। मगर इतिहासकारोंने

सिकंदर को विजयी और पुरुषोत्तम को विजित के रूप में चित्रित किया है।" अपने इसी दृष्टिकोण को कविने "पुरुषोत्तम" नामक कविता में प्रकट किया। "धर्मपरशु" शीर्षक कविता में परशुराम की वीरता का चित्रण हिंसा पर अहिंसा की जीत के रूप में किया गया। "भंगी की लडकी" शीर्षक कविता में कवि की सर्वोदयभावना दृग्गोचर होती है। कहते हैं कि अगर एक दिन भंगी की लडकी झाडू न दे तो हमारे शहरों की सुंदरता नष्ट हो जाएगी। एक बार वह पारवाने की सफाई करने से मुँह मोड ले तो बाबू बने घूमनेवाले हम सब की कलई बात की बात में खुल जाएगी।" अंत में कवि यह कह कर कि हमारी माँ भी तो पहले भंगी का ही काम करती थी" भंगी की लडकी के प्रति पूज्य भाव उत्पन्न करते हैं।

करुणश्री कृत २४ कविताओं का और एक संग्रह "आनंद लहरी" के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें आन्ध्र राज्य और विशालान्ध्र की स्थापना के अवसर पर लिखी हुईं कुछ कविताएँ संग्रहीत हैं। बाकी कविताओं में "सीता" नामक कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गोमती के किनारे सीता की परीक्षा होती है। वह भूमाता की गोद में समा जाती है। इसी घटना को लेकर "सीता" शीर्षक कविता की रचना हुई।

विजयश्री

संस्कृत महाभारत की कथा को लेकर करुणश्रीने "विजयश्री" नामक वीररस प्रधान काव्य की रचना की। संधि का प्रयत्न जब विफल हो जाता है तब पांडव (एक युधिष्ठिर को छोड कर बाकी सब) कौरवों पर बहुत नाराज़ हो जाते हैं। तो भी अनुनय से कार्य की सफलता की अभिलाषा रखनेवाले धर्मराज नाराज़ नहीं होते। वे बंधु और गुरु जनों के संहार के लिये राजी नहीं होते। पर अपमान की धधकती आग में जलती हुई पांचाली का क्रोध कम नहीं होता। वह क्रोध भरे अपने वचनों से सबको उत्तेजित करती है। श्रीकृष्ण भी लाचारी की स्थिति में युद्ध का आदेश देते हैं। युद्ध की तैयारियाँ होती हैं। युद्ध के मैदान में अर्जुन को विषाद होता है। श्रीकृष्ण उसे कई तरह से समझा बुझाकर युद्ध के लिये सन्नद्ध करते हैं। अर्जुन फिर से रथपर आरूढ हो जाता है।" यही विजयश्री काव्य की कथावस्तु है। इस काव्य में 'यन्न भारते तन्न भारते' वाले सूत्र के अनुसार कई जगहों पर आधुनिक समस्याएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। इससे काव्य की सुंदरता पर चार चाँद लग गये हैं।

करुणश्री

पापय्या शास्त्रीजी के काव्यों में बहु प्रचलित काव्य है "करुणश्री"। जगद्गुरु, अहिंसा के अवतार भगवान बुद्ध की जीवनी से संबंधित यह

काव्य है। अभी शास्त्रीजीने करुणश्री का प्रथम भाग ही प्रकाशित किया है। बुद्ध भगवान के जन्म से लेकर राजहंस को प्राणदान देने तक की कथा का वर्णन इस काव्य में किया गया है। "सुखस्वप्न, शुभोदय, निश्वास, समुन्मेष, अनुभूति और अनुकंपा" शीर्षक छः सर्गों में यह काव्य विभाजित है।

हिमालय के वर्णन से कविने काव्य का आरंभ किया है। उसके पश्चिम में रोहिणी नदी है। उसके किनारे पर कपिलवस्तु नगर है। शाक्य नृपति वहाँ राज किया करते हैं। उनकी सती का नाम ही "मायादेवी" है। एक दिन वह स्वप्न में देखती है कि आसमान से एक नक्षत्र टूट कर उसके गर्भ में समा गया है। कुछ महीनों के बाद नृपति रानी को उनकी इच्छा के अनुसार "ललित मृदुल शय्या से विलसित रथ" पर बिठा कर मायके भेज देते हैं। समतल पथ पर सुकवि के छंद की भांति रथ आगे बढता है। रास्ते में लुंबिनीवन में अचानक रानी के गर्भ से पुत्र का उदय होता है। यह समाचार पाकर नृपति की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। देश भर में आनंदोत्सव मनाया जाता है। मगर दुर्भाग्य की बात है कि रानी का स्वास्थ्य बिगड जाता है। वह सदा केलिये आँखें मूंद लेती है। सारा राज्य उदासीन हो जाता है। मौसी की गोद में पल कर लड़का बडा बनता है। सिद्धार्थ के नाम से प्रसिद्धि

पाता है। इस तरह कथा आगे बढती है। माता की लोरियों और सिद्धार्थ के बाल्यकाल की लीलाओं का हृदयंगम वर्णन कवि करते हैं। देवदत्त के तीर से घायल राजहंस की सिद्धार्थ रक्षा करता है। इस घटना के वर्णन के बाद काव्य समाप्त हो जाता है। कवि लिखते हैं कि—

"रसमयं बैन सुकवि साम्राज्य मंदु
प्रति पदंबुनु राग संपदलुनिलुचु।"

(सुकवि के रसमय साम्राज्य के हर शब्द में राग संपदाएँ विलसित होती है।)

यह कथन श्री पापय्या शास्त्रीजी के करुणश्री काव्य के हर शब्द के लिये बिलकुल ठीक बैठता है। श्री शास्त्रीजी करुणश्री के अन्य भागों की रचना में लगे हुए हैं। जब सभी भाग प्रकाशित होंगे और बुद्ध भगवान की कथा का सांगोपांग वर्णन होगा तब वह काव्य तेलुगु साहित्य सदन का अमूल्य रत्न बन जाएगा।

कलापक्ष

महोन्नत भावपक्ष के साथ साथ उसके लिये अनुकूल मनोहर कलापक्ष का भी सुंदर चयन कवि करुणश्री ने कर लिया है। कोमलकांत पदावली, सरस राग समन्वित अनुपम झंकार करुणश्री के कलापक्ष की सबसे बडी विशेषताओं में से हैं। प्रसादगुण से इनकी कविताएँ ओतप्रोत हैं। रस छंद और

अलंकार वग़ैरह की दृष्टि से करुणश्री के काव्य अत्युत्तम बन पड़े हैं।

साहित्य की अनुपम सेवा

बच्चों के लिये सरल और सरस शब्दों में आपने "तेलुगु बाला" नामक एक शिक्षाप्रद पुस्तक की रचना की। पद्यों के साथ साथ सुंदर गीतों की रचना भी की है। उनके गीतों का संग्रह "अरुण किरणालु" (अरुण किरणें) के नाम से प्रकाशित होगया है। वे गद्य की रचना में सिद्धहस्त हैं। लगभग ५0 तक उनकी छोटी कहानियाँ हैं। "करुणामयी" नामक सुंदर नाटक की भी रचना उन्होंने की। बाण कवि के संस्कृत ग्रंथ का "कल्याण कादंबरी" के नाम से अनुवाद किया। भास कृत स्वप्नवासवदत्ता का भी अनुवाद उन्होंने तेलुगु में किया। बच्चों के लिये दर्जनों कहानियाँ लिखीं जो पुस्तकाकार में प्रकाशित हो गईं। रेडियो के द्वारा प्रसारित श्री शास्त्रीजी की नाटिकाओं में "अमरावती, मिथिला और मुव्वा" उल्लेखनीय हैं। "सुभाषिणी" नामक तेलुगु साहित्यिक मासिक पत्रिका के संपादन का कार्य तीन बरस तक बड़ी सफलता के साथ करुणश्री ने संभाला।

शुरू से नव्य साहित्यपरिषद् और साहिती समिति नामक तेलुगु की साहित्यिक संस्थाओं के साथ करुणश्री का संबंध रहा। १९६१ में दिल्ली में

आकाशवाणी की ओर से अखिलभारतीय कवियों का जो सम्मेलन हुआ उसमें तेलुगु प्रांतकी तरफ से करुणश्रीने भाग लिया। आन्ध्र यूनिवर्सिटी, उसमानिया यूनिवर्सिटी, मद्रास यूनिवर्सिटी तथा उत्कल यूनिवर्सिटी के अधिकारियोंने श्री शास्त्रीजी के "उदयश्री, करुणश्री और विजयश्री" नामक काव्यों को अपने पाठ्यक्रम में पाठ्यग्रंथों के रूप में नियत कर उनका आदर किया। आपके दर्जेनों पद्यों के ग्रामफोन रिकार्ड बने। श्री शास्त्रीजी के हर एक काव्य का पुनर्मुद्रण बार बार होता है। शास्त्रीजी तेलुगु के भक्त कवि, तेलुगु भागवतकार श्री पोतना की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"मुद्दुलुगार, भागवतमुन् रचियिंचुचु, पंचदारलो
नद्दितिवेमो गंटमु महाकविशेखर! मध्य मध्य अ
ट्लद्दक, वट्टि गंटमुन नट्टिटु गीचिन ताटियाकुलो
पद्देमुलंदु, ई मधुर भावमु लेच्चटिनुंडि वच्चुरा!"

(हे महान् कविशेखर! सुंदर मधुर भागवत की रचना करते हुए लगता है कि तुमने अपनी लेखनी (लोहे की) शक्कर में डुबोयी। अगर बीच बीच में ऐसा नहीं करते तो ताड के पत्तों पर लोहे की लेखिनी से तुम इधर उधर जो रेखाएँ खींच चुके, उन से ऐसे मधुर भाव कैसे प्रकट होंगे?)

तेलुगु के भक्त कवि श्रेष्ठ पोतना के बारे में श्री जंध्याला पापय्या शास्त्रीजी ने उपर्युक्त जो पद्य लिखा वह श्री शास्त्रीजी के साहित्य केलिये भी ठीक बैठता है। तेलुगु भाषा भाषी शास्त्रीजी के साहित्य का बडा आदर करते हैं।



पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु

आप अपने बचपन में ही कई भाषाएँ सीख कर, उन भाषाओं में कविता करने की शक्ति भी प्राप्त कर, अपनी अनुपम प्रतिभा तथा अनन्य विद्धत्ता के बल पर कम समय में ही से विविध काव्यों का सृजन कर तेलुगु के आधुनिक साहित्य सदन को सुसंपन्न बनानेवाले सरस्वती पुत्र हैं।

"जाने, यह कैसा और कब का ऋणानुबंध है! तुलसी रामायण का नित्यप्रति पाठ करते-करते आज करीब आठ साल गुजर गये। खाना-पीना छोड कर रह पाता हूँ, मगर रामचरित मानस का पाठ किये बिना नहीं रह पाता। तुलसी के काव्य मेरे जीवन में घुल मिल गये हैं। उनकी (तुलसी की) जीवनी मेरे भावना जगत् में चक्कर काट काट कर आज इस रूप में (साक्षात्कार नामक तेलुगु काव्य) साकार बन पडी है।" इस प्रकार प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी का गुणगान करने वाले तेलुगु के आधुनिक रससिद्ध कवीश्वर श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु हैं। अपनी इक्कीस वर्ष की अवस्था में तुलसी की जीवनी को तेलुगु में उत्कृष्ट काव्य का रूप देकर अपने जीवन को धन्य बनानेवाले श्री पुट्टिपर्तिजी का आधुनिक तेलुगु कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है।

बचपन और पढाई

श्री पुट्टपर्ति का जन्म शालिवाहन संवत् आनन्द वर्ष में (ता. २८-३-१९१४) हुआ। अनंतपूर जिले का पेनुगोंडा नामक गाँव उनका जन्म स्थान है। कृष्णदेवराय के गुरु श्री ताताचार्य के आप वंशज हैं। इनके माता पिता दोनों अच्छे कवि हैं। इनकी माताजी तेलुगु और संस्कृत दोनों भाषाओं में आशु कविता किया करती थीं। जन्म देने के चार वर्ष बाद ही उनकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। उस लक्ष्मी देवी के अमृतस्तन्य के प्रभाव से आप बचपन

से ही कविता करने लग गये। 18 बरस की अवस्था में "पेनुगोंडा लक्ष्मी" नामक काव्य की आपने रचना की। वह काव्य मद्रास यूनिवर्सिटी की तेलुगु विद्वान परीक्षा की पाठ्य पुस्तक नियत की गई। जब पुट्टपर्तिजी विद्वान परीक्षा में बैठे तब अपने ही काव्य का अध्ययन उन्हें पाठ्य पुस्तक के रूप में करना पडा। "तिरुपति" क्षेत्र में रह कर आपने व्याकरण तथा अलंकार शास्त्र का अध्ययन किया।

विभिन्न भाषाओं का परिचय

उसके बाद स्वाध्यन के द्वारा अंग्रेजी, लैटिन, ग्रीक, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, बंगला, हिन्दी तथा प्राकृत आदि 18 भाषाओं का आपने ज्ञान प्राप्त कर लिया। आकसफर्ड यूनिवर्सिटी के आचार्य ब्रौनिंग जैसे महान् विद्वान की सेवा में रह कर शिक्षा प्राप्त करनेवाली श्रीमति जे. बि. पिट (उन दिनों अनंतपुरम के कलेक्टर की पत्नी) के यहाँ अंग्रेजी साहित्य, ख़ास कर शेकिस्पयर के नाटकों के अध्ययन करने का सुअवसर आपको प्राप्त हुआ। फलस्वरूप आपने अंग्रेजी में "लीव्स इन दि विन्ड" Leaves in the wind नामक अपनी फुटकर कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया। तेलुगु के प्रसिद्ध आधुनिक कवि श्री विश्वनाथ सत्यनारायणजी के "एकवीरा" नामक प्रसिद्ध तेलुगु उपन्यास का अनुवाद मलयालम में आपने किया। साहित्य के अतिरिक्त कर्नाटक संगीत का

भी आपने शास्त्रीय अभ्यास किया। भरत नाट्य की भी आपने शिक्षा पाई। करीब ६000 मुक्तक गीतों की कर्नाटिक संगीत के अनुरूप आपने रचना की। कई बार पैरों में घंघरू बांध कर भरतनाट्य भी किया। नित्यजीवन में वे बडे उपासक हैं। अष्टाक्षरी का जप वे हमेशा किया करते हैं। अब तक लगभग २0 करोड अष्टाक्षरी का उन्होने जप किया। उनकी पत्नी कनकम्माजी तेलुगु, संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान रखती हैं। वे तेलुगु में कविता भी किया करती हैं।

विविध विशेषताएँ

श्री पुट्टपर्तिजीने एक बार सारे भारत का भ्रमण किया। ऋषीकेश में स्वामी शिवानंदजी के दर्शन किये। उन्होंने आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर "सरस्वती पुत्र" की उपाधि प्रदान की। आप अच्छे वक्ता हैं। घटों तक गद्य पद्य मय भाषण इस प्रकार देते हैं कि श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। आप अच्छे गायक भी हैं। आप जब भावविभोर होकर मधुरकण्ठ से गाने लगते हैं तो श्रोता रसलीन हो झूम उठते हैं।

लगभग छः फुट की ऊँचाई, आजानुबाहु, विशाल फाल, गोरा छरहरा बदन, लंबी ऊँची नुकीली नाक, अष्टाक्षरी जप से हमेशा स्पंदित होने वाले ओंठ, विशाल नेत्र और गंभीर मुख मुद्रा, संक्षेप में इन सबका मूर्तिमान रूप ही श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु हैं।

विभिन्न काव्य

श्री पुट्टपर्ति के काव्यों में "पेनुगोंडा लक्ष्मी, साक्षात्कारमु, शिवतांडवमु, अग्निवीणा, मेघदूतमु, शाजी, पाद्यमु, गांधी महाप्रस्थानमु, पंडरी भागवतमु, जनप्रिय रामायणमु तथा श्रीनिवास प्रबंधमु वगैरह उल्लेखनीय हैं। देशभक्ति, प्रांतीय अभिमान, प्रगतिवाद, प्रणयतत्व, भाषाओं और साहित्य के बारे में विशाल और उदार दृष्टिकोण और भक्ति की अनन्य धारा आप के काव्यों की प्रधान विशेषताएँ हैं। लगभग 300 वर्ष पहले 'पेनुगोंडा' वैभवशाली नगर रहा। श्री कृष्णदेवराय के जमाने में उस नगर का नाम बहुत प्रचलित हो गया। उस नगर के प्राचीन वैभव, वहाँ के योद्धाओं की बहादुरी आदिने कवि के हृदय पर इतना प्रभाव डाला कि "पेनुगोंडा लक्ष्मी" के नाम से लघुकाव्य का सृजन हुआ। वहाँ की शिल्प चातुरीने कवि को विह्वल बना दिया। एक शिल्प सुंदरी के बारे में कविने लिखा है—

> "कुलुकुन जूपुल जूचु चुन्नयदि सिग्गुन जीलिचि लोपाडु न
> व्वुललो बच्चि विंसबु नूलकोलिपि ई पूब्रोडि ये वानि भा
> वलता स्वर्ण सुमंबो नेटिकि नपूर्व प्रौढि वंचिंचु मा
> तलपुल तीक्ष्णमुलैन मंत्रमुल चेत न्वोले नाडिंचुचुन।"

(मान और लाज भरी अपनी तिरछी नजरें, शरम का पर्दा फाडती हुई चारों तरफ फेंकने वाली और ओठों से फिसलती मृदु मधुर मुसकान में कच्चा जहर घोल कर पिलानेवाली यह सुमन सुंदरी, मालूम नहीं किस कलाकार की भावलता पर विकसित स्वर्ण-सुमन है! वाह, आज भी प्रखर मंत्राक्षरों की

तरह अपार शक्ति रखनेवाली अपनी चातुरी से यह शिल्प-सुंदरी हमारे भावों को चुरा लेती है। हमें भिखारी बना कर मनमाना नाच नचा रही है। कितनी सुंदर शिल्प चातुरी है?)

फिर कृष्णदेवराय के जमाने के वैभव का प्रौढ शैली में वर्णन करके "पेनुगोंडा लक्ष्मी" नामक काव्य को कविने प्रबोधात्मक भी बना दिया। आज पेनुगोंडा की अवनत दशा देखकर कवि का हृदय व्यथित हो जाता है। निराशा से उदासीन आन्ध्र जनता को सांत्वना देते हुए कवि लिखते हैं—

अमृतरेखललो हलाहलमु गलदु
वलपु गेदंगियंदु बामुलु वसिंचु
पुडमि सुख दुःख नित्य संभूति लेक
यरुगलेदिदि प्रकृति रहस्य मम्मा"

(अमृतरेखाओं में हलाहल छिपा रहता है। संसार को आकर्षित करनेवाला केवडे का पुष्प भयंकर नाग सर्प से घिरा रहता है। यह पृथ्वी सुख दुःख की नित्य संभूति के बिना आगे नहीं बढ सकती। यही तो प्रकृति का रहस्य है।)

गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव

श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलुजी के हृदय पर गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व का अधिक प्रभाव पडा। उनके जीवन के कुछ मार्मिक प्रसंगों पर प्रकाश डालते हुए श्री पुट्टपर्तिजी ने "साक्षात्कारमु" नामक सुंदर काव्य की तेलुगु में रचना की। दीप शिखा जैसी अपनी पत्नी के जवान शरीर पर पतंग बनकर आसक्त होनेवाले तुलसी के श्रृंगारमय जीवन का सजीव चित्रण करते हुए कविने काव्य का आरंभ किया

है। तुलसी की पत्नी का नाम है ममतादेवी। उसका सौंदर्य जितना ललित है उतना ही गंभीर उसका हृदय है। तुलसी के लिये ममतादेवी का अंचल ही सब कुछ बन जाता है। लेकिन ममतादेवी का प्रेम शारीरिक नहीं है। वह तो ज्योतिर्मय है। ऐसी हालत में संघर्ष शुरू हो जाता है। एक दिन तुलसी की अनुमति लिये बिना ही ममतादेवी मायके चली जाती है। तुलसी भी कई तकलीफों की परवाह न करके जब वहाँ पहुँच जाते हैं तब ममता का हृदय दुःखसे भर जाता है। मृदु मधुर शब्दों में पति का तिरस्कार करती है। तुलसी के हृदय की प्रखर वासना की धारा की दिशा बदल देती है। भगवान रामचन्द्र का साक्षात्कार कर लौटने का उपदेश देती है। साथ साथ अपने तपोमय जीवन की ओर भी संकेत करती है। कहती है कि हे प्रभु! अगर मैं आपके पीछे चलूँ तो मेरी देह के प्रति मोह आपकी तपस्या में बाधक बनेगा। अतः मैं यहीं पर पुष्पहार की तरह रह जाऊँगी। आप सौरभ बनकर आगे बढ जावें। "फिर कहती है कि सुनते हैं, पुराने जमाने में श्रीरामचन्द्र के लिये ऊर्मिलाने अपने स्वार्थ का त्याग किया। वह अमर कीर्ति पा गई। उसी रामचन्द्र के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करनेवाली मुझ नारी को ऊर्मिला का सा ही सुगुण-सुगंधि प्राप्त हो जावे।" पत्नी के उपदेश से तुलसी का मन परिवर्तित हो जाता है। चित्रकूट पहुँच जाते हैं। तुलसी के मन में

उद्वेग कम हो जाता है। शांत और गंभीर बन जाता है। भगवान के साक्षात्कार के लिये अनुकूल बन जाता है। पवनसुत की सहायता से तुलसी राम लक्ष्मण का दर्शन करते हैं। "साक्षात्कारमु" काव्य की समाप्ति हो जाती है। इसतरह अपने "साक्षात्कारमु" नामक काव्य के द्वारा श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलुने तेलुगु के आधुनिक काव्य साहित्य को समुन्नत बनाया है।

शिवतांडव

उसके बाद श्री पुट्टपर्तिजी के "शिवतांडव" नामक गेय काव्य की बारी आती है। "शिवताण्डव" कवि पुट्टपर्तिजी का सर्वश्रेष्ठ गेय काव्य माना गया है। तेलुगु साहित्य के श्रेष्ठ कवि स्वामी शिवशंकरजी के कथन के अनुसार शिवतांडव तेलुगु सरस्वती के लिये उज्वल नूतन अलंकार है। संगीत साहित्य और नाट्य शास्त्र का यह संगम बन गया है।' शिवतांडव और शिवा लास्य के आरंभ के पहले कुशल कवि अनुकूल वातावरण का सृजन करते हैं। सुनहले सपनों की भांति मेघ शकल चारों ओर लहराते हैं। ऐसा लगता है कि मानों जलदांगनाओं का रूप धर कर स्वर्ग की अप्सराएँ शिवतांडव देखने आई हों। तरु-शाखाएँ आनंदविभोर हो होकर सुमनों की वर्षा करती हैं। भ्रमर सहायक गायकों का कार्य संभालने केलिये तैयार होते हैं। निर्झर-बालाएँ शिवतांडव देखने बेतहाशा दौडती हैं। सती संध्या कुसुंभी साडी

पहन कर लज्जा-मधुर कटाक्षपात करती है। सूर्य भगवान मानों पश्चिमी देशवासियों को इस समारोह की सूचना देने के लिये भाग जाते हैं। किसलय समूह आपस में फुस फुस करता रहता है। जहाँ देखें वहाँ शिवतांडव की ही चर्चा चलने लगती है। इस तरह के वातावरण में नंदीपाठ संस्कृत भाषा में यों शुरू होता है—

अर्द्धेन्दूत्फुल्ल केशम स्मित रुचि पटली दंशितम् गौरवर्णमू।
तार्तीयीकम् वहंतं नयन महिकुल प्रत्नभूषा वितानमू ॥
नृत्तारं भाट्टहास प्रविचलित ककुप्च क्रमानन्द कन्दमू ।
तं वन्दे नीलकण्ठं, लिदशपति शिरश्चुंबि पादाब्जपीठमू ॥

इस तरह के नन्दी पाठ और प्रमथगणों के जय जयकारों के बीच भगवान भूतनाथ नाट्य करने उठ खडे होते हैं। दशोंदिशाओं में सन्नाटा छा जाता है। तांडवनृत्य शुरू हो जाता है। कवि का हृदय झूम उठता है। सिर पर स्वर्गंगा की तरंगें लिए, उन तरंगों से चलित होनेवाले नव चांद लिए, माथे पर लटकनेवाली लटें ठीक कर पार्वती की मुसकान से प्रतिबिंबित भृकुटी के साथ तीसरे नेत्र से धधकते अंगारे गिराकर, धिमि धिमि ध्वनियों से गिरि निर्झरों को कँपा कर दसों दिशाओं में हा हा कार भर कर शिवजी नाचने लगते हैं। भवजी गाने लगते हैं। उसके बाद कवि एक एक करके भरत नाट्य संबंधी सभी विशेषताओं का शास्त्रसम्मत चित्रण करते हुए आगे बढते हैं। ज्यों ज्यों भगवान भूतनाथ ताण्डव में तल्लीन होने लगते हैं त्यों त्यों उनका अर्द्धनारीश्वर

संबंधी सौंदर्य निखरने लगता है। एक तरफ तांडव नृत्य होता है तो दूसरी तरफ लास्य नृत्य होता है। एक तरफ गंभीरता है तो दूसरी तरफ श्रृंगार की कमनीयता है। एक तरफ भभूत है तो दूसरी तरफ चित्रक है। एक तरफ खेद दृष्टि दृग्गोचर होती है तो दूसरी तरफ अभेद दृष्टि दृगोचर होती है। इस प्रकार जब तांडव नृत्य होता है तब उस से दर्शकों में बैठे विष्णु और लक्ष्मी भाव विभोर हो कर नाचने लगते हैं। देव मंडली उस समय हरि में हर का और हर में हरि का रूप देख कर विस्मित हो जाती है। तब सारा भेद-भाव लुप्त हो जाता है। "एकमेव", "अद्बितीय ब्रह्म" का निनाद यत्र तत्र सर्वत्र गूंज उठता है। शिवतांडव का प्रयोजन संपन्न होता है।

शिवा का लास्य

शिवतांडव के बाद शिवा का लास्य शुरु होता है। सरस और सुंदर शैली में गीतों की रचना होती है। लक्ष्मी माई के लास्य का सार्वभौमिक प्रभाव पडता है। प्रकृति का कण कण प्रफुल्लित हो उठता है। चौदहों भुवनों में अद्वैत का ढंका बज उठता है। लास्य से मुग्ध होकर शिवजी शिवा के हाथों से हाथ मिलाकर नाचने लगते हैं। शिवा और शक्ति एक हो जाते हैं। मुनि गण ओंकार का जप करने लगते हैं। सभी दिशाएँ निम्नलिखित स्तोत्र पाठ से गूंज उठती हैं।

देवादि देवाय, दिव्यावताराय
निर्वाणरूपाय, नित्याय गिरीशाय

गौर्येनमो नित्य सौभाग्यदायै !
तुरीयार्थ दायै धराकन्यकायै !!

श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्यजी का "शिवतांडव" नामक गेय काव्य समाप्त हो जाता है। भाव पक्ष और कलापक्ष सभी दृष्टियों से पुट्टपर्तिजी का यह गेय काव्य तेलुगु के गेय साहित्य भंडार का अनमोल रत्न बन पडा है।

क्रांति का संदेश

भक्ति प्रधान काव्यों की रचना करके तेलुगु के प्राचीन महान् कवियों का अनुकरण करनेवाले श्री पुट्टपर्तिजी आज के समाज को भूल नहीं सकते। दीन दरिद्र जनता की करुणाजनक कथाओं से कवि का हृदय द्रवित हो जाता है। असमानता को दूर करके सुख शांतिमय नवीन समाज के निर्माण केलिये आप कलम चलाते हैं। फलस्वरूप "अग्निवीणा, और मेघदूत" आदि आपके प्रगतिवादी काव्य प्रकाशित हुए। आपने छायावाद संबंधी कविताओं की भी रचना की। आपकी कुछ प्रगतिवादी और छायावादी कविताओं का संग्रह ही अग्निवीणा है। उसमें आपकी श्रीमती की भी कुछ कविताएँ संग्रहीत की गई हैं।

मेघदूत

"मेघदूत" का नाम सुनते ही महाकवि कालिदास कृत "मेघदूत" का काव्य स्मरण हो आता है। लेकिन दोनों में काफी अंतर है। पुट्टपर्ति कृत मेघदूत का नायक व्यथितहृदयवाला विद्रोही युवक है।

वह पूंजीवाद के खिलाफ विद्रोह करके निष्ठुर अधिकारियों के द्वारा जेल में डाल दिया जाता है। अपनी पत्नी से दूर जेल में बंद रहनेवाला वह राजनैतिक कैदी है। इस काव्य का मेघ विशाल आन्ध्र प्रदेश में यात्रा करता है। जाति-पांति का भेदभाव, ईर्ष्याद्वेष, नैतिक पतन, धन और अधिकार के उन्माद से प्रेरित शासकों के अत्याचार, गरीबों की करुणा जनक दशा और अनाथों के दुःख आदि का सजीव चित्रण इस काव्य में किया गया है। मेघ को कवि आन्ध्र प्रदेश भर में भेज कर के यहाँ के प्रसिद्ध पुण्य क्षेत्र, कवि, काव्य और नगरों की तारीफ कर, यहाँ के दोषों का खंडन करते हैं। इससे यह काव्य प्रबोधात्मक बन पडा है। तुंगभद्रा, कृष्णा, गोदावरी आदि नदियाँ, विजयनगर साम्राज्य का प्राचीन वैभव, कृष्णदेवराय की साहित्य सेवा, प्रसिद्ध तिरुपति क्षेत्र का पावन चरित, नेल्लूर, गुंटूर, तेनाली, राजमहेन्द्री, अनकापल्लि, विजयनगर, बोब्बिलि तथा श्रीकाकुलम आदि प्रसिद्ध शहरों की विशेषताएँ, कूचिपूडि गाँव का भरतनाट्य, आन्ध्र प्रांत के विविध गाँव, यहाँ की जनता के आचार विचार और यहाँ की देवियों का नख शिख वर्णन आदि सभी का चित्ताकर्षक और सजीव वर्णन "मेघदूत" काव्य में किया गया है।

पंडरी भागवत

उपर्युक्त काव्यों के अलावा श्री पुट्टपर्ति की फुटकर कविताएँ सैकडों की संख्या में और भी हैं। उनके

बाकी उल्लेखनीय काव्यों में "पंडरी भागवत" एक है। तेलुगु के छोटे से छंद "द्विपद" में इस काव्य की रचना की गई है। इसमें कुल २४ हजार द्विपद छंद हैं। इस काव्य की रचना में संत तुकाराम, नामदेव तथा एकनाथ वगैरह महाराष्ट्र के संतों के काव्योंने बडी मदद पहुँचाई। "श्रीनिवास कल्याणम्" नामक अपने बृहद् काव्य में श्री पुट्टपर्तिजीने बालाजी के परिणय की कथा का वर्णन किया है।

जनप्रिय रामायण

श्री पुट्टपर्तिजीने कई भाषाओं का अध्ययन करके उन सब भाषाओं की रामायणों का विशेष अनुशीलन किया। तुलसी रामायण का चौपाई छंद उन्हें पसंद आया। उस छंद का प्रयोग करके आजकल आप "जन प्रिय रामायण" की रचना तेलुगु में कररहे हैं। उसमें कई जगहों पर मौलिकता से आप काम लेरहे हैं। चरित्र चित्रण पर आप अधिक ध्यान देरहे हैं। अब तक की रामायणों में अंगद के चरित्र की विशेषताओं पर कवियोंने कम ध्यान दिया है। अंगद के जीवन में कई हृदय विदारक घटनाएँ घटित होती हैं। अपने पिता की हत्या करानेवाले की सेवा में अंगद को रहना पडता है। अपनी माता के साथ ब्याह करनेवाले की नौकरी करने का मौका उसे मिलता है। ऐसे वातावरण में अंगद के हृदय में जो बडबानल उत्पन्न होता है उसका सहज वर्णन कविने अपनी "जन प्रिय रामायण" में किया है।

जब यह रामायण तेलुगु में प्रकाशित होगी तब तेलुगु के रामकथा संबंधी साहित्य पर चार चांद लग जाएँगे।

विविध रचनाएँ

श्री पुट्टपर्तिजी स्वयं अच्छे गायक हैं। इसीलिये आपके सभी काव्य "पाठ्ये गेयेच मधुरं" बन पडे हैं। पद्य की रचना में आप जितने सिद्धहस्त हैं उतने ही गद्य की रचना में भी हैं। "अभय प्रदानम्, प्रतीकारम्, सरस्वती सन्मानम्, विजय तोरणम" आदि आपके प्रसिद्ध उपन्यासों में से हैं। वे अच्छे समालोचक भी हैं। प्रबंध की नायिकाएँ, भागवतोपन्यासमुलु (तेलुगु भगवत संबंधी भाषण), रायलनाटि रसिकता जीवनमु (कृष्णदेवराय के जमाने का रसिकतामय जीवन), रामकृष्णुनि रचना वैखरी (तेलुगु के प्रसिद्ध प्राचीन विकट कवि रामकृष्ण की काव्य कला) वगैरह आपके आलोचनात्मक ग्रंथों में से उल्लेखनीय हैं। साहित्य अकादमी के आदेशानुसार धर्मानंद कौशांबी कृत मराठी ग्रंथ "बुद्ध भगवान" का आपने तेलुगु में सफल अनुवाद किया है। "विजयनगर का इतिहास, दक्षिण भारत का इतिहास और दक्षिण की भाषाएँ" इन विषयों का आपने गहरा अध्ययन किया है।

विभिन्न नौकरियाँ

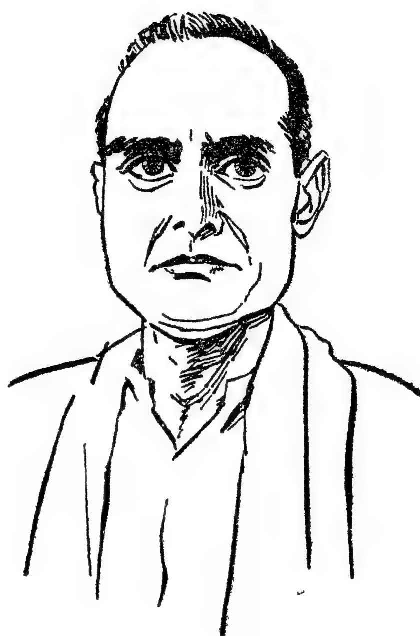
अध्यापन के कार्य में ही आपके जीवन का ज्यादा समय बीत गया। कडपा शहर के रामकृष्ण

हाइस्कूल, अनंतपुरम शहर के गवर्नमेंट कालेज, प्रोद्दुटूर शहर के हाइस्कूल में तेलुगु के अध्यापन का कार्य बडी सफलता के साथ आप करते रहे। तिरुवांकूर के विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों के द्वारा निमंत्रित होकर चार बरस तक मलयालम की निघंटु के निर्माण कार्य में लगे रहे। दिल्ली की लिंग्विस्टिक लाइब्ररी में लाइब्रेरियन का कार्य एक साल तक संभालने का सुअवसर आपको प्राप्त हुआ।

स्वागत और सम्मान

आन्ध्र प्रदेश की जनताने आपका कई बार सम्मान किया। नंद्याला शहर के लोगोंने १११६ रुपये देकर आपका सम्मान किया। हिन्दुपूर के लोगोंने हाथीपर बिठाकर बडा जुलूस निकाल कर आपका आदर किया। आन्ध्र की जनता बार बार आपकी आर्थिक सहायता करती रहती है। उसी से आपके परिवार का पालन पोषण होता है।

इस प्रकार छोटी अवस्था में ही कई भाषाएँ सीख कर, उन उन भाषाओं में कविता करने की भी शक्ति प्राप्त कर अपनी अनुपम प्रतिभा तथा अनन्य विद्वत्ता के बल पर अल्प समय में ही अपने काव्यों के द्वारा तेलुगु के अधुनिक साहित्य सदन को सुसंपन्न बनाकर उच्चश्रेणी के कवियों में स्थान पानेवाले 'सरस्वती पुत्र' श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलुजी से तेलुगु साहित्य को और भी कई आशाएँ हैं।



कालोजी नारायण राव

आप सामाजिक अंधविश्वास और राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि के विरुद्ध किसी प्रकार के दुराव-छिपाव या पक्षपात के बिना जोरों से आवाज उठा कर अपने काव्यों के द्वारा संसार को "जिओ और जीने दो" का संदेश देनेवाले आन्ध्र प्रदेश के आधुनिक स्पष्टवादी कवि हैं।

साहित्य जगत् में प्रधान रूप से दो प्रकार के कवि देखने में आते हैं। बुद्धिवादी और हृदयवादी। बुद्धिवादी कवियों की कविता शैलीगत सौन्दर्य को लेकर चलती है। मगर हृदयवादी कवियों की कविता में भावपक्ष की प्रधानता रहती है। उनके हृदय से निकलने वाले उद्‌गार कविता का रूप धारण करते हैं। ऐसी कविता में शैलीगत सौन्दर्य का उतना आधिक्य नहीं होता जितना कि भावपक्ष का होता है। सीधे-सादे, सरल, मगर स्फूर्तिदायक, नपे तुले शब्दों में उनके विचार व्यक्त होते हैं, जिनका प्रभाव सीधे पाठकों व श्रोताओं के दिलों पर पड़ता है। छिपाव-दुराव ऐसे कवियों की प्रवृत्ति के विरुद्ध है। किसी की परवाह वे नहीं करते। हिन्दी साहित्य के कबीर तथा तेलुगु साहित्य के वेमना इसी कोटि के कवि हैं। वेमना का आविर्भाव अठारहवीं सदी के पूर्वभाग में तेलुगु प्रांत में हुआ। तत्कालीन समाज में शैव-वैष्णवों की फूट, धर्म के नाम पर पाखंडता, भ्रष्टाचार, वेश्यागमन, मदिरापान, चरित्रहीनता, ऊँच-नीच का भेदभाव, परनिन्दा आदि दुष्प्रवृत्तियों का बोलबाला रहा। अज्ञान और नैतिक पतन का नग्न नृत्य होता था। वेमना ने निर्भीक होकर समाज के पाखण्डियों और अत्याचारियों का घोर विरोध किया। उन्होंने अपने उपदेशों के प्रचार के लिये हास्यरस को मुख्य साधन बनाया था। वेमना कहते हैं —

सकल तीर्थंबुल सकल यज्ञंबुल
तलल्लु गोरगकुन्न फलमुलेद्दु

मंत्र जलमु कन्न मंगलिजल मेच्चु
विश्वदाभिराम विनुर वेमा ॥

(सभी पवित्र तीर्थों में तथा यज्ञ आदि शुभ कर्मों के आरम्भ में शिरोमुंडन करवाना पड़ता है। उसके बिना फल की प्राप्ति नहीं। मंत्र जल से बढ़ कर नाई का जल ही पवित्र लगता है।)

इस प्रकार वेमना के पद्य लोकजीवन के साथ हिल मिल कर जनता के लिये पथ प्रदर्शक बन गये हैं।

तेलुगु के कबीर

तेलुगु के आधुनिक कवियों में श्री कालोजी नारायणराव का भी वही स्थान है जो हिन्दी साहित्य में कबीर का और तेलुगु के प्राचीन कवियों में वेमना का है। कालोजी तेलुगु प्रान्त के आधुनिक वेमना माने जा सकते हैं। उनकी कविता में जोश है। खरोश है। प्राचीन काल से भी बढ़ कर आज के युग में ज्यादा विषमता आ गई है। ईर्ष्या, द्वेष, दंभ, रूढ़िवादिता, राजनैतिक भ्रष्टाचार तथा सामाजिक दुराचारों के विरुद्ध कालोजी ने आवाज़ उठाई है। उनकी कविता दंभियों और दुराचारियों के लिये जबर्दस्त चुनौती है। जो कुछ वे देखते हैं, उसे स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देते हैं। उनको किसी का भय नहीं। किसी के प्रति पक्षपात की भावना नहीं। क्यों कि उनका अपना स्वार्थ कुछ नहीं है। इसीलिये वे स्पष्टवादी कवि बन सके हैं। वे जो कुछ कहते हैं जनता की भाषा में कहते हैं। इसी से जनता उनका आदर करती है। उनकी कविताओं को पसन्द करती है।

अद्‌भुत अभिलाषा

कालोजी अपनी अभिलाषाओं को यों व्यक्त करते हैं —

> नादाल मुनिगि आनंदाल तेल
> वासनल दीर्चु सुवासनल ग्रोल
> जन्मिचेदनु देवसर्पमै नेनु ॥

(नादों में डूब कर आनन्द में तैरने सुगन्धियाँ प्राप्त कर वासनाएँ तृप्त करने अब मैं नवजन्म लूँगा। देव सर्प बन जाऊँगा।)

लौकिक नादों से कवि को आनन्द प्राप्त नहीं होता। सुगन्धियों की प्राप्ति से भी वासनाएँ तृप्त नहीं होती। लौकिक रूप से जिन सांसारिक नादों में वे डूब रहे हैं उनमें हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष और कपट आदि भरे हुए हैं। इसलिए कवि नया जन्म लेकर देवसर्प बन जाना चाहते हैं। क्योंकि सर्प नादों से आकर्षित होता है। अपने प्राणों की परवाह तक न करता हुआ नाद पर रीझ कर मंत्र मुग्ध हो नाचने लगता है। ऐसी तल्लीनता की अनुभूति मानव प्राप्त नहीं कर पाता। अतः कवि देवसर्प बनकर सच्चा आनन्द पाना चाहते हैं। इच्छाओं की तृप्ति चाहते हैं। दुःखोंके कारण सुखों से वंचित होना नहीं चाहते। उन्हें दुखों से भय नहीं है। "नर हूँ मैं, नर हूँ मैं" शीर्षक कविता में कहते हैं—

> दप्पितीर ग्रोलनिदे विप्पारदु मनसु मब्बु
> तलपुलन्नि तीरनिदे तलुपुलेवि तेरचिकोनवु

बिडिय पडुचु जीविचिन एडदमोग्ग विकसिंपदु
मुदमुतीर आडनिदे एद कदलदु कदलिपदु ॥

(जब तक पानी पीकर प्यास नही बुझाते तब तक मन रूपी बादल छँट नहीं सकते। जब तक इच्छाओं की तृप्ति नही होती तब तक हृदय के द्वार खुल नही सकते। जब तक शर्माते हुए जीना नहीं छोड़ेंगे तब तक दिल की कली नहीं खिल सकती। जब तक मुदित होकर नहीं नाचेंगे तब तक दिल स्वयं न हिलेगा और न हिलाएगा।)

इसलिये कवि मन की सभी इच्छाओं को तृप्त कर अनेक जन्म लेते हुए जीवन में अनेक अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं। इसीलिये देवसर्प बन जाना उन्हें अधिक पसंद है। यहाँ सर्प का देवत्व ही कवि की निर्मल अभिलाषा का प्रतीक है। मगर इस तृप्ति के लिये दूसरों के सुख में बाधा डालना वे नहीं चाहते। स्वयं जीना चाहते हैं और दूसरों को भी सुख से जीने देना चाहते हैं—

"संतसमुग जीविंपग सततमु यत्नितु गान्नि
एन्तटि सौख्यानि कैन इतरुल पीडिपलेनु"

(संतोष के साथ जीने का मैं सतत प्रयत्न करता हूँ। मगर वह जितनाभी बडा सुख क्यों न हो, उसके लिए अन्यों को कष्ट नही दे सकता।)

अत्याचारों का खंडन

इस प्रकार तेलुगु के आधुनिक काव्य क्षेत्र में "जिओ और जीने दो" का सन्देश मानव जगत् को कालोजी देते हैं। पृथ्वी पर होने वाले अत्याचार देख कर कवि का हृदय व्यथित हो जाता

है। 'ज्ञात नहीं, मेरे दिल में इतनी व्यथाएँ क्यों उठती हैं?' शीर्षक पद में वे बताते हैं—

अवनिपै जरिगेटि अवकतवकलु जूचि
एंदुको नाहृदिनि इन्नि आवेदनलु?
परुल कष्टमु जूचि करिगि पोवुनु गुंडे
माय मोसमु जूचि मंडिपोवुनु ओल्लु
पतित मानवु जूचि चितिकि पोवुनु मनसु।
एंदुको नाहृदिनि इन्नि आवेदनलु।

(अवनी पर होने वाले अत्याचार जब मैं देखता हूँ, तब ज्ञात नहीं मेरे दिल में इतनी व्यथाएँ क्यों उठने लगती हैं। अन्य जनों के कष्टों को देख कर मेरी छाती जलने लगती है। धोखेबाजी देख के तन में आग लग जाती है। पतित जनों को देख कलेजा चूर-चूर हो जाता है। ज्ञात नहीं मेरे दिल में इतनी व्यथाएँ क्यों उठती हैं?)

फिर कहते हैं—

अन्यों की गलती सुधार नहीं सकता। सही पथ मैं दिखा नहीं सकता। भूल-चूक जो करते हैं, उनको दण्ड नहीं दे सकता। जग में जो कष्ट उठाते हैं, उनकी रक्षा कर नहीं पाता। फिर भी ज्ञात नहीं मेरे दिल में इतनी व्यथाएँ क्यों उठती हैं।

* * *

भूल-चूक मैं सुधार नहीं सकता,
ऐसे लोगों-सा सुख भी नही पा सकता
जो पर-दुख देख कर आँख मूँद कर चलते हैं,
ज्ञात नहीं मेरे दिल में इतनी व्यथाएँ क्यों उठती हैं?

इसी वेदना के कारण कालोजी के कंठ से कविता फूट निकली। उनकी कविताओं का संग्रह "ना

गोडव" (मेरा दुखडा) के शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। कालोजी का दुखडा अकेले उन्हीं का नहीं है। वह तो जन-जन का दुखडा है जो उनके स्वर में मुखरित हो उठा है। यद्यपि परिमाण की दृष्टि से कालोजी ने कम लिखा है, मगर जो कुछ लिखा है, सो ठोस लिखा है। इसीलिए तेलुगु भाषा-भाषी उनका बड़ा आदर करते हैं।

क्रांतिकारी योद्धा

कालोजी का जन्म सन् १९१४ ई० में ओरंगल जिले के हनुमकोंडा शहर में हुआ। तेलुगु के साथ-साथ उर्दू, फारसी, मराठी और अंग्रेजी का भी उन्होंने अध्ययन किया। उर्दू में कविता भी करते हैं। वे एडवोकेट हैं। आपके बड़े भाई श्री कालोजी रामेश्वर-रावजी भी सफल वकील हैं। वे भी उर्दू के शायर हैं। इन दोनों भाइयों का आदर्श प्रेम काफी विख्यात है। शुरू से कालोजी का सम्बन्ध तेलंगाणे के राजनैतिक अन्दोलन के साथ रहा। तीन बार वे जेल गये। जेल में कड़ी यातनाओं का सामना उन्होंने किया। ओरंगल जिले से निजाम सरकार द्वारा छः मास के लिये निष्कासित भी किये गये। स्वतंत्रता की लड़ाई में हमेशा वे आगे रहे। कालोजी आरम्भ से ही दलबंदियों से दूर रहे। इसलिये आजादी की प्राप्ति के बाद पदवियों के शिकार में वे सफल नहीं हो सके। आन्ध्र प्रदेश के निर्माण के बाद अध्यापकों के चुनाव

क्षेत्र से प्रादेशिक लेजस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गये। तेलंगाणा लेखक संघ के वे अध्यक्ष रहे।

दुबला-पतला शरीर, गोरा रंग, भोलाभाला शिशु तुल्य किताबी चेहरा, नुकीली लम्बी नाक, पतले होंठ, चमकदार आँखें, बातों में स्पष्टवादिता, तर्क युक्त संभाषण द्वारा अपरिचितों को भी आकर्षित करने की शक्ति, भावुक हृदय, साथ-साथ लापरवाही की रेखाएँ संक्षेप में कालोजी का यही परिचय है।

देशभक्ति

कालोजी अनन्य देश भक्त हैं। स्वतंत्र और संपन्न भारत के दर्शन की अभिलाषा से प्रेरित होकर उन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण किया। उनकी दृष्टि में ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो अपनी मातृभूमि को प्यार न करता हो। मातृभूमि का गुण गान करते हुए वे कहते हैं—

मातृदेशमु माटमुच्चट
मुदमु गूर्पदु मदिकि ननियेडि
परमनीचुडु धरणि नंतट
गलय वेदकिन गाननगुना?

(मातृभूमि की महिमा से जो मुदित नही, जो कहे कि वतन पसंद नहीं, परम नीच है वह, सारा जग छान डालें, पर ऐसा जन मिलेगा नहीं।)

अपनी मातृभूमि हैदराबाद रियासत पर कवि ने ध्यान दिया। वहाँ की निरीह, मूक जनता की गरीबी और शासकों की ऐयाशी व तानाशाही देख कर उनका दिल दहल उठा। गुलामी की बेडियाँ

देख कर उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। अत्याचारी शासकों के विरुद्ध वे विद्रोह कर बैठे। मूक जनता के हृदय की तड़पन कालोजी के स्वर में जन भाषा में मुखरित हो उठी। नवाबों के अत्याचारी दूतों को देख कर वे गरज उठे।

बन्द करो! बन्द करो!
अत्याचार अब बन्द करो!
रे मदोन्मत्त अधिकारी!
आगे बढ़ना सीमा से, अब बन्द करो!
रक्षण के मिस भक्षण करना
अधिक हो गया, बन्द करो!
चोर, लुटेरे! राजा के बल,
लूट मार अब बन्द करो!
नर पिशाच बन न्याय राज्य का
गला घोंटना बन्द करो!
कविता से तव जगे नहीं जन, तो
कालोजी! कलाम अपना बन्द करो!

शासकों को कवि कई तरह से समझाते हैं। अन्त में अपना फैसला भी सुना देते हैं। कहते हैं कि—

भस्म बनाने वाला वर पा भस्मासुर ही भस्म हुआ
निर्भय होकर होनहार कालोजी कवि कह देगा।

फिर भी अधिकारियों के अत्याचार बढ़ते ही गये। तब वे क्रोध से फुफकार उठे। 'काटेसि तीराले' (डसके ही छोड़ना) शीर्षक अपनी कविता में कहते हैं—

हमारे घर द्वार जलाने वाले
हमारी स्त्रियों का मान लूटने वाले
हमारे बच्चों के प्राण लेने वाले

हम सब को कैद करने वाले
मानवाधम और मंडलाधीशों
को याद रखो, मत भूलो।

* * *

समय मिलने पर दुष्टों को डस के छोडो। क्षमा का नाम न लो। सतियों का अँचल पकडने वाली उँगलियों को अग्नि में भस्म कर दो।

कथनी और करनी

आखिर कवि की मातृभूमि हैदराबाद रियासत स्वतंत्र हो गई। कवि की कामना पूर्ण हुई। उनके "चिर अभिलषित विशाल आन्ध्र" का अवतरण भी हो गया। परन्तु विशाल आन्ध्र प्रदेश या स्वतंत्र भारत को देख कर कवि खुश नहीं हैं। क्योंकि आज का लोक विचित्र हालत में है। "लोक" शीर्षक अपनी कविता में कहते हैं कि "मन में कुछ, मुँह में कुछ है। कथनी एक, करनी एक है। मन की बात जो स्पष्ट कहें, जो कहें सो करके दिख ला दें, ऐसे जन सब मूर्ख माने जाते हैं। इस जग में उनके लिये जगह नहीं है।

आज का गणराज्य

कालोजी लोगों को दो भागों में विभाजित करते हैं। एक हैं कुटिल और दूसरे हैं बुद्धू। कवि कहते हैं कि "जग में बस दो ही दो हैं। चतुर जनों के विलास के हित बुद्धू कच्चामाल है। निरीह जन की लूट-मार की होड़ चाणक्यों में लगी है। भोली-भाली जनता

कुटिलों की नज़र में तृण के समान है। मेधावियों का कार्याचरण सामान्य जनता के लिये मरण बनता है। जनराज्य कहो, गणराज्य कहो, चतुरों के लिये मात्र खिलौना है।" इस तरह की असमानता का खण्डन करके इनसान को इनसान बनने का संदेश देते हैं।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद सुराज्य के दर्शन न करके कवि बड़े दुःखी होते हैं। भारत की जनता का गिरा हुआ नैतिक स्तर देखकर कवि व्यथित हैं। ओहदों और पदों के पीछे लपलपाती जीभ लिए होड लगा कर दौड़ने वाले लोगों को देख कर कवि कहते हैं—

फटा पुराना चिथड़ा हो
साम्राज्य का टुकड़ा हो
मुर्ग़ी का ही अंडा हो
मूल्यवान वह कोहिनूर हो
उपज़ाऊ मिट्टी हो
या वह प्लाटीनम हो
'बस' का चाहे सीट हो
या ब्रह्माजी का रथ ही हो
होड लगा कर झगड़ें तो
जो भी हो! जो भी हो!
सभी बराबर, सभी बराबर!

*   *   *

व्यापारियों की मंडी हो
तपस्वियों की कुटिया हो
धोबियों की घाट हो
संसद का ही सीट हो
वेश्याओं का चाहे घर हो

साधुओंका चाहे मठ हो
चौच का वह चाहे स्थल हो
चाहे वह तीर्थ स्थल हो
होड लगा कर झगड़ें तो
जो भी हो ! जो भी हो !
सभी बराबर, सभी बराबर ॥

और एक कविता में कहते हैं कि—

"आज हर व्यक्ति एक प्रवक्ता है।
वह समझता है कि अपने कथन में ही ज्ञान का भण्डार है।
शारीरिक श्रम निंद्य है।
वह कलाविदों का काम नहीं है।
प्राचीन भारत के वैभव का,
जहाँ तहाँ गुण गान करें तो बस है।

रूस और अमेरिका के पथ पर सर्वोदय अब फल फूल रहा है। पूज्य बापूजी के नाम पर बहुत कुछ हो रहा है। इससे कवि दुःखी हैं। बापूजी को याद करके कहते हैं कि "हे बापूजी ! हम तुम्हारा सम्मान खूब कररहे हैं। पत्थर की प्रतिमाएँ बना कर जहाँ तहाँ तुम्हें स्थापित कर चुके हैं। नाम तुम्हारा लेते हैं, अपना उल्लू सीधा करते हैं। तस्वीरों में तुम्हें बन्द कर खूँटी पर लटका चुके हैं।" फिर आगे चल कर कवि इस स्थिति में परिवर्तन की आवाज़ लगाते हैं। कहते हैं—

पुराना पर्दा उतार दो
नया पर्दा अब लगा दो।

प्राचीन खेल पसन्द नही
पुराना माल बिकता नही ।
लेबिल पैकिंग बदल दो
स्टेजों के सेट बदल दो ॥

इस प्रकार कालोजी के नीतिदायक और प्रबोधात्मक गीत बड़े प्रभावशाली साबित हुए हैं।

उपर्युक्त कविताओं के अलावा कालोजी की "जंटसिंगिणुलु, नेताजी, कन्नीटिलो एन्नेन्नो कलवु (आँसू में बहुत कुछ हैं), कोकिल, संध्या रूप वगैरह कविताएँ काव्य सौंदर्य की दृष्टि से भी उत्तम बन बड़ी हैं।

प्रगतिवादी भाषा का प्रयोग

तेलुगु के आधुनिक साहित्य में प्रगतिवाद का वैसा ही प्रचलन हुआ जैसा कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में हुआ है। तेलुगु के प्रगतिवादी कवि भावों की अभिव्यंजना में जो प्रगति ला सके, वह भाषाके क्षेत्र में नहीं ला सके। कई प्रगतिवादी कवि भी तत्सम शब्दों से काम चलाते रहे। लेकिन कालोजी ने भाषा का प्रगतिवादी रूप अपनी कविताओं के द्वारा प्रस्तुत किया। तेलुगु में ठेठ तेलुगु शब्दों की संख्या कम नहीं है। उन शब्दों के प्रयोग से भाव के साथ-साथ भाषा में भी पटुता और सरलता आ जाती है। जनता की समझ में भाव जल्दी आ जाता है। भाषा तथा काव्य के विषय में कालोजी के अपने विचार अलग हैं। "सरस्वती भक्तुल्लारा!" (हे सरस्वती

के भक्तो !) शीर्षक कविता में केवल व्याकरण के नियमों पर ही ध्यान देते रहने वाले हठवादियों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि कविता के करोड़ों लक्षणों में से व्याकरण शास्त्र भी एक है। परन्तु उसी के सूत्रों को सब कुछ माननेवाले हाहाकार मचाते हैं। वास्तव में कविता में उदात्त भावों की झांकी और हृदयों के स्पंदन का ज्यादा महत्व रहता है। इस बात पर गौर करना आवश्यक है।

अपनी स्पष्टवादिता तथा प्रभावोत्पादक कविता शक्ति के द्वारा कालोजी तेलुगु के आधुनिक कवियों में विशेष स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

लुई आरगाँ

कालोजी के गेय काव्य का आविष्करण सन् १९५३ ई० में अलंपुरम के प्रसिद्ध सारस्वत सम्मेलन के अवसर पर तेलुगु के प्रगतिवादी कवि "श्री श्री" के हाथों हुआ था। उस अवसर पर श्री श्री ने अपने भाषण में कहा था कि युद्ध के अवसर पर फ्रांस के सभी कवि जहाँ-तहाँ भाग गये थे। परन्तु लुई आरगाँ नामक कवि अकेले ही वहाँ रह कर अपनी कविताओं के द्वारा जनता में विश्वास की भावना बिठाने का प्रयत्न करता रहा। कालोजी उसी लुई आरगाँ जैसे कवि हैं। उसी की तरह कालोजी ने भी अज्ञात रह कर लेखनी चलाई है। तेलंगाणा के मूक जीवों के हृदय को अपनी कविताओं में कालोजी ने मूर्त किया है।"



आरुद्र

आप आज के मानव-प्रकृति रूपी काव्य में आवश्यक सुधार वगैरह कर नये जगके सुखांत काव्य को पुनः छपवाने की अपनी आशा और अभिलाषा को नई शैली में व्यक्त करनेवाले तेलुगु के आधुनिक काव्य जगत् के प्रयोगवादी कवि हैं।

परमेश्वर के प्रिंटिंग प्रेस से
प्रकाशित काव्य यह मानव जग का
इसमें हैं अनगिनत गलतियाँ
इन्हें सुधारें हम लोग यहाँ ॥

* * *

रूढिग्रस्त जनों ने सनकी नियमों की
जिल्द बनाई समाज ग्रन्थ की
टाँके इसके ठीक ठाक कर
पुख्ता जिल्द बनावें आज ॥

* * *

प्रूफरीडर हैं युग पुरुष यहाँ
वे सुधारते हैं जगत् काव्य को
परिस्थितियों के कंपोजिटर सब
चाहते हैं संशोधन करें, पर टाइप नहीं ॥

* * *

नये टाइप का सृजन करेगे
नव-जग-काव्य हम छपवाएँगे
तब तक चुप हम नहीं रहेंगे
शुद्धि-पत्र हम तैयार करेंगे।

* * *

"शुद्धि-पत्र" शीर्षक अपनी कविता में, नव जग के सुखान्त काव्य को छपवाने के इच्छुक प्रयोगवादी कवि श्री आरुद्र तेलुगु के आधुनिक कवियों में विशेष स्थान रखते है। आरुद्र का पूरा नाम भागवतुल सदाशिव शंकर शास्त्री है। आरुद्र उनका उपनाम है।

नया स्वर

स. ३१–८–१९२९ ई० को विशाखपट्टणम शहर में उनका जन्म हुआ। तेलुगु के प्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि श्री श्री के आप भानजे हैं। इन्होंने विशाख-पट्टणम के ए. वि. एन. कालेज तथा विजयनगरम कालेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की। १९४२ में "भारत छोड़ो" आन्दोलन के अवसर पर आरुद्र ने कालेज की पढ़ाई छोड़ दी। स्वतंत्रता के संग्राम में भाग लिया। १९४३ में इंडियन ऐरफोर्स में भर्ती हो गये और पेशावर भेज दिये गये। १९४६ में उन्होंने नौकरी भी छोड़ दी। कुछ दिनों तक विशाखपट्टणम में फोटोग्रफी का काम करते रहे। वहाँ से मद्रास पहुँच कर "आनंदवाणी" नामक तेलुगु पत्रिका के संचालन में एक वर्ष तक हाथ बँटाया। उसके बाद वे फिल्मी दुनियाँ में पहुँच गये। वहाँ वे बहुत प्रसिद्ध हो गये। आज तक ६0 से ज्यादा फिल्मों के वे संवाद लेखक या गीतकार रह चुके हैं। उनके कई फिल्मी गीत आन्ध्र प्रदेश में लोकप्रिय हो चुके हैं। १९५९ में तेलुगु की सफल कहानी लेखिका रामलक्ष्मी जी से आरुद्र का परिचय हुआ। बाद दोनों का विवाह हुआ। आजकल सपरिवार आरुद्र मद्रास में रहते हैं। संस्कृत, तेलुगु, अंग्रेजी और तमिल से आप अच्छी तरह परिचित हैं। हिन्दी का भी थोड़ा बहुत ज्ञान रखते हैं। तेलुगु के आधुनिक काव्य जगत् में आरुद्र का स्वर नया है।

स्वरूप और स्वभाव

हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ शरीर, गोरा रंग, सुडौल मुख, बड़ी-बड़ी आँखें, काली-काली छोटी मूंछें, मुस्कुराता हुआ चेहरा, धीमी और स्पष्ट आवाज, आकर्षक संभाषण, सरल और विनम्र स्वभाव, क्रांतिकारी विचार, ढीला-ढाला रेशमी कुर्ता, सफेद रंग का पाजामा, हमेशा सुलगता हुआ कीमती सिगरेट, संक्षेप में कवि आरुद्र का यही परिचय है।

त्वमेवाहम्

आरुद्र की कविताओं के दो संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। (१) त्वमेवाहम् (२) सिनीवाली। हैदराबाद रियासत में जब रजाकारों के अत्याचार बढ गये तब जनता ने विद्रोह कर दिया। "त्वमेवाहम्" काव्य का आधार वही विद्रोह है। यह काव्य तब प्रकाशित हुआ जब हैदराबाद भारत में मिलाया नहीं गया था। उस विद्रोह के आधार पर कविने आज की सामाजिक, राजनैतिक, बौद्धिक तथा साहित्यिक अव्यवस्थाओं का, भाषा के नूतन, विचित्र, साथ साथ दुर्ग्राह्य प्रतीकों और प्रयोगों द्वारा स्पष्टीकरण किया है। आरुद्र की कविताओं में जितने नवीन प्रतीक, उपमान व प्रयोग मिलते हैं उतने आधुनिक तेलुगु के कवियों की कविताओं में नहीं मिलते। वस्तु के प्रतिपादन का नया तरीका आरुद्र ने अपनाया। तेलुगु प्रांत के लोकगीत के तर्ज पर कवि लिखते हैं—

सब का भला होइ भाई साहब
सब का भला होइ दादा साहब।
सियारों का है एक बगीचा
उसमें है चार स्तंभों का किला
उसमें है बर्बर राक्षस एक बडा
कलेजा है उसका बहुत कडा
उसकी है नज़र दुपहर की धूप
उसकी है जीभ तेज तलवार।

* * *

उसका वजीर है बडा दगाबाज़
उसकी पत्नी है एकदम ताडका
उसके राज्य की है वही पतवार
वह अपनी पत्नी की ही पत्नी है॥

इस तरह निजाम सरकार की अवहेलना करते हुए उसके अत्याचारी शासन के अन्त की अभिलाषा करते हैं। इसके लिये जनता को विद्रोह करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। कहते हैं—

हल कुल्हाडी तू हाथ में ले
लोहे की कुदाली हाथ में ले,
विद्रोह के साधन ये सब हैं

फिर कवि चाहते हैं कि लुहार की भट्टी से शक्ति का सृजन हो, शौर्य दीप्त हो, क्रौर्य लुप्त हो।

प्रयोगवाद की विशेषताएँ

यद्यपि "त्वमेवाहम्" काव्य का आधार हैदराबाद की क्रांति है तथापि वह काव्य आजकल की विषमताओं का प्रतिबिम्ब भी बन गया है। रेत की

घडी, बडा काँटा, छोटा काँटा, मिनट, सेकंड वगैरह उपशीर्षकों के सहारे कवि ने आधुनिक युग की सभी विषमताओं का प्रयोगवादी शैली में चित्रण किया है। जैसे—

हर ब्रेन में ब्रेन गन है,
रैन सा विचारों का ट्रैन है,

* * *

मर्दों के थर्ड क्लास के डिब्बे में
पेडों पर
चूहों पर
दीमकों पर
चीटियों पर
चर्चाएँ चलती हैं रैन सा।
ऐसे डिब्बे में
विश्राम रहित मर्दों के समक्ष
उन मर्दों के समक्ष जो दीमक नहीं हैं
तन कर खडी है साडी सँभालती
आज की मानवी, नीतिदायिनी।

* * *

हर ब्रेन में है पैन,
हर ब्रेन में है मशीनगन रैन,

"अलारम" उपशीर्षक कविता में कवि सब को सावधान करते हुए कहते हैं—

लो! हलो!
गगन में हो! अहो!
हो! अहो!
यान है,

यान है ।
लो ! हलो !
पानी में
हो ! अहो !
सबमेरीन् है ।
लो ! हलो !
खतरा है,
खतरा है ।

इस खतरे से कैसे बचें ? आज की समस्याओं का परिष्कार कैसे हो ! उपाय के बारे में किससे पूछा जाय ? तब बड़ा कांटा बताता है—

मैं बड़ा हूँ, कहता हूँ
सुनो, इस पर ध्यान दो ।
मत पूछो किसी भी
राजनैतिक वैयाकरण से
कि परिष्कार का उपाय क्या है ?
क्यों कि वह सनकी है
वह बिच्छू है बिच्छू,

* * *

आशा के रेखा गणित के द्वारा
प्रगतिवाद के बीज गणित के द्वारा
'साल्व' करो,

* * *

एक नई व्यवस्था
अनिवार्य है अब,
वामपक्ष के नारों का पचन कर
वामपक्ष का विधान अपना कर
रचनात्मक कार्य करो अब !

4920—16

आजकल के पूंजीवाद तथा एकतंत्र की व्यवस्था में सामान्य मानव की जिन्दगी दूभर हो रही है। वह जी नहीं सकता, मर भी नहीं सकता। मृत्यु की झंझा तीव्र गति से चल रही है। इसी भाव को तेलुगु के कुछ सामान्य शब्दों के विचित्र और आश्चर्य जनक प्रयोग के द्वारा आरुद्र व्यक्त करते हैं।

"तोय्योय तोय्योय तोय
मोय्योय मोय्योय मोय"
ढकेलो ढकेलो ढकेलो रे
ढोओरे ढोओरे ढोओरे।

* * *

जनता गाढ निद्रा में लीन है,
कविता दीर्घ निद्रा में तल्लीन है,
यह सिविलिजेशन निस्सार है,

इसका भविष्य उज्वल नहीं है। यही नहीं आज का काल चक्र उस रेल के समान है जो हमेशा लेट चलती है। कवि कहते हैं—

तुम जिस रेल से यात्रा करना चाहते हो
वह हमेशा एक जीवन काल लेट से आती है।
वर्षों तक उसकी प्रतीक्षा कैसे की जाय!
इसलिये चढ जाओ जो भी गाडी मिल जाय।
निज आदर्शों का लगेज चुकाकर ले जाते हो।
एक्सेस वसूल करेगा अवश्य टि. ऐ. सि.।
अपनी अभिलाषाओं की सब पेटियाँ
फेंक दो सपनों के ब्रेकवैन में तुम।
गाडी भर सामान लाये हो न चढाने?
उसे चढाने के पहले ही चल देगी यह गाडी।

अत: छोड दो कुछ सामान प्रिय हीरों के पास।
जिस गाँव तक चाहते हो तुम जाना
वहाँ नही पहुँचेगी यह गाडी तुम्हारे जीते जी।
इस लिये रह जाओ यार निज गाँव में
जहाँ रहे पहले से तुम राम का लेते नाम रे।

इस निराशा का कारण आज की परिस्थितियाँ हैं। सत्य के नाम पर असत्य का राज चल रहा है। असत्य के मार्ग पर जान बूझ कर कैसे चलें? विभिन्न राजनैतिक वादों में भी कोई सार नहीं। सत्य नहीं। ऐसी स्थिति में प्रयोगवादी कवि आरुद्र सीतामाई से कहते हैं।—

स्वर्गारोहण के इस प्रयत्न में
पैर फिसलने की आशंका है।
एंगजैटी की इस तेज पकड से
कनफयूशन की कडी जकड से,
सीतामाई, कह दो राम से हमारी रक्षा
करे, वह बडे जतन से।

आज के चिरंजीव मानव के सामने हर घड़ी मृत्यु प्रत्यक्ष रहती है। वह मानव की आशाओं पर पानी फेर देती है। उसे समझाती है कि रे मानव! आदि मानव के दिल में जिस भय का संचार हुआ वही अब भी तुझ में संचार हो रहा है। उसके मस्तिष्क में अज्ञान का जो अंधकार था वही तुझे भ्रम में डाल रहा है। जो तुझे दिखाई देता है उसे तू देख नहीं पाता। अपने को ही पहचान नहीं पाता। तेरी आख की पुतली पाँच बरस की मुन्नी है। फिर अंत

में कहती है कि "रे चिरंजीव मानव! त्वमेवाहम् अर्थात् तूही मैं हूँ।"

आगे चलकर कवि इस स्थिति से मानव जग की रक्षा चाहते हैं। कहते हैं—

पृथ्वी पर देवताओं का राज्य हो। अभावों का अंत हो। अमृत का बंटवारा हो। अवनी पर वसंत की सदा बहार हो। ग्राम श्यामल सस्यों से विलसित हों। अकाल दूर हो। शांति का साम्राज्य हो। धरा स्वर्ग से भी बढ कर सुखमय हो!"

आरुद्र का "त्वमेवाहम्" काव्य शुरू से अंत तक प्रयोगवादी शैली संबंधी सभी विशेषताओं से भरा पड़ा है।

तेलुगु के उत्साहम्, स्वागतम, लयग्राहि, दंडकम जैसे अप्रचलित छंदों का आरुद्रने प्रयोग किया है। कंदम् जैसे प्रचलित छंदों के साथ साथ भावानुकूल नवीन छंदोंका सृजन भी आपने किया है। इसका उदारण तोय्योय तोय्योय तोय, मोय्योय, मोय्योय मोय" वाला पद है। उस पद का एक एक चरण जीवन के एक एक पहलू का प्रतीक बन गया है। 'रोड रोलर' खींचने वाले और जिन्दगी रूपी रोलर ढकेलनेवाले दोनों में समानता दिखाते हुए उनके गीत के शब्द तथा चरण लाचारी तथा थकावट का स्पष्टीकरण करते हैं। गद्य लिखते हुए वे विराम चिह्नों का बिलकुल लोप कर देते हैं। तब भी भाव कुँठित नहीं होता। उलटे भाव की तीव्रता बढती है। कई शब्दों को

तेलुगु के ढाँचे में आरुद्रने ढाल दिया है। गंभीर कविताओं में भी अंग्रेजी के शब्दो का प्रयोग यत्र-तत्र कर चुके हैं— जैसे

Brain में Pain है।
हर Vein में Machine - gun
Rain है।

इस अपने "त्वमेवाहम्" काव्य के द्वारा आरुद्रने तेलुगु के आधुनिक काव्य जगत् में एक नया मार्ग प्रस्तुत किया है। आरुद्र की इस नयी शैली की कडी आलोचना हुई। फिर भी उसका महत्व अक्षुण्ण ही रहा।

सिनीवाली

"आरुद्र" का दूसरा काव्य है "सिनीवाली"। यह काव्य अगस्त १९६० में प्रकाशित हुआ। इस में आरुद्र की प्रतिभा निखर उठी है। भाव, भाषा तथा अभिव्यंजना प्रणाली की दृष्टि से भी "सिनीवाली" आधुनिक तेलुगु साहित्य का एक उत्तम काव्य है। इस में आधुनिक शहरी जीवनका चित्रण बडे ही मार्मिक व प्रभावशाली ढंग से किया गया है। आधुनिक महानगरों की ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ देख कर कवि खुश नहीं होते। वहाँ के दीन दरिद्र जनों की हालत देख कर कवि का हृदय आर्द्रतासे भर जाता है।

"सिनीवाली" शब्द का अर्थ है शुक्लपक्ष की प्रतिपदा या सर्व मंगला सती पार्वती। काव्य के अन्त

में कवि कहते हैं—

इस जग जीवन की विभावरी में
तम को ही सर्वस्व मानना गलत है।
पतली-सी आशा की रेखा इसमें है
आशा चन्द्रकला की यह सिनीवाली है॥

इस काव्य के आरम्भ में "साहित्योपनिषद्" शीर्षक कविता में आरुद्र ने काव्य तथा काव्य के प्रयोजन आदि महत्वपूर्ण विषयों पर पद्य-बद्ध चर्चा की है। इस चर्चा में भाग लेने वाले तेलुगु के तीन आधुनिक कवि हैं—(1) आरुद्र (२) श्री श्री (3) वरदा। यह पद्धति तेलुगु में आरुद्र के मस्तिष्क की नई उपज है। कविता के बारे में बताते हैं—'सब की समझ में जो आवे वही कविता है। हृदय और मस्तिष्क का स्पर्श जो करे वही कविता है। स्वप्न को सत्य सिद्ध करना कविता का तत्व नहीं है। सत्य का स्वप्न देखना ही उसका तत्व है।" भावपक्ष और कलापक्ष के बारे में यों कहते हैं—

क्या कहना है? कैसे कहना है?
ये दोनों गाड़ी के दो पहिये हैं।
ये दोनों समान फबें, तभी गाड़ी चलेगी
ये ही कविता के पुष्ट तत्व हैं।
दोनों एक दूसरे से कम नहीं हैं।
दोनों में से एक न हो तो गाड़ी ठप हो जाती है।
कहने को गर कुछ हो, हृदय खोलने
का गर मौका मिले, उमंग के बदले

उद्रेक हो दिल में, यश की इच्छा न हो,
व्यथा हो दिल में, तो अपने आप ही
कवि के मुख से निकलेगा अवश्य
कोई न कोई श्रवण सुखद छन्द।
इससे बढ़ कर छन्द के नियम हों तो वह
गेंद के बिना फुट बाल खेलने के बराबर है।

आज के महानगर

यह काव्य एक महानगर के निवासी युवक की कथा से सम्बन्धित है। वह मध्यम श्रेणी के परिवार का प्राणी है। बीच में ही उसकी पढ़ाई रुक जाती है। वह युवक आजकल के समाज की अच्छाई और बुराई का प्रतिनिधि है। आज के मानव का वास्तविक स्वरूप वही है। कवि कहते हैं—

गाऊँगा मैं अपने परिचित नगर के बारे में
नगर की नागरी और नीति के बारे में
भिन्न-भिन्न समावेशों और आवेशों में
प्रकट करूँगा मुझजैसे मनुजों के बारे में।

* * *

जब आफीस सब जम्हाई लेते हैं
सब कारखाने जब दुपट्टा ओढ़ लेते हैं
बिना लगाम के दौडने वालीं साइकिलें
मतिभ्रष्ट मोटर साइकिलें
पटरियों से गलबाहीं डाले चलने वाले ट्राम

मोटर, जोशीले आटोरिक्शे
शहर के परिश्रमी लोगों को,
प्रेम रहित दिमागों, खाली मुँहों,
थके नेत्रों को, उनको, इनको, सबको
जब ढो ढोकर घर पहुँचा देते हैं,
तब उनके दिमागों, मुँहों, आँखों औ आँसुओं का
मनमोहक काव्य बना कर गाऊँगा।
उनके अंतरतम के सन्नाटे को सुनाऊँगा
दुर्गम गहन सीमाओं में चलाऊँगा
स्वर्ग नरक का सहजीवन दर्शाऊँगा॥

नगर का वर्णन करते हुए आरुद्र पाठकों को विस्मित कर देते हैं—

"एलेक्शन के प्रचार की तरह
बेकार का आवागमन है।
अविश्वसनीय वादों की तरह
बेमतलब का ट्राफिक है।
सबेरे घर से निकलते ही
सामने से आने वाली विधवा है यह नगरी
जबर्दस्ती जिसका ब्याह होता हो
वह कंबख्त दुलहिन है यह नगरी।
गूँगे की भावाभिव्यंजना है,
नपुंसक की तीसरी शादी सी है,
औरत की मूँछों की तरह
जहाँ तहाँ उगे हुए हैं मुहल्ले।

कुबडी के कूबड से बढ़े हुए
घृणास्पद लगते हैं मुहल्ले
यह नगरसुन्दरी तुझे बुलाती है,
रखैला बना कर तुझे रख लेती है।
यह दवा पिला कर काबू में कर
लेने वाली जोरू है।
यह तेरे पैरों के लिये बंधन है
तेरे लिये कालकूट मकरंद है।

आज का निस्सहाय नागरिक

असमर्थ के शासन सा, अँधकार नगर को घेर लेता है। मुँदे हुए नगर के नेत्र आधी रात के समय खुलते हैं। तब कई मूक कथाओं को क्षीण स्वरसे नगर सुनाता है। नगर की दाहिनी आँख में चीपड है। बायीं आँख में हसद है। नगर की प्रथम कथा में भूख है। द्वितीय कथा में अंधेरा है। ऐसे नगर का वासी है सूर्याराव। सपनों की चादर बुनता है। दिन बिताना उसका काम है। पापों को वह देखता है। उन पर सोचता है। उन पापों को दूर करने का मार्ग ढूँढ़ता है। आज की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन चाहता है। पर वह देखता है कि यह काम आसान नहीं है। क्यों कि जहाँ देखें वहाँ उसे अनीति के दर्शन होते हैं। "पाक्षिक तत्वों का रहस्य जान लेता है। कुक्षिंभरता की तारीफ नहीं कर पाता। पक्षी की तरह उडने की प्रतिभा प्राप्त नहीं कर पाता। पर वह देखता है कि राजनीति रूपी सुंदरी भ्रष्टा है।

आफीस रूपी कारखाने में
रथ चक्र बन घिसने के लिये
राजी होकर वह बिक जाता है।
संतोष के सुन्दर तोते सब उड जाते हैं।
नौकरी करते करते
कष्टों के चमगीदड घर मे आ बस जाते हैं।
दस वर्षों में लगता था कि पच्चीस वर्षबीत गये।
कार्य कर करके फेफडे उसके सब पिस जाते हैं।

* * *

पैर अपने आप जाते हैं कचहरी
कलम अपने आप चलती है कागज पर
देह कभी आराम ले नहीं सकती
आँखें निज अश्रुओं को रोक नहीं सकतीं ॥

ऐसी जिन्दगी में सुख के सपने देखते-देखते वह अर्धमृत सा जीवन बिताता है।

क्लर्क सूर्याराव, क्लर्क सूर्याराव
पार्क में आ गया वर्क से छूट कर।
पार्क में रहते हैं प्रेमियों के जोडे
पार्क में रहती हैं मित्रों की भीडें
पार्क मे रहती हैं बच्चों की भीडें
पार्क में न रहती है कण भर की शांति ॥

* * *

घर में पत्नी बीमार है। ऐसी दयनीय स्थिति में—

क्लर्क सूर्याराव कुछ नहीं बोलता
क्लर्क सूर्याराव क्वश्चन मार्क है
क्लर्क सूर्याराव कागजी कार्क है।

आशा का संदेश

सिनीवाली काव्य के अंतिम 'शुद्धि पत्र' शीर्षक कविता में आरुद्र जगत् के बारे में कहते हैं—

> विषादांत मानना इसे गलत है
> नाशवान मानना इसे गलत है
> यह अनंत है, सुखमय भी है
> तम का अन्त सुनिश्चित है ॥

'सिनीवाली' काव्य के द्वारा आरुद्र ने यह स्पष्ट कर दिया कि आधुनिक कवियों की कविताएँ दुर्ग्राह्य नहीं हैं। सिनीवाली काव्य में भाव की स्पष्टता है। साथ-साथ शैलीगत सौन्दर्य भी है। इस काव्य में आरुद्र ने गद्य गीत का अधिक प्रयोग किया है। अंग्रेजी शब्दों के समुचित प्रयोग के द्वारा आरुद्र ने भाषा के क्षेत्र में भी अपना विशेष स्थान बना लिया है।

आरुद्र सफल गद्य लेखक भी हैं 'ग्रामायण' उनके उपन्यासों में उत्तम है। आपकी कई कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। डिटेक्टिव नावेलों की रचना में आप सिद्ध हस्त हैं। आपके कई प्रसिद्ध फिल्मी गीत घाव और गीतके नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

नवयुवक कवि आरुद्र से आधुनिक तेलुगु साहित्य को बहुतसी आशाएँ हैं।



दाशरथी

आप निजाम सरकार की हुकूमत के समय हैदराबाद रियासत के अशांतिमय वातावरण और खौलते हुए जवान रक्त की उमंग से प्रेरित हो कर, कदनरंग में पदार्पण कर, अत्याचारी शासकों के विरुद्ध विद्रोह कर कई तकलीफों का सामना करते हुए अनेक उत्तम काव्यों का सृजन करनेवाले तेलुगु के आधुनिक लोकप्रिय उत्साही कवि हैं।

हैदराबाद रियासत में निजाम की हुकूमत चल रही थी। उनका जासूसी विभाग एक तरफ, इत्तेहादुल मुसलमीन संस्था के (स्वयंसेवक) रजाकार दूसरी तरफ जनता पर खुले आम अत्याचार कर रहे थे। कांग्रेस का नाम भी कोई नहीं ले सकता था। स्वतंत्रता के प्रेमियों को कठोर दंड दिये जाते थे। फिर भी रियासत में चारों तरफ राष्ट्रीयता की आवाज गूँज रही थी। वहाँ के तेलुगु भाषा-भाषियों के जिलों में ग्रन्थालय-आन्दोलन तथा आन्ध्र महासभा के आन्दोलन के नाम पर गुप्त रूप से स्वतन्त्रता की आवाज घर-घर पहुँचाई जा रही थी। राष्ट्रीय कार्यकर्ता जान पर खेल कर इस काम में लगे हुए थे। उन्हीं दिनों की घटना है।

१९४६ सितम्बर के एक दिन ओरंगल जिले के मानुकोट तहसील के एक गाँव में बैठक हो रही थी। दुबला-पतला १९ वर्ष का एक नाटा-सा युवक जोर-जोर से भाषण दे रहा था। शासक के अत्याचारों का हृदय-द्रावक वर्णन वह कर रहा था। युवक की वाणी में जोश था। आवेग था। वह बीच-बीच में वीर रसात्मक पद्य भी सुनाता था—

प्राणमुलोड्डि घोर गह
नाटवुलन् बडगोट्टि मंचि
मागाणमुलन् सृजिंचि
एमुकल् नुसि जेसि, पोलाल

दुन्नि भोषाणमुलन् नवाबुनकु
स्वर्णमु निपिन रैतुदे ! तेलंगाणमु
रैतुदे ! मुसलिनक्ककु
राचरिकंबु दक्कुने ?

(जान खपा कर घने जंगलों को काट कर जिस किसान ने यहाँ की भूमि को उपजाऊ बनाया, अपनी हड्डियों को चूर-चूर कर यहाँ के खेत जोत-जोत कर यहाँ सोना उत्पन्न किया, उस स्वर्ण से नवाब साहब के खजाने को भर दिया, तेलंगाने को भूमि उसी किसान की है। इस बूढ़े सियार के नसीब में राजपद बहुत दिनों तक क्या बदा रह सकेगा ?)

पुलिस की आँखों में धूल

जनता उसके भाषण से प्रभावित हो गई। इतने में पुलिस सिपाही वहाँ आ गये। वह युवक वहीं पर गिरफ्तार कर लिया गया। उत्तेजित जनता के मुँह से निकला पड़ा—"कवि दाशरथी की जय।" पुलिस ने जनता को तितर-बितर कर दिया। दो सिपाही दाशरथी को लेकर वहाँ से बीस मील दूर नेल्लिकुदुरु नामक गाँव पैदल ही चलकर दूसरे दिन करीब 10 बज पहुँचे। वहाँ मौका पाकर पुलिस के घेरे से दाशरथी निकल भागे। उनको पकड़ने के लिये लगभग 40 सिपाही नियत किये गये। कई गाँवों की तलाशी भी ली गई। मगर उनका पता नहीं लगा। वेष बदल कर वे फिर अपने काम में लग गये। इस प्रकार

क्रांतिकारी वातावरण में दाशरथी के अस्तित्व का विकास हुआ। उनकी कविताओं में क्राँति की भावना प्रस्फुटित हुई।

पीडित जनता की वाणी

उनका पूरा नाम दाशरथी कृष्णमाचार्य है। परन्तु दाशरथी के नाम से आन्ध्र प्रदेश भर में वे प्रसिद्ध हो चुके हैं। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत आपकी वीर रसात्मक कविताओं ने हैदराबाद रियासत के निद्रित तेलुगु भाषा-भाषियों को जागृत करने में बडा योग दिया। निजाम के अत्याचारों से पीड़ित, त्रस्त, ग़रीब, मूक जनता की वाणी दाशरथी के कंठ से मुखरित हो उठी। हैदराबाद रियासत के तेलुगु भाषियों के जिले तेलंगाणा कहलाते हैं। यहाँ के तेलुगु भाषियों की संख्या एक करोड़ से ज्यादा है। तेलंगाणा दाशरथी की मातृभूमि है। उस पर उन्हें बड़ा गर्व है। वे कहते हैं—

> मूडु कोटुल देवता मूर्तुलंदु
> कोटिमंदि वसिंचेडि हाटकावनी
> महाखंड मी रमणीय भूमि
> ना तेलंगाणा लेम, सौंदर्य सीम ॥

(तीन करोड़ तेलुगु भाषी देवताओं में से एक करोड़ की निवास स्थली है तेलंगाणा। हाटकों की अवनी है यह। अति रमणीय महाखंड है यह। सुन्दरता की सीमा है मेरी तेलंगाणा बाला)

मूगबोयिन कोटि तम्मुल गलान
पाट पलिकिचि कविता जवम्मु कूर्चि
ना कलानकु बलमिच्चि नडपिनट्टि
ना तेलंगाणा कोटि रत्नाल वीण।

(मेरी लेखनी को बल दिया तेलंगाणा ने। मेरी कलम को आगे बढ़ाया तेलंगाणा ने। मेरी कविता में स्फूर्ति भर दी तेलंगाणा ने। उस बल पर अपने कोटि छुट भैयों के कंठों को गीतों से भर दिया मैंने। कोटि रत्नों की वीणा है यह तेलंगाणा।)

समर साहित्य का आरंभ

तेलंगाणा प्रान्त में शासकों के अत्याचार बढ़ने लगे। यहाँ की सती साध्वी स्त्रियों की इज्जत लूटी जाने लगी। सैकड़ों गाँव जलाये जाने लगे। घर द्वार लूटे जाने लगे। इससे दाशरथी का दिल दहल उठा। अग्नि के स्फुलिंग उनके कंठ से फुट पड़े। चारों तरफ़ ज्वालाएँ फैल गईं। तेलंगाणा के समर साहित्य का सृजन हुआ। दाशरथी ने स्वेच्छाचारी व आतताई शासक के क्रूर शासन के विरुद्ध धैर्य के साथ कलम चलाई। जान की भी परवाह न कर शासक को मुक्त कंठ से शाप दिया। कहा—

ओ निजामुपिशाचमा! कानराडु
निन्नु बोलिन राजु माकेन्नडेनि
तीगलनु तेंपि, अग्नि लो दिंपिनावु
ना तेलंगाणा, कोटि रत्नाल वीण।

(ऐ निजाम पिशाच ! तेरे जैसे राजा को हमने कहीं नहीं देखा। यह तेलंगाणा कोटि रत्नों की वीणा है। इसके सब तार तूने तोड़ डाले हैं। तूने इसे अग्निकुंड में डाल दिया है।)

इदेमाट इदेमाट पदे-पदे अनेस्तानु
कदं लोक्कि पदंपाडि इदेमाट अनेस्तानु।

* * *

अडुगडुगुन येडद नेत्तु गड़ गड़ मनि त्रागिनावु
पडतुल मानाल द्रोचि गुडगुड मनि हुक्कत्रागि
जडियक कूर्चुंडिनावु मडि कट्टुक कूर्चुन्नावु
दगाकोरु भटाचोरु, रजाकारु पोषकुडवु।

* * *

ऊल्ल कूल्लु अग्गि पेट्टि यिल्लन्नी कोल्लगोट्टि
तल्लि पिल्ल कडुपुगोट्टि निक्किन दुर्मार्गिमंता

* * *

दिगिपोवोय, तेगिपोवोय तेगिपोवोय
इदेमाट इदेमाट पदे पदे अनेस्तानु॥
(यही बात, यही बात बार-बार कह दूँगा
पग-पग पर पद-पद गा,
यही बात कह दूँगा
पग-पग पर हृदय रक्त गट-गट तू पीता है
सतियों का मान लूट हुक्का तू पीता है
निधड़क तू बैठा है,

दूध धुला बैठा है।
दगाबाज, बटमार रजाकार पोषक है
गाँव-गाँव जला चुका,
घर-घर तू लुट चुका।
माता और पुत्री का कौर तूने लूटा है
नीच कर्म करता है
तू शासन के योग्य नहीं, रहने के योग्य नहीं।
गद्दी से उतर जा ! तुझसे ही कहते हैं,
नगाड़े बजते हैं, सारा जग कहता है।
रे ! गद्दी से उतर जा ! गद्दी से उलट जा !
यही बात, यही बात बार-बार कह दूँगा।)

वीर सत्याग्रही

ऐसी कविताओं के कारण शासक के जासूस, दाशरथी के पीछे पड़ गये। स्टेट कॉंग्रेस की तरफ़ से सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया गया। गार्ला नामक गाँव में पुलिस के सिपाहियों ने उनको कैद कर लिया। थाने में कई कोड़े लगाये गए। पर क्रान्तिकारियों का पता उन्होंने नहीं बताया। दाशरथी को सोलह मास की कडी सजा दी गई। वहाँ से वरंगल के जेलखाने में भेज दिये गए। फिर वहाँ से उनका स्थान-परवर्तन निजामाबाद सेंट्रल जेल केलिये हो गया। वहाँ पर और भी सैकड़ों राजनीतिक क़ैदी मौजूद थे। दाशरथी वहाँ पहुँच गए।

निजामाबाद के इतिहास प्रसिद्ध सेंट्रल जेल को देखते ही कवि की आँखों के सामने इतिहास के पृष्ठ एक-एक करके पलटने लगे। शिवाजी की शूरता याद आ गई। योद्धा रघुनाथ के खड्ग की धार की कल्पना साकार हो उठी। पश्चिम चालुक्यों का महान्ध्र तेज नेत्रों के आगे प्रस्फुटित हुआ। कवि का वीर हृदय जोश से भर गया। जेल में ही सिंह का शावक गर्ज उठा।

ओक कालम्मुन इद्दि देवलमु
वेरोक्कप्डु दुर्गंबु ने डकटा!
जैलयि कानुपिचुनु
भविष्यत्काल मंदेट्टि रूपकमुन्
दाल्चुनो! काल चक्रगमन
स्वाभाविकावर्तकल्पकमै देवल
मौनु दुर्गमगु, नी बंदीले पालिंपगन्।

(एक समय यह देवल था और एक समय प्रसिद्ध गढ बन गया था। लेकिन वही गढ आज राम! राम! जेलखाने के रूप में बदल गया है। मालूम नहीं भविष्य में यह कौन सा रूप धारण करेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि कालचक्र के परिवर्तन से आज के ये सब कैदी एक दिन यही पर राज करेंगे। तब यह जेल फिर देवल बन जाएगा। फिर गढ़ बन जाएगा।)

इट मराटी जोडु पट पट कोरिकिन
पल्ललो गोलकोंड गुँडलु नलिगे।
इट मराटी जोडु चिटिकेवेयुटतोने
औरंगजीबु कंगारु पडेनु।

इट मराटी जोदु कटिबिगिंचुटतोने
गगन भूमार्गलु कट्टु वडिये।
इट मराटी जोदु गुटकम्रिंगुटतोने
तुरक भूपतुल नेत्तुरुलु तरिगे।
इट मराटीलु स्वातंत्र्य पटहमुलनु
म्रोसिनारलु, राज्यालु चेसिनारु
इट स्वतंत्र पताकाल नेत्तिनारु
कत्ति मोनतो दुरात्मुल मोत्तिनारु॥

(यहाँ मराठा वीर कट-कटाते दांत पीस उठे तो गोलकोंडा के तोप कट-कट कर गिर पडे। यहाँ मराठा वीर चुटकी बजा उठे तो वहाँ औरंगजेब थर-थर थर्रा उठा। यहाँ मराठा वीर कमर कस उठे तो भू तथा गगन मार्ग कांप उठे। यहाँ मराठा वीर गट-गट घूँ ट लगा चुके तो वहाँ तुरक शाहों का खून पीला पड़ चुका। यहाँ मराठा वीर आजादी के पटहों का भार उठा चुके। यहाँ वे राज्य कर चुके। यहाँ आजादी के झण्डे फहरा चुके। तलवारों की नोकों से दुराचारियों के छक्के छुड़ा चुके।)

दाशरथी जेलखाने के कई सहज, सजीव चित्र भी प्रस्तुत कर चुके हैं। कवि का जेल वर्णन देखिये—

इदि निदाघमु; इंदु सहिंपरानि
वेडि एडिपिंचुचुन्नदि; पाडुवडिन
गोड लंदुन जेलुलो पाडिनाड
वाडिपोनुन्न पूमोग्गपैनि पाट।

(यह निदाघ है। यह असहनीय है। बड़ी व्यथा हो रही है। जेल की इन शिथिल दीवारों के अन्दर मुरझाने वाले फूल की कली पर गीत गाता हूँ।)

ई एंड कालम्मुलो एन्नि वर्षालु
दागि युन्नवो ; चूड सागिनानु
आ एडारि पोलाललो एन्नि गंगलु
पोंगुनो ; यनि चूड़ बोयिनानु
आयास पडु जैलुलो एन्नि प्रजा
राज्यम्मु लुन्नवो ; यनि यरसिनानु
निरुपेद्वानि नेत्तुरु चुक्कलो
नेन्नि विप्लवालो ; यनि वेदकिनानु ।

(गर्मी के इस मौसम में कितनी वर्षाएँ छिपी हुई हैं, पहचानने का प्रयत्न करता हूँ। इन ऊसर खेतों में कितनी गंगाएँ उमड़ पड़ेंगी ; परखने का प्रयत्न करता हूँ। दम घुटने वाले इस जेल में कितने प्रजाराज्य हैं, पढ़ने का प्रयत्न करता हूँ। निर्धन के रक्त-कणों में कितने विप्लव छिपे हुए हैं, पहचानने का प्रयत्न करता हूँ।)

इट वसंतमु लेदु ; सहिंपरानि ग्रीष्म
हेमंत काल कालिकले गानि
इट उषस्सुलु लेवु ; भरिपरानि अंबुवाह
संदोह निशालि गानि
वेन्नेललु लेवु ; आकाश शोक वीथि
धूम धामम्मु दुःख संग्राम भूमि ।

(यहाँ वसन्त नहीं है, असहनीय ग्रीष्म और हेमन्त काल की कालिकाएँ हैं। यहाँ ऊषा नहीं है, असहनीय मेघ राशि की निशा है। चाँदनी का यहाँ नाम नहीं है। पूनम की सुन्दरी नहीं है। स्वच्छ सुन्दर चन्द्र नहीं है, तारे नहीं हैं, आकाश का शोकमार्ग धूमावृत है। यह दुःख दायक रणरंग है।)

पुनर्जन्म

११ जनवरी १९४८ को निजामाबाद सेन्ट्रल जेल में दिल दहलानेवाली एक घटना हुई। शाम को भोजन की घंटी बजी। सभी कैदी थाली और लोटा लिये बैरकों से रोटी के लिये बाहर आ गये। खाने को रोटी मिल गई। इतने में रजाकारों का एक सशस्त्र दल जेल के अन्दर आ गया। जेल की पुलिस के सामने ही वे रजाकार वहाँ के राजनीतिक कैदियों पर टूट पड़े। इस हमले से निःशस्त्र कैदी दंग रह गये। फिर भी उन्होंने लोटे और थालियों के सहारे शत्रुओं का सामना किया। कई कैदी जख्मी हो गये। जान बचाने के लिये सब कैदी बैरकों में घुस गए। उस भगदड़ में दाशरथी पीछे रह गये। रजाकारों ने उनकी हड्डी पसली चूर चूँर कर दी। वे बेहोश हो गये। जब रजाकार सब चले गये तब जेल की पुलिस ने मूर्छित दाशरथी को ले जा कर एक कमरे में डाल दिया। किसी को उनके बचने की आशा नहीं थी। रात भर थर-थर काँपते हुए वे पड़े रहे। दूसरे दिन उनकी आँख खुली। जेल के अधिकारियों की तरफ से दवा-दारू का इन्तजाम किया गया। पर कोई नतीजा नहीं निकला। तब हैदराबाद के सेन्ट्रल जेल में दाशरथी का तबादला हुआ। कई महीनों तक खाट पर जेल में पड़े रहे। पुलिस एक्शन के बाद १८ सितम्बर १९४८ को दूसरे राजनीतिक कैदियों के साथ दाशरथी भी जेल से रिहा कर दिये गये। उनकी खुशी

का ठिकाना नहीं रहा। उनका त्याग सफल हुआ। उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई।

तम से ज्योति की तरफ

अत्याचारी निजाम गद्दी से उतार दिये गये उन सारी घटनाओं का वर्णन दाशरथी ने अपनी कविताओं में प्रभावशाली ढंग से किया है। वे कहते हैं—

> एन्नाल्लकु तेल्लवारे!
> एन्नाल्लकु कन्नुदूरे!
> वेलुगु वेलुगु वेलुगु वेलुगु
> तेलुगु तेलुगु तेलुगु तेलुगु।

(आह! कितने दिनों के बाद पौ फटी! कितने दिनों के बाद आँख खुली! चारों तरफ रोशनी ही रोशनी है। तेलुगु ही तेलुगु है।)

> तेलुगु निंगि दारुललो
> वेलुगु पुलुगु रेक्कलार्चि
> चिम्मिवैचे तरतराल
> चिक्कनि चीकटल नेल्ल।

(तेलुगु के गगन मार्ग में ज्योतिर्मय पक्षी ने पंख फड़फड़ा कर शताब्दियों के जमे घने गाढ़े तम को नष्ट कर दिया।)

> नाडु मानवती नयनम्मुलंदु
> नाग सर्पालु बुसकोट्टि नाट्यमाडे।

नाडु मानवतयु नवनागरकतयु
तन्नु दिन्नवि राजसत्वम्मु चेत ॥

(तब मानवती सतियों के नयनों में नागसर्प फुफकार कर नाच उठे। तब मानवता और नागरिकता को बर्बरता का आघात लगा।)

परशु निशात धारलनु पच्चनि
गड्डि येदिर्चिनट्लु,
राचरिकपु टुक्कु चट्टमुनु
शान्तिग धिक्करणम्मोनर्चे,
उस्सुरनेडि पेद्वाडु,
कडु सुन्दरमैन तेलुंगुनेल पै
परुडेवडो निरंकुशुनि भाँति
प्रभुत्वमु सेय सैचुने ?

(नृपति के फौलादी शासन के विरुद्ध शान्ति के साथ विद्रोह किया निरीह मूक ग़रीब जनता ने। हरी घासने परशु की तेज धार का दिलेरी से सामना किया। इस सुन्दर तेलुगु भूमि पर काई पराया आ कर निरंकुश शासन चलावे और जनता चुप रहे? यह कहीं संभव है?)

फिर दाशरथी अपनी कविताओं में कहते हैं—

"भारत माता के गर्भ में शूल भोंकने वाले दुष्टों की मदद की निजाम ने। उनके बीच अपना ख़जाना लुटा दिया। गोरों से मिल कर षड्यंत्र रचा। बाहर से अस्त्र-शस्त्र मँगा कर दुष्टों में बाँट दिये। तब रक्त पिशाच नर राक्षस नाच उठे। तेलंगाणा ने करवट बदली। ताल ठोंक कर नर राक्षसों का सामना किया। कोटि-

कोटि कंठों ने यहाँ से पुकार लगाई। वह पुकार सुन सारा भारत काँप उठा। भारत का लौह पुरुष गरज उठा। भारत की फौज़ बाढ़ की तरह बढ़ आई। नर राक्षसों के पैर उखड़ गये। रामचन्द्र के तीर से नीच मारीच निहत हुआ। दो सौ बरसों का निजाम शासन सदा के लिए मिट गया। पूरब दिशा में पौ फटी। सूर्य बिम्ब का उदय हुआ। अन्धकार विच्छिन्न हुआ। नई रोशनी फैल गई। जनता ने शान्ति की साँस ली।"

कलम और खड्ग

तेलंगाणा के अशान्तिमय वातावरण और खौलते हुए जवान रक्त की उमंग से प्रेरित होकर कदन रंग में पदार्पण करके कलम और खड्ग दोनों का उपयोग करने वाले पाँच फुट के नाटे, दुबले-पतले, धँसे गाल, उभरे ओंठ, चपटी नाक, बिखरे बाल और गम्भीर स्वर वाले दाशरथी के जीवन में आजकल परिवर्तन हो गया है। उनका जन्म वरंगल जिले के मानुकोट तहसील के चिन्नगूडूरु नामक गाँव के एक वैष्णव कुटुंब में हुआ। आपके पिता दाशरथी वेंकटाचार्य सस्कृत, तमिल, और तेलुगु भाषाओं के पंडित हैं। उन्होंने "नालायिर" द्राविड प्रबन्धों का तेलुगु में अनुवाद किया। उन्हीं के यहाँ बचपन में दाशरथी ने संस्कृत और तेलुगु का अध्ययन किया। मदरसे में उर्दू की शिक्षा बाल्यकाल से ही उन्हें मिली।

वे अपने ग्यारह वर्ष की उम्र में ही कविता करने लगे। फिर खम्मंमेट के हाईस्कूल मे भर्ती होकर हाई-स्कूल की परीक्षाएँ पास कीं। वहाँ उन्हें अंग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन का मौका मिला। उर्दू और फारसी साहित्य का भी आपने अध्ययन किया।

दाशरथी की प्रथम रचनाएँ श्रृंगार रस से भरी हुयी हैं। प्रणय तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की भावना उनमें अधिक है। ज्यों-ज्यों बड़े होने लगे त्यों-त्यों उनके दिल में मातृ-भाषा के प्रति प्रेम बढ़ गया। हैदराबाद राज्य में उस समय उर्दू का ऐसा दबदबा था कि तेलुगु भाषा कुंठित सी हो गयी। इससे दाशरथी को दुःख हुआ। तब से तेलुगु में ही कविता करने का प्रण कर के निद्रित जनता को जगाने का निश्चय कर लिया। प्रणय में प्रलय का समन्वय उनकी कविताओं में झलकने लगा। हाईस्कूल में पढ़ते समय ही आपका सम्बन्ध तेलंगाणा के ग्रन्थालय और आन्ध्र महासभा के आन्दोलनों से जुड़ गया। १९४२ से राष्ट्रीय कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने लगे। साहित्य के द्वारा क्रान्ति की भावना को व्याप्त करने का काम ज्यादातर आपने किया। जेल से छूटने के बाद १९५० में आपका विवाह हुआ। कई दिन तक सरकार के शिक्षा विभाग़ में नौकरी करते हुए आप बि. ए. पास कर चुके। आज कल आकाशवाणी में काम कर रहे हैं। १९५१ ई० में आपने तेलंगाणा के लेखक संघ की स्थापना की।

तेलंगाणा के गाँव-गाँव में उसकी शाखाएँ खुलीं। तेलंगाणा के बीसों कवि कुमारों को आपने प्रोत्साहित किया। तेलंगाणा की जनता ने तेलुगु के विकास में बड़ा योग दिया। साहित्य जगत में नव जागरण हुआ। खण्ड काव्य, महा काव्य, कहानी, उपन्यास, निबन्ध और आलोचना के दर्जनों ग्रन्थ लम्बी निद्रा से जागृत तेलंगाणा से प्रकाशित हुए, जिससे तेलुगु साहित्य सदन पर चार-चाँद लग गये। इस अथक साधना में दाशरथी का बडा हाथ रहा।

विविध काव्य

अब तक दाशरथी की कविताओं के कई संकलन प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें (१) अग्नि धारा (२) रुद्रवीणा (३) महाँध्रोदयम् (४) महाबोधि (५) पुनर्नवम् (६) अमृताभिषेकम् वगैरह उल्लेखनीय हैं। अग्निधारा तथा रुद्रवीणा में आपकी प्रारंभिक और जेल में लिखी कविताएँ ज्यादातर संगृहीत हैं। बुद्ध की जीवनी पर आधारित काव्य है महाबोधि। स्वतंत्र हैदराबाद के मुख्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश के भूत पूर्व राज्यपाल श्री बूर्गुल रामकृष्ण रावजी के नाम यह काव्य अंकित किया गया। "महाँध्रोदय" ग्रन्थ का विशालान्ध्र या आन्ध्र प्रदेश के निंमर्णि में बड़ा हाथ रहा।

दाशरथी के जीवन के लक्ष्यों में विशालांध्र का निर्माण भी एक रहा। बिखरे पडे साढ़े

तीन करोड़ तेलुगु भाषा-भाषियों को एक ही राज्य के अन्तर्गत प्रेम-सूत्र में बँधे देखने की उनकी प्रगाढ अभिलाषा थी। अपनी प्रभावशाली वाणी में गा उठे—

मुक्कलु मुक्कलै चेदरि
पोयेनुरा! मन जाति; हूण भू
भुक्कुल राजनीतिकि क
वुंगिलु लोङ्गिन 'राजु' चेतिलो
चिक्केनु कोटिमंदि निवसिचेडि
बंगरु तेल्गु नेल नेडक्कट
तेलगुटंगनल प्राणमु मानमु दक्ककुंडेडिन।"

(अरे! टुकड़े-टुकडे होकर हमारी जाति बिखर गई। गोरे भूभुक्कडों के राजनैतिक आलिंगन में बद्ध 'राजा' के चंगुल में एक करोड़ आन्ध्र जनता की स्वर्ण भूमि फँस गई। आह! यहाँ की तैलंगी रमणियों के प्राण और मान की खैर नहीं है।)

फिर कवि कहते हैं—

"आज वह जमाना बदल गया। वे गोरे भारत छोड़ कर चले गये। उनके गुलाम राजा नहीं रहे। नवाब नहीं रहे। तेलंगाणा स्वतंत्र हो गया। अब मैं साढे तीन करोड़ तेलुगु भायियों के महान्ध्र के दर्शन कर रहा हूँ। भारत माँ की यह आन्ध्र पुत्री सोलहों शृंगार कर के सुहागिन बन दिखाई दे रही है। आन्ध्र प्राँत के बड़े भाइयो! आज तेलंगाणा के एक करोड़ तेलुगु भाषी आपका स्वागत करते हैं। बिखरे हुए भाई फिर मिल जावें। अनुराग के बन्धन में बँध जावें।"

कवि की यह कामना भी पूर्ण हो गई। भारत के नक्शे पर विशाल आन्ध्र प्रदेश का अवतरण हुआ।

साढ़े तीन करोड तेलुगु भाषा-भाषी एक सूत्र में बँध गये। दाशरथी का प्रयत्न सफल हो गया।

साम्यवाद का समर्थन

दाशरथी की कविताओं की तीसरी विशेषता है प्रगतिवाद। ऊँच-नीच, अमीर-ग़रीब, शोषक-शोषित, जाति-पांति सम्बन्धी सब सामाजिक विषमताओं का खण्डन और सुख-शान्तिमय नवजगत् के निर्माण का आपने मण्डन किया। स्वार्थी संसार को देख कर कहते हैं—

"गदुलु गदुलयि अरलयि प्रिदिलि चिदिकि
ब्रदुकु विलुवलु नशियिंचि पाडुवडिन
नेटि स्वार्थ प्रपंचमु निड विप्लवाग्नुल
तुपानु लेपि शून्य मोनरितु।"

(आज का जग अलग-अलग कमरों और हिस्सों में बँटा हुआ है। इसमें दर्रे पड़ गये हैं। यह कुचल गया है। जीवन के मूल्य जीर्ण-शीर्ण और नष्ट-भ्रष्टे हो गये हैं। ऐसे स्वार्थी जग में क्रान्ति की ज्वालाएँ सुलगा दूँगा। इस जग को शून्य कर दूँगा।)

नंगी भूखी गरीब जनता को देख कर कहते हैं—

"ई समाजान दोपिडि के निवास
मिंदु नीकेमि लेदु; सहिपरानि
वेदनये कानि वेरु कन्पिपबोदु
ले, चिवालुन लेचि सागिंचुरथमु।"

(इस समाज में लूट-खसोट की बात ही चलती है। बगैर दुर्दम वेदना के तुझे यहाँ और कुछ नहीं मिलेगा। इसलिए, उठ! अपना रथ फौरन नये मार्ग पर ले चल!)

नये जग की प्रतीक्षा में कवि कहते हैं—

अन्नार्तुलु आनाथुलुंडनि आ नवयुग मदेंत दूरमो?
करुवंटू काटक मटू कनुपिंचनि काला लेप्पुडो?

(क्षुधित और अनाथों से रहित युग वह कब आएगा? अकालों के आवर्तन से मुक्त वह युग कब आएगा?)

"प्राग्भूमि" शीर्षक कविता में प्राग्भूमि की दयनीय स्थिति का निम्न प्रकार कवि वर्णन करते हैं—

पडमटि बोल्लिगद्दलु पोडिचि पोडिचि तिनि विडचिन
अग्नि संस्कारं नोचनि नग्न शवं प्राग्भूमि।

(दहन संस्कार के बिना पड़े हुए नग्नशव को पश्चिम के गीधों ने नोच-नोच कर खाया है। खा-खा के छोड़ा है। प्राग्भूमि का हाल यही है।)

लक्षलादि पेदल प्राणाल अक्षितलुगा चल्लुकोन्न
लक्षाधिकार्ल पालिटि लक्ष्मी देवि प्राग्भूमि।

(लाखों निर्धन जनों के प्राणों से होली खेल खुशी मनाने वाले उन पूँजी पतियों के हित लक्ष्मी है यह प्राग्भूमि।)

कवि ऐसी इस पृथ्वी को बदल देना चाहते हैं। पीड़ित जनता की वाणी के लिए "मैक" प्रस्तुत करना चाहते हैं। कहते हैं—

वीणिय तीगपै पदुनु पेट्टिन ना करवाल धारतो
गानमु नालपितु, कवि कंठमु नुत्तरणं बोनर्चि
स्वर्गानिकु भूमि नुंडि रस गंगलु चिम्मेद, पीड़ित
प्रजावाणिकि "मैकु" अमर्चि अभवादु-
लकुन् विनिपिपजेसेदन् ॥

(सान पर चढ़े करवाल की धार के बल, वीणा के तारों पर गान का आलाप करूँगा। कवि कंठ काट कर पृथ्वी से स्वर्ग तक रस की गंगाएँ बहा दूँगा। पीडित जन की वाणी के लिए "मैक" प्रस्तुत करूँगा। ब्रह्मा आदि के कानों तक वह वाणी पहुँचा दूँगा।)

विश्व कल्याण का संदेश

दाशरथी की कविताओं की और एक विशेषता विश्वकल्याण की भावना है। प्रान्तीय, राष्ट्रीय परिधियों को पार कर आपने अंतर्राष्ट्रीयता की ओर ध्यान दिया है। आजकल के ध्वंसात्मक वैज्ञानिक प्रगति का आपने विरोध किया है। मानव और प्रकृति के कल्याणमय रागात्मक सम्बन्ध पर जोर दिया है। उसी में विश्व श्रेय की कल्पना की है। "मानव और प्रकृति" शीर्षक कविता में कथोपकथन शैली द्वारा यह व्यक्त किया है कि आजकल विजिगीषा के कारण मानव भस्मासुर बनता जा रहा है। प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध जोड़ने पर ही लोकहित संभव है।

"कपोती सन्देश" शीर्षक कविता में युद्ध—ज्वर से त्रस्त जग में शान्ति सुधा का स्रोत उमड़ते देखना

चाहते हैं। श्वेत कबूतर को अपनी भुजाओं पर बैठे देख कर कवि उससे पूछते हैं—

> एन्दुक्कु वच्चिनावु ? पतगी ! रणदाहमुतो तपियिंचु मा
> यंदलि प्रेमुडिन् शम दमादि गणम्मुलु भिक्षपेट्टि नी
> इंदु समान देहमुन नीरिकलेत्तिन शांति चंद्रिकल्
> डेंदमुलंदु चल्लि मरलितुवे मम्मु सुधापथालकुन् ।

(हे कपोत, तुम क्यों आये हो ? हम युद्ध की प्यास से तप रहे हैं। हम से प्रेम करके अपने शम, दम आदि गुणों की भिक्षा देकर, इंदु समान देह की स्वच्छ श्वेत शांति की चन्द्रिका हमारे हृदयों पर छिटका कर क्या हमें सुधामय पथों में ले चल सकोगे ?)

फिर कहते हैं कि हम दानव हैं। मानव लोक का जब तक सत्यानाश नहीं करेंगे, तब तक हमारी भूख कम न होगी। तुमने सुना होगा कि इसी बीच हमारे वैज्ञानिक अणु, परमाणु, बमों का विस्फोट समुद्रों में करा चुके हैं। सुनो ! अपनी राक्षसी प्रवृत्ति की तृप्ति के लिये धन की राशि लुटा कर सारे जग को भस्म कर खाक कर दूँगा। इस विद्या का मैंने अभ्यास किया है। फिर भी हे श्वेत कपोत, तुमको देखने पर मन में निर्मलता आ रही है। एक बार पश्चिमी देश हो आओ। उनकी बुद्धि ठिकाने पर ले आओ। अणु, परमाणु प्रलय से पृथ्वी की रक्षा करो। तब कपोत जवाब देता है—भारत से शान्ति का सन्देश वहाँ पहुँच गया है। शान्ति-बीज जहाँ-तहाँ बोये गये हैं। अवश्य पौधे निकलेंगे। शान्ति का सुमन

विकसित होगा। विज्ञान रूपी धन सब के उपयोग में आ जाएगा। सब की भलाई में विज्ञान हाथ बँटाएगा। साथ-साथ कवियों को कपोत सन्देश देता है—

ना ई कृषिकिन् सायमु
सेयवलेनु नीवु : शांतिचितांपरमै
व्रायबडु न' कवित्वमु
मोयुचु कोंपोद्दु नेल्लमूलल किपुडे

(मेरे इस प्रयत्न में, हे कवि, तुम हाथ बँटाओ। शांति सन्देश की तुम्हारी कविता दुनिया के कोने-कोने में व्याप्त कर दूंगा। संसार का कल्याण होगा।)

इस प्रकार उदात्त स्वर में विश्व शांति का राग आलाप कर दाशरथी अपनी लेखनी को धन्य बना चुके हैं और बना रहे हैं।

भावपक्ष की विशेषताएँ

दाशरथीजी के साहित्य की सम्यक् विवेचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके साहित्य के भाव पक्ष की विशेषताओं में राष्ट्रीय भावना, अन्तर्राष्ट्रीय भावना, परिवर्तन की पुकार, यथार्थवादिता, सामयिक समस्याओं पर ध्यान, प्राचीन और अर्वाचीन विशेष-ताओं का समन्वय, उद्बोधन प्रणाली तथा काव्य सौष्ठव के प्रति श्रद्धा आदि उल्लेखनीय हैं। कला पक्ष की दृष्टि से भी तेलुगु आलोचकों की दृष्टि में आपकी

कविताएँ श्रेष्ठ मानी गई हैं। तेलुगु के सीसम, शार्दूलम, मत्तेभम, उत्पलमाला, चंपकम, कदम, गीतम, तेट गीतम तथा आटवेलदि वगैरह छन्दों का आपने प्रयोग किया है। प्रगतिशील कविताओं के लिए मुक्त-छन्दों का आपने आश्रय लिया है। दाशरथी ने किसी का अनुकरण करने का प्रयत्न नहीं किया है। उनका अपना अलग रास्ता है। इसीलिए अपने त्याग, साधना और प्रज्ञा के बल आप तेलंगाणा कवियों के अग्रणी बन गये हैं। आन्ध्र प्रदेश के पहुँचे हुए कवियों की श्रेणी में भी आपने अपने लिए आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया है।

तेलुगु भाषा पर आपका अनन्य अधिकार है। आज भी आपकी लेखनी काम में लगी हुई है। समसामयिक विषयों पर आपने व्यंग्यात्मक शैली में "दाशरथी शतक" की रचना हाल ही में की है। उर्दू के महाकवि गालिब की शायरी का तेलुगु में पद्यानुवाद आप ने किया है। "एक शिला" शीर्षक प्रबन्ध काव्य के सृजन में लगे हुए हैं। आपके रेडियो रूपकों का संग्रह "नवमि" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। अभी तेलुगु साहित्य को आप से बड़ी आशाएँ हैं।

साहित्य अकादमी आन्ध्र प्रदेश के अध्यक्ष, श्री बेजवाड़ा गोपालरेड्डीजी के शब्दों में—

"दाशरथी तेलंगाणा के एक कोटि कंठों की

वाणी हैं। तीन करोड़ आन्ध्र जनता को एक ही सूत्र में बाँध कर महान्ध्र सौभाग्य के गीतों का आपने गान किया है। आपकी कविता सुन्दरी कभी "अग्नि पट" पहन कर नृत्य करती है तो कभी पीड़ित जनता की वाणी के लिए "मैक" बन जाती है। और एक बार वह प्राकृतिक सुन्दरता के सहज चित्र को प्रस्तुत करती है। श्री दाशरथी प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति से सम्पन्न संस्कारी कवि हैं।"



सि. नारायण रेड्डी

आप अपने विभिन्न बृहद् गेय-काव्यों के द्वारा असमानता, अंध विश्वास और अत्याचार आदि का खंडन कर समस्त संसार में शांति, समता और स्वर्गिक सुख की स्थापना का संदेश देनेवाले तेलुगु के आधुनिक लोकप्रिय तरुण कवि हैं।

मैं मानव हूँ मैं मानव हूँ
दानव को भी हरा चुका हूँ
मानव को न हरा सका हूँ
ऐसा अंतर मानव मैं हूँ।

*   *   *

राका शशि-सा निज यशश्चंद्रिका
छिटकाना मैं नही चाहता,
मिट्टी में खिलीं चमेलियाँ पसंद हैं
आकाश कुसुम मैं नहीं चाहता।

*   *   *

जिस अंध लोक से घिरा हुआ हूँ
वह जल्दी ही ज्योतिर्मय हो,
चाहता हूँ उसके लिए कपूर-सा
अपना जीवन अर्पित कर दूँ।

*   *   *

जमे हुए पापों के सब टीले
गिर-गिर कर जब बह जाएँगे,
जिघांसा हो जावेगी जब नष्ट
जिज्ञासा खिल जावेगी जब स्पष्ट,
तब होगा सार्थक मेरा जीवन
तब होगा कृतार्थ मेरा स्वरूप,
ज्वर त्रस्त मेरी तब आत्मा यह
कर लेगी स्नान अमृत का।

*   *   *

उपर्युक्त कविताएँ तेलुगु के ऐसे सफल युवक कवि की हैं, जिनकी शिक्षा-दीक्षा शुरू से उर्दू में हुई। परन्तु शीघ्र ही उनका हृदय अपनी मातृभाषा तेलुगु की तरफ आकृष्ट हुआ। वे उसका अध्ययन करते-करते, स्वयं कलम भी चलाने लगे। कम समय में ही अपनी साहित्यिक सेवाओं द्वारा तेलुगु के आधुनिक लोक-प्रिय कवियों की श्रेणी में स्थान पा लिया। वे युवक कवि हैं श्री सि० नारायण रेड्डी।

श्री रेड्डी जी का जन्म जुलाई १९३१ ई० में आन्ध्र प्रदेश के करीमनगर जिले के हनुमाजी पेटा नामक गाँव में मध्यम श्रणी के अनपढ़ किसान परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव में ही प्राप्त कर करीमनगर के हाईस्कूल में भर्ती हो गये। मेट्रिक पास कर हैदराबाद पहुँच गये। इंटर तथा बी. ए. पास कर एम. ए. की पढाई में लग गये। तब तक हैदराबाद रियासत भारत सरकार के अधीन हो गई।

श्री दाशरथीजी का सांगत्य

हैदराबाद में तेलुगु के प्रसिद्ध कवि श्री दाशरथी जी से आपका परिचय हुआ। इस परिचय ने रेड्डीजी की प्रतिभा पर चार चाँद लगा दिये। दाशरथी को संबोधित कर रेड्डीजी लिखते हैं—

'ना तरुण काव्य लतिक लानाडु पैकि
प्राकलेक दिक्कुलु सूड नीकरालु

साचि लेत रेकुलकु कँजाय लद्दि
मिचु पंदिल्ल पैकि प्राकिंच नावु ।'

('मेरी तरुण काव्य लताएँ जब ऊँचाई पर चढ़ने में असमर्थ होकर मदद के लिए चारों तरफ़ देखने लगीं तब तुमने अपने हाथ बढ़ा कर मदद की। पल्लवों को सजा सजा कर ऊँचे पंडालों पर तुमने पहुँचा दिया।)

श्री दाशरथी और नारायण रेड्डी दोनों कृष्णार्जुन की तरह साथी बन गये। उनका वह साथ आज तक नहीं छूटा है। धीरे-धीरे तेलंगाणा के कालोजी तथा स्व. आलवार स्वामी जैसे अन्य कई कवि तथा लेखकों के साथ रेड्डीजी का संपर्क बढ गया। आप तेलगाणा लेखक सघ के मंत्री चुने गये। लगातार पांच-छः वर्षों तक वह कार्य करते रहे। इधर उनकी पढ़ाई चलती रही। १९५४ में एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास कर निजाम कालेज में तेलुगु लेक्चरर नियुक्त हुए और आज भी अध्यापन का कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

रेड्डीजी न उतने लंबे हैं और न उतने नाटे हैं। हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ शरीर, गोरा रंग, सुन्दर सुडौल मुख, भरे हुए गाल, नुकीली नाक, विशाल नेत्र, सुंदर चश्मा, चौड़ा माथा, घुंघराले बाल, स्पष्ट और सुरीली आवाज़, मधुर संभाषण, कीमती पैंट और बुश शर्ट, नरम चप्पल, शालीनता व्यक्त करने की प्रवृत्ति, संक्षेप में रेड्डीजी का यही परिचय है। कविता गान करने में वे बेजोड हैं। शब्दों को तोड़मरोड़ कर कविता पाठ

इस प्रकार करते हैं कि हजारों श्रोता मंत्र मुग्ध-से हो जाते हैं।

प्रगतिशील कविताएँ

तेलुगु के आधुनिक कवियों पर तीन आन्दोलनों का अधिक प्रभाव पड़ा। (1) समाज सुधार संबंधी (२) भारतीय स्वतंत्रता संबंधी (३) अलग आन्ध्र राज्य संबंधी। जब इन तीनों आन्दोलनों का प्रभाव कम हो गया तब आन्ध्र प्रांत में प्रगतिवाद का बोलबोला बढ़ गया। ऐसे समय १९५२ ई० के करीब नारायण रेड्डीजी ने तेलुगु कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया। समाज में आर्थिक असमानता, अज्ञान और अंधविश्वास वगैरह देख कर रेड्डी जी की वाणी प्रगतिशील हो उठी। "स्वप्नदर्शी शिलाएँ" शीर्षक कविता में कहते हैं—

शिलाएँ आज स्वप्न देखती हैं
वृक्ष "ओट" के लिए लड़ते हैं
मछलियों के गले में काँटे अटकते हैं
म्यानों में तलवारें आज सड़ती हैं।

*   *   *

दलित लोग अब चुप न रहेंगे
खुले आम अब उन्हें ठग न सकेंगे,
इसलिए पिछडे लोगों को आगे कर
चले चलो; मिल जुलकर गलबाँही डाले।

रेड्डीजी की प्रगतिवादी कविताओं में अग्नि सुधाएँ, निःशब्दता (सन्नाटा), युग प्रगति, अरुणाक्षर, सुखांत, विलयोत्पात, हम भी मानव हैं, क्या मैं अधम हूँ? और स्वप्नदर्शी शिलाएँ आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

रेड्डीजी की मुक्तक कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें (१) जलपात (२) विश्वगीत (३) तेने पाटलु (मधुगीत) (४) नारायण रेड्डी के गीत (५) दिव्वेल मुव्वलु (दीपों के पायल) प्रधान हैं। इन पुस्तकों में करीब १५० कविताएँ सगृहीत की गयी हैं। इन कविताओं में भाव की दृष्टि से भिन्नता है। कुछ कविताएँ प्रगतिशील हैं तो कुछ प्रकृति वर्णन से संबंधित हैं। कुछ कविताएँ राष्ट्रीयता से सम्बन्धित हैं तो कुछ प्रांतीयता से सम्बन्धित हैं। कुछ कविताएँ प्रणय से सम्बन्धित हैं तो कुछ कविताएँ विश्व प्रेम से सम्बन्धित हैं।

विज्ञान के सदुपयोग का संदेश

वे वैज्ञानिक प्रगति का समर्थन करते हैं। मगर यह नहीं चाहते कि विज्ञान जनता का नाश करने में सहायक बने। वैज्ञानिकों से वे कहते हैं—

"मेरे दिल में डर समा गया। ऐसा लगता है कि कभी-न-कभी यह जग भस्म हो जाएगा। मालूम नहीं कब कौनसा नगर हिरोशिमा बन जाएगा।

अमृत प्रदान करने वाले अणु बीजों से जहरीली मृत्यु की फसल लगाने वाले हे वैज्ञानिको! परमाणुओं को सुलगा कर इतिहास को धुआँधार मत बनाओ!"

साथ-साथ कवि यह अनुभव करते हैं कि यद्यपि आदमी वैज्ञानिक प्रगति करता जा रहा है तथापि वह मानवता से दूर होता जा रहा है। इसलिए "मानवता" शीर्षक कविता में वे कहते हैं—

"मानवते! मानवते!
तेरे निर्मल नयनों में
अहिंसाव्रती महात्माओं के
खून के धब्बे लगे हुए हैं।

* * *

तेरे शीतल वदनांगन में
भस्मावशेष भवनों के
निश्वासों की आवाजें
सुनने को सदा मिलती हैं।

* * *

मानव-मानव को समझे
मन-मन को पहचाने
जल प्रपात के विद्युत कण से
विश्व मनुज का दिल रोशन हो,

* * *

श्वेत रंग के लोग समझ लें
कि कालों का भी रक्त गरम है।
अणुओं से अमृत निकले
तो मानवता की रक्षा होगी॥

नारायण रेड्डी जी की प्रणय संबंधी कविताएँ संयोग, वियोग, कसक, जलन, दुःख, आशा, निराशा को लेकर चलती हैं। प्रकृति वर्णन संबंधी रेड्डीजी की कविताएँ प्रभावोत्पादक हैं।

तारों से एक बार
कह दूँगा कि वे आवें,
मेरी रमणी की वेणी की
माला बन चमक उठें।
चपला को बुला कर
हाथ जोड कह दूँगा
कि वह मेरी प्रेयसी के
अधरों की मुसकान बने।

'विश्वगीत' एक लघुगीत काव्य है। अंबर का स्पर्श करनेवाले, मानव के अंतर को छूने वाले कवि का हृदय संसार में नित्य प्रति होने वाले अत्याचारों और अन्यायों को देख कर क्रोध प्रकट करता है। संताप व्यक्त करता है। मिट्टी से रत्न निकालने वाले, पत्थरों से स्वर्ग का निर्माण करने वाले, पेट भर भोजन के लिए तलवारों के पिंजड़े में घुसने वाले मजदूरों को देख कर आठ-आठ आँसू बहाता है। मजहब के नाम पर मानवता को उभाड़ कर भाई-भाई के बीच विष की धारा बहाने वाले मजहबी ठेकेदारों को देख व्यंग करता है। विश्व भर में शांति, समता और स्वर्ग सुख की व्याप्ति की आशा करता है। इस प्रकार अपनी मुक्तक कविताओं के द्वारा

श्री नारायण रेड्डीजी ने गेय रचना पर अधिक ध्यान दिया।

नया प्रभाव

१९५९ के बाद से रेड्डीजी के साहित्यिक जीवन का द्वितीय युग शुरू होता है। तब तक बाहरी वातावरण में भी परिवर्तन आ गया। युद्ध के बादल छँट गये। पंडित जवाहरजी के पंचशील का प्रभाव बढ गया। आन्ध्रराज्य की भी स्थापना हो गयी। इन सब कारणों से रेड्डीजी का हृदय प्रभावित हुआ। आन्ध्र के प्राचीन इतिहास पर उनका ध्यान गया। उर्वर कल्पना, सबल व सरल भाषा व शैली के बल पर बृहद गेय काव्य के सृजन में लग गये। फलस्वरूप, नागार्जुन सागर, कर्पूर वसंतरायलु, विश्वनाथ नायडु जैसे प्राचीन आंध्र-इतिहास से संबंधित उनके प्रभाव-शाली बृहद् गेय काव्य प्रकाशित हुए। इन काव्यों के सृजन से नारायण रेड्डी को आधुनिक तेलुगु के प्रतिष्ठित कवियों में स्थान मिल गया।

नागार्जुन सागर

"नागार्जुन सागर" तेलुगु के उत्तम ऐतिहासिक गेय काव्यों में से एक है। आन्ध्र प्रदेश के नलगोंड़ा जिले के एलेश्वर गाँव के समीप कृष्णा नदी एक पहाड़ से हो कर बहती है। इस पहाड़ के पास ही एक बाँध बना कर पानी इकट्ठा करने का प्रयत्न किया जा रहा

है। बाँध के बन जानेपर वहाँ पानी जमा हो जाएगा। उसी का नाम नागार्जुन सागर रखा गया है। उस पर्वत पर आचार्य नागार्जुन निवास कर चुके थे। उन्हीं के नाम पर आज भी वह पर्वत नागार्जुन पर्वत कहलाता है। इतिहास प्रसिद्ध नागार्जुन के नाम पर नागार्जुन सागर का नाम प्रचलित हो गया है। नारायण रेड्डीजी के "नागार्जुन सागर" शीर्षक गेय काव्य की कथा बिलकुल अलग है। विश्व भर में बौद्ध धर्म का प्रचार जोरों से हो रहा था। आन्ध्र प्रांत भी पीछे नहीं रहा। नागार्जुन पर्वत पर महाचैत्य का निर्माण किया जाने लगा। शिल्प विद्या में कुशल पद्मदेव को यह काम सौंपा गया। 'पद्मदेव' नागार्जुन सागर काव्य का नायक है। वह जवान और सुन्दर है। गान, चित्रकला तथा मूर्ति-निर्माण कला मे भी सिद्धहस्त है। वह प्रांतों तथा धर्मों की सीमाओं से परिचित नहीं है। बुद्ध भगवान की कथाएँ कला की दृष्टि से उसे पसंद हैं। बौद्धधर्म तथा भिक्षुओं पर उसके दिल में श्रद्धा नहीं है। 'शांति श्री' नामक एक सुन्दरी बौद्ध मठ के आचार्य की सेवा में रह कर बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन कर रही है। वह नृत्य कला और गान कला में प्रवीण है। नारी सुलभ कोमलता उस में दृग्गोचर होती है। वह काव्य की नायिका है। कवि के कथनानुसार "प्रकृति के अणु-अणु में परम अद्भुत शोभा निर्लिप्त भाव से निद्रित रहती है।" उस सुन्दरता

को जगाना पद्मदेव के जीवन का लक्ष्य है। ऐसे पद्मदेव की सुन्दरता पर वह मुग्ध होती है। वह उसके चरणों पर अपना सर्वस्व अर्पित करना चाहती है। पर उन दोनों के बीच आचार्य आ जाते हैं। वे पद्मदेव और शांति श्री के विलासमय जीवन की पिपासा को नष्ट कर देते हैं। उसे शाश्वत ब्रह्मचर्य की दीक्षा देते हैं। भौतिक रूप से शांत श्री विरक्ति की दीक्षा ग्रहण करती है। परन्तु वह दिल से अनुरक्ति को दूर नहीं कर पाती। पद्मदेव धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों का खंडन करता है। वह मानवसेवा की आकांक्षाएँ तथा टूटा दिल लेकर वहाँ से चला जाता है। शांतिश्री स्वप्न में पद्मदेव के दर्शन करती है। स्वप्न में ही बहुत बड़े सागर के दर्शन होते हैं। इस तरह नागार्जुन सागर काव्य की कथा बड़ी दीनता के साथ समाप्त होती है। इस काव्य में धर्म और प्रेम दोनों का संघर्ष चित्रित किया गया है। नागार्जुन सागर सुन्दर कथोपकथन, सरस और मधुर शब्दों का चयन, कथा प्रवाह, प्रबल चरित्र चित्रण, आकर्षक शैली आदि सभी विशेषताओं से संपन्न बृहद गेय काव्य है। इस काव्य से रेड्डीजी को आशातीत प्रोत्साहन मिला।

कर्पूर वसंत रायलु

इस से प्रेरित होकर उन्होंने "कर्पूर वसंतरायलु" नामक और एक गेय काव्य की रचना

राज्य मे शांति स्थापित करते हैं। राजा नर्तकी के यहाँ से हटते ही नहीं। राज काज से दूर रह कर नाट्य-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखते हैं। मंत्री राजा को समझा कर एक दिन दरबार में ले आते हैं। क्षण भर में लकुमा की दूतिका आती है। राजा तुरन्त दरबार छोडकर चले जाते हैं। इससे सभी दरबारी कुद्ध हो जाते हैं। रानी बड़ी चिंता में पड़ जाती है। अन्त में एक फैसले पर आ जाती है। वह अपने आत्म गौरव को तिलांजलि देकर लकुमा के घर जाती है। प्रजा हित की याचना करती है। राजा को छोड़ने के लिए लकुमा को मजबूर करती है। लकुमा अन्त मे रानी की प्रार्थना मान लेती है। दूसरे दिन नृत्य करते-करते, कटार अपनी छाती में भोंक कर प्रियतम की गोद में सिर रख कर प्राण त्याग देती है। कहती है—

पुनर्जन्म प्राप्त करूँ
तो हे प्रभो! प्राप्त करूँ
स्थान महानू आलय रूपी
तव तरुण हृदय में ॥

कटार से बंधे पत्र से राजा की आँख खुल जाती है। वे फिर राजकाज में लग जाते हैं।

प्रस्तुत काव्य में नर्तकी लकुमा के आदर्श प्रेम और त्याग का भव्य चित्रण किया गया है। जनतंत्र के इस युगके अनुकूल रानी का चरित्र प्रस्तुत किया गया है। कर्पूर वसंतरायलु मात्रिक छन्द में लिखा गया है। नृत्य भंगिमाओं के अनुकूल छन्दों का

गठन किया गया है। रेड्डी जी की भाषा इस काव्य में प्रौढ़ हो गयी है। तेलुगु के आधुनिक काव्यों में कर्पूर वसंतरायलु का विशिष्ट स्थान है।

विश्वनाथ नायडु

रेड्डी जी का तीसरा कथा प्रधान काव्य है "विश्वनाथ नायडु"। शृंगार रस का स्पर्श तक न करके धर्मवीर का वर्णन इस में किया गया है। यह भी ऐतिहासिक कथा से सम्बन्धित है। पिता अपने वीर पुत्र के लिए अपने राजा का राज्य हस्तगत करता है। अनीति द्वारा प्राप्त राज्य को पुत्र ठुकरा देता है। पिता के विरुद्ध युद्ध करता है। पिता को हरा कर बन्दी बनाता है। राजा के सामने बन्दी पिताको प्रस्तुत कर अपनी राजभक्ति प्रकट करता है। इस धर्मवीर का नाम ही विश्वनाथ नायक है। इस काव्य में स्वार्थ और धर्म, वात्सल्य और कर्तव्य का संघर्ष दर्शाया गया है। आज के समाज की भी यही हालत है। स्वार्थ, छल, कपट विषैले साँप बन कर आज फुफकार रहे हैं। ऐसे आज के समाज के लिए, निस्वार्थ भाव से देश की सेवा और प्रभु की सेवा में अपने कर्तव्य का पालन करने वाले कर्मवीर विश्वनाथ नायक का चरित्र पथ प्रदर्शक है। कवि विश्वनाथ नायक के बारे में कहते हैं—

धर्म वीरता के अनन्य प्रतीक
विश्वनाथ नायक को देख कर

कवियों के हृदय झूम उठे
काव्यों के रूप में उमड़ उठे ॥

विभिन्न काव्य

इसी बीच 'ऋतुचक्र' नामक काव्य की रचना रेड्डीजी ने की। इस में षट्ऋतुओं का वर्णन नवीन तरीके से किया गया है। कवि का लक्ष्य केवल ऋतुओं का वर्णन करना नहीं है। एक देहात में पैदा होकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले मध्यम श्रेणी के व्यक्ति का भी इस में चित्रण किया गया है। एक-एक ऋतु में वह जो-जो अनुभूतियाँ प्राप्त करता है उन सब का, गार्हस्थ्य जीवन के मधुर और कटु अनुभवों का आकर्षक शैली में चित्रण इस काव्य में किया गया है।

'समदर्शन' रेड्डीजी का एक उपदेशप्रधान काव्य है। इस में आज के समाज की अच्छाइयों और बुराइयों का चित्रण किया गया है। कवि कहते हैं—

बलवान युव अश्व भी
हमेशा न सही, पर कभी न कभी
नाग पुच्छ जैसे चाबुक की
चोट खाकर ही चुस्त बनता है।

*   *   *

वीरता का एक मात्र प्रतीक
तलवार ही नहीं है, धर्मवीर

के समक्ष भयंकर तोप भी
सदा बेकार बन जाते हैं।

* * *

धर्म वीरता के मूर्त अवतार
कल - परसों के बापूजी हैं।
उनकी मासूम मुसकान के समक्ष
खूँख्वार व्याघ्र भी हिरन बन गये।

* * *

एक भाग्यवान हाथी पर चढ़ कर
जनता का सम्मान प्राप्त करता है।
दूसरा इसे देख ऐसा रोता है मानों
पैरों के नीचे से भूमि खिसक गयी हो।

'रामप्पा का मंदिर' रेड्डीजी का संगीत रूपक है। इस रूपक का प्रसार भारत के सभी रेडियो केन्द्रों के द्वारा सभी भाषाओं में हो चुका है। यह ऐतिहासिक कथानक पर आधारित रूपक है। काकतीय वंश के प्रतापी राजा गणपतिदेव के शासनकाल की घटना इस में वर्णित है। ओरुगल (ओरंगल) के निकट एक मंदिर का निर्माण किया जाता है। चन्द्रभूषण नामक एक युवक शिल्पाचार्य को मूर्तियाँ बनाने का काम सौंपा जाता है। वहाँ एक नागिन आया करती है। उस पर शिल्पी मोहित हो जाता है। वह मंदिर के द्वार पर उस नागिन की मूर्ति गढ़ता है। इस से सेनानी कुपित होता है। उसे कैद में डाल देता है। नागिन व्यथित हो जाती है। चारों तरफ से नागों का आक्रमण राज्य पर होता है। अंत में शिल्पी रिहा कर दिया जाता है। शिल्पी और

नागिन का मिलन होता है। यह सगीत रूपक रेडियो द्वारा प्रसारित सफल रूपकों में से एक है।

वेन्नेलवाडा (ज्योत्स्नापुरी), दीर्गों का संगीत, संक्रांति, गोकुल विहार, अजंता-सुन्दरी, मनुज और यंत्र तथा अनहसित पुष्प शीर्षक रेड्डी के सात संगीत रूपकों का जिनका प्रदर्शन रंगमंच पर सफलता पूर्वक हो चुका है, "वेन्नेलवाड़ा" (ज्योत्स्नापुरी) के नाम से प्रकाशन हो चुका है। इन में "मनुज और यंत्र" शीर्षक सगीत रूपक में आधुनिक यांत्रिक नागरिकता की पाशविकता का वर्णन किया गया है। कवि कहते हैं कि मनुज यंत्र का गुलाम न बने। क्योंकि यंत्र भयंकर है। वह मनुज सृष्टि का ही अन्त कर देगा।

यंत्र गर एक मस्त हाथी है तो
हे मनुज! तुम बनो महाबत,
यंत्र अगर वारिधि है तो
तुम वारक बन जाओ।
अणुओं को निचोड़ कर आज
अमृत का सृजन करना है।
कारखानों में सब को मिलकर
कलाओं का सृजन करना है।

श्री नारायण रेड्डीजी वसुधैव कुटुंबकम् वाले सिद्धान्त पर जोर देते हैं। वे चाहते हैं कि सारा विश्व एक हो जावे। कुल, जाति, रंग, धर्म आदि का भेद भाव न हो। मानव सब एक हों।

आकाश की सीमाएँ नहीं हैं
सागर की परिधि नहीं है,
फिर भूमि पर ही क्यों रहें
लोहे की जंजीरें व तंग दीवारें ?

संसार के किसी भी देश में दीन-दरिद्र जनता के द्वारा क्रांति होती है तो रेड्डीजी का हृदय उमड़ पड़ता है। अधर्म की हार और धर्म की जीत की वे आशा करते हैं। इराक की क्रांति के अवसर पर वे लिखते हैं—

रक्त सिंचित भूमि यह
इत्र की सुगन्धि देगी,
गोलियों से छिन्न नगरी
होवेगी जन आराध्यनगरी।

इस तरह तेलुगु के काव्य जगत् में अपनी विभिन्न कृतियों के कारण आदरणीय स्थान श्री रेड्डीजी कम उम्र और कम समय में प्राप्त कर चुके हैं। वे प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टिकोण को लेकर चलते हैं। समकालीन समाज से स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। दोनों का समन्वय करते हुए काव्य का सृजन करते हैं। यह रेड्डीजी की काव्यगत विशेषता है।

स्वागत और सम्मान

आन्ध्र प्रदेश की जनता ने नारायण रेड्डीजी का सम्मान किया है। जमशेदपुर, करीमनगर, नेल्लूर



आदि शहरों मे बड़े पैमाने पर आपका सम्मान किया गया। करीमनगर रेड्डीजी का अपना जिला है। वहाँ के निवासियों ने ११९६ रुपयों की थैली आपको समर्पित की। श्री ति. रामिरेड्डी जी ने ११६) की थैली समर्पित कर सम्मान किया। कर्पूर वसंतरायलु नामक काव्य के प्रकाशन का खर्चा भी दिया। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के आप वर्षों से सदस्य हैं। इसी बीच आपने तेलुगु की फिल्मी दुनिया में गीतकार के रूप में प्रवेश किया। कालेजों के उत्सवों से लेकर बड़ी-बड़ी सभाओं तक में आपके प्रभावशाली भाषण होते हैं। आपको हर सभा में कविता पाठ करना पड़ता है। आधुनिक तेलुगु साहित्य पर शोधग्रंथ लिख कर उस्मानिया यूनिवर्सिटी के द्वारा पि. एच. डी की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। युवक कवि श्री सि. नारायण रेड्डी तेलुगु के आधुनिक काव्य जगत् के गौरव हैं।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
vi	8	पाठकों के	पाठकों से
xi	20	जगत् के	जगत् से
42	11	विनियम	विनिमय
47	19	मानवीमानवीय	मानवीय
64	8	चरिस्तिार्थ	चरितार्थ
65	22	ज़िन्दमी	ज़िन्दगी
87	9	पिगलि	पिंगलि
124	3	१९१८	१९१७
149	12	रात की	रात के
193	2	दुग्गोचर	दृग्गोचर
205	7	समय में ही से	समय में ही
207	10	स्वाध्यन	स्वाध्ययन
208	4	गंघरू	घुंघरू
223	11	स्थान है जी	स्थान है जो
243	26	आख	आँख


UNIVERSITY LI
ALLAHABAD.